उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-06
इतिहास
चीन और जापान का इतिहास (1840-1949)

खंड

6

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान

इकाई 22
राजनीतिक दलों का उदय 5

इकाई 23
सैन्यवाद का उदय 19

इकाई 24
प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अर्थव्यवस्था 33

इकाई 25
द्वितीय विश्व युद्ध तक जापानी साम्राज्यवाद 49

इकाई 26
द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान 65

चित्र 81

खंड 6 प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान

प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक राजनीतिक शक्ति के रूप में जापान का उदय ऐसे समय में हुआ जब पश्चिमी-साम्राज्यिक ताकतों का वर्चस्व कायम था। विश्व में गैर-यूरोपीय शक्ति के रूप में जापान की मुख्य भूमिका पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध करना थी। लेकिन आगे चलकर जापान ने अपने पड़ोसी देशों के साथ साम्राज्यवादी लक्ष्यों को पूरा करना शुरू किया। इन साम्राज्यवादी लक्ष्यों का उद्‌भव बहुत से कारणों के एक साथ मिल जाने से और कई वर्षों के दौरान हुआ था।

प्रसारवादी नीतियों की वकालत जापान की सुरक्षा तथा "एशिया एशियाई वासियों के लिये" जैसे नारों के आधार पर की गई। लेकिन दूसरी ओर जापानी अर्थव्यवस्था ने विकास के उच्च स्तर को प्राप्त किया और प्रथम विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में उसकी विशेष भूमिका हो गई। लेकिन यह आर्थिक प्रगति विशेष रूप से दमनात्मक राजनीतक संस्कृति की उपज थी और इसने खपत को सीमित किया और मजदूरों के अधिकारों में कटौती की। हमें सदैव यह याद रखना चाहिये कि नीतियों का निर्धारण सरकार एवं व्यवसायिक नेताओं के द्वारा किया गया।

प्रथम विश्व युद्ध से यह स्पष्ट था कि जापान के कई राजनीतिक नेता तथा विचारक जापान की सीमाओं के प्रसार में रुचि रखते थे। साम्राज्यवादी तन्त्र की सीमाओं के अन्तर्गत नेताओं ने यह भी महसूस किया कि जीवित रहने के लिये जापान की अर्थव्यवस्था एवं सैन्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु कोरिया, मंचूरिया तथा चीन के संसाधनों पर नियन्त्रण करना आवश्यक था। जापान में साम्राज्यिक प्रसार की दिशा पर सेना के साथ बहस हुई और सेना ने जापान के प्रसार को उत्तर की ओर करने का समर्थन किया जबकि दूसरे गुट ने दक्षिण दिशा की ओर प्रसार का। सेना ने इन कार्यों को पूरा करने के लिये सैनिक बजट में वृद्धि के लिये दबाव डाला। उनकी मांगें सेवाओं के अन्दर तथा अन्तर सेना संघर्ष में विभाजन होने के कारण और जटिल हो गई लेकिन उन्होंने राज्य के वित्तीय साधनों पर ही अतिरिक्त भार डाला।

उस समय जापान में ऐसे भी गुट थे जिन्होंने इन प्रसारवादी नीतियों का विरोध किया। कुछ व्यवसायिक हितों वाले लोगों के साथ कुछ विचारकों ने तर्क प्रस्तुत किया कि साम्राज्य की मांगें और अधिक हो जायेगी और जापान के लिये यह अधिक लाभप्रद होगा यदि यह युद्ध की अपेक्षा व्यापार पर अधिक बल दे। समाजवादी क्रिश्चियन तथा शांतिवादी जैसे संगठनों का तर्क था कि जापान को अपने पड़ोसी देशों के साथ शांति के साथ रहना चाहिये और उसे एक लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहिये।

जापान की विदेश नीति की विशेषता में तीन मूलभूत प्रतिमान निहित थे। एक गुट का विचार था कि जापान को एक क्षेत्रीय शक्ति बनना चाहिये। इस गुट ने स्वतन्त्र सैनिक शक्ति की आवश्यकता पर जोर दिया। किन्तु इसका यह भी कहना था जापान पश्चिमी शक्तियों के साथ सहयोग करे। इस स्थिति का प्रतिपादन स्पष्ट रूप से शिदेहारा किजुरो के द्वारा किया गया और 1920 के बाद होने वाले वाशिंगटन सम्मेलनों की व्यवस्था का ये आधार बने।

तनाका गिशी तथा अन्य का तर्क था कि जापान को क्षेत्रों में एक स्वतन्त्र भूमिका अदा करनी चाहिये और आगे चलकर कुछ अनुदार राष्ट्रवादियों तथा दूसरों की यह इच्छा थी कि जापान को अपने नेतृत्व में एशिया में एक नयी व्यवस्था की रचना करनी चाहिये। इन स्थितियों को समय-समय पर आगे बढ़ाया गया और 1931 तक जापान के अधीन पूर्वी एशियाई व्यवस्था का तीसरा विकल्प महत्वपूर्ण नीति बन गया।

उन पश्चिमी शक्तियों से स्वायत्तता को प्राप्त करने के दृढ़ प्रयास जो मंचूरिया एवं चीन में आक्रमण में शामिल थे—जापान में राजनीतिक दलों के पतन की विशेषता को अभिव्यक्त करते हैं। मेजी राजनीतिक तन्त्र ने एक संवैधानिक सरकार की स्थापना की थी किन्तु इसके

पास बहुत कम शक्तियां थीं। फिर भी यह एक संवैधानिक व्यवस्था थी। राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ और गुट हितों के रूप में उनमें गठबंधन होने लगे। लेकिन 1930 के दशक में दलीय व्यवस्था का पतन हो गया और सरकार पूर्णतः सैन्यवादियों के नियन्त्रण मे चली गई। इसकी प्रतिक्रिया सेना के द्वारा प्रसारवादी नीतियों के अपनाने के रूप में हुई औ इस नीति का अन्त 1945 में उस समय हुआ जबकि जापान ने मित्र सेनाओं के सम्मुख आत्मसमर्पण किया।

इस खंड की इकाइयों में प्रथम विश्व युद्ध के बाद हुए अनेक घटनाक्रमों का विवरण किया गया है। इकाई 22 में राजनीतिक दलों की भूमिका को दर्शाया गया है तो इकाई 23 में सैन्यवाद के उदय पर लिखा गया है। इकाई 24 में प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अर्थव्यवस्था की प्रगति की समीक्षा की गई है। इकाई 25 में 1945 तक के जापानी साम्राज्यवाद एवं प्रसारवाद का विवरण किया गया है। इकाई 26 में द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त में जापानी आत्मसमर्पण से पैदा हुए प्रश्नों एवं समस्याओं को उठाया गया है। यद्यपि यह पाठ्यक्रम 1949 में समाप्त होता है किन्तु द्वितीय विश्व के उत्तरकाल के दौरान 1960 तथा 1970 के दशकों में जापान में घटित घटनाओं का विवरण भी किया गया है। ऐसा इसलिये किया गया है जिससे कि जापान के आर्थिक विकास पर एक संक्षिप्त **विचार** को प्रतिपादित किया जा सके।

आभार : हम जापान सूचना एवं संस्कृति केंद्र, नई दिल्ली के प्रति चित्र उपलब्ध कराने के लिये अपना आभार प्रकट करते हैं।

इकाई 22 राजनीतिक दलों का उदय

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 मेजी शासकों के अधीन संवैधानिक सरकार
  22.2.1 राजनीतिक दलों की स्थापना
  22.2.2 समान स्वार्थ वाले समूह एवं राजनीतिक दल
22.3 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना
22.4 दल मन्त्रि परिषद की व्यवस्था
22.5 राजनीतिक दलों का पतन
  22.5.1 बाहय एवं आन्तरिक कारण
  22.5.2 राष्ट्रीय रक्षा राज्य (नेशनल डिफेंस स्टेट)
22.6 सारांश
22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- आपको यह ज्ञान हो जायेगा कि पुनर्स्थापन के बाद कैसे राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई और वे फिर कैसे राजनीतिक दलों में विकसित हुए,
- राजनीतिक दलों की स्थापना तथा संविधान के दायरे में उनकी क्या स्थिति थी—इनकी जानकारी आपको हो जायेगी,
- राजनीतिक दलों तथा मेजी शासकों एवं नौकरशाही तन्त्र के बीच संबंधों का ज्ञान आपको होगा,
- दल सरकार के उत्थान एवं पतन के विषय में भी आप बता सकेंगे, और
- युद्ध पूर्व जापान में आपको राजनीतिक लोकतन्त्र का भी ज्ञान हो जायेगा।

22.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान में राजनीतिक दलों के उत्थान के विषय में कोई भी विवेचना करते समय हमें उन प्रक्रियाओं पर ध्यान देना होगा जिनके कारण राजनीतिक दलों की स्थापना हुई, और उन संबंधों का भी जो राजनीतिक दलों तथा दूसरे राजनीतिक तौर पर शक्तिशाली गुटों के बीच स्थापित हुए। इन संबंधों की विवेचना करना अपरिहार्य है क्योंकि इन संबंधों ने ही जापान में विकसित होने वाली संवैधानिक व्यवस्था की ताकत एवं सीमा को निश्चित किया। इस तरह से इस इकाई में राजनीतिक दलों की स्थापना के कारणों तथा इन राजनीतिक दलों ने राज्य तन्त्र में जो स्थिति प्राप्त की उसके विषय पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

22.2 मेजी शासकों के अधीन संवैधानिक सरकार

सन् 1889 में मेजी सम्राट ने अपनी जनता के लिये एक ऐसे संविधान का अनुमोदन किया जिसने संवैधानिक सरकार के लिये एक आधारशिला रखी। जिस प्रक्रिया के द्वारा इस संविधान के प्रारूप को तैयार किया गया उसका और इसके विशेष गुणों का विवरण पहले की इकाई में हो चुका है। यहां पर इतना बता देना ही पर्याप्त होगा कि संविधान का निर्माण उस मेजी शासक तन्त्र के द्वारा किया गया था जो अपनी सोच में घोर लोकतन्त्र विरोधी था। मेजी शासक लोकप्रिय निर्वाचित सरकार के विचार के प्रति एक अविश्वास की भावना रखते थे और उनका विचार था कि इस तरह की व्यवस्था को लागू कर दिये जाने से सामाजिक एवं राजनीतिक अराजकता पैदा हो जायेगी। इन सबके बावजूद भी उन्होंने एक संविधान के प्रारूप को तैयार कराया और जिसके अन्तर्गत राजनीतिक दलों ने कार्य किया। मेजी संविधान प्रारूप में जो विरोधाभास विद्यमान था उसका विवरण 1926 में संविधान विशेषज्ञ मिनोबे तात्सुकीशी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है :

"हमारे संविधान का विकास इसके लेखकों की आशाओं के ठीक विपरीत तरीके से हुआ। संस्थात्मक तौर पर मन्त्रि परिषद (Cabinet) की व्यवस्था डायट के प्रति उत्तरदायी थी, लेकिन संविधान में उसका कोई स्थान न था लेकिन परम्परा के रूप में इसकी जड़ें मजबूती से स्थापित हो गई।" इस परिपाटी ने विकसित होने में समय लिया और यह केवल 1924 में उस समय लागू हुई जबकि आम चुनाव में जिस दल ने निचले सदन में बहुमत प्राप्त किया उसी ने मन्त्रि परिषद का गठन किया। इस मन्त्रि परिषद का नेतृत्व कातो काकांकि के द्वारा किया गया और इसे संवैधानिक सरकार की रक्षा करने वाली मन्त्रि परिषद के नाम से जाना गया। इस मन्त्रि परिषद ने दलगत सरकारों के युग का सूत्रपात किया। इस तरह जून 1924 से मई 1933 तक सभी प्रधान मन्त्रियों ने निचले सदन के बड़े दलों का प्रतिनिधित्व किया।

यहां पर ये प्रश्न उठते हैं कि राजनीतिक दलों ने निचले सदन में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल द्वारा सरकार बनाने के सिद्धान्त को अपनाने में इतना अधिक समय क्यों लिया? और फिर इस व्यवस्था का जीवन काल इतना संक्षिप्त क्यों रहा? इन प्रश्नों का जवाब गहराई से तलाशने के लिये हम उन कारणों की विवेचना करेंगे जो राजनीतिक दलों के गठन के लिये जिम्मेदार थे और तब उस स्थिति का जिसको इन दलों ने राज्य तन्त्र में प्राप्त किया।

22.2.1 राजनीतिक दलों का गठन

यह स्वीकार्य तर्क है कि तोकूगावा का शासन काल एक ऐसा अलोकतन्त्रीय ढांचा था जहां पर राजनीतिक सत्ता कड़े नियन्त्रण में थी। फिर भी आजकल विद्वान आधुनिकीकरण में जापान की सफलता के कारणों की तलाश करने में लगे हुए हैं। उनका तर्क है कि पश्चिमी देशों के लिये जापान के खुल जाने से पूर्व जापान ने न केवल आर्थिक कौशल एवं संस्थाओं को विकसित कर लिया था बल्कि एक ऐसे राजनीतिक तन्त्र को विकसित करना प्रारम्भ कर दिया था जिसके अन्तर्गत बहस एवं विवाद एक एकीकृत तत्व बन चुका था। शोगुन ने एक निरकुंश शासक की भांति शासन नहीं किया बल्कि वह गैर-व्यक्तित्ववादी शक्ति के स्रोत का प्रतिनिधित्व करता था। निश्चय ही यह प्रवृत्ति समाज के एक छोटे गुट या वर्ग तक सीमित थी लेकिन सत्ता का उपयोग स्वेच्छाचारी न था और परिणामस्वरूप आधुनिक जापान एक संवैधानिक सरकार को अपना सका।

आइरोकावा दैकीशी जैसे विद्वान लोकतान्त्रिक विचारों के विकास को तोकूगावा काल में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के जनवादी आंदोलनों में खोजते हैं। इन आंदोलनों ने तोकूगावा राज्य के प्रभुत्व को चुनौती दी और राजनीतिक चेतना के प्रारम्भ की स्थितियों को जन्म दिया। इसी के साथ इन आंदोलनों ने उन सम्भावनाओं को जगाया जिनमें एक साथ मिलकर राज्य को दुरुस्त करने के तरीकों को खोजा जा सके। यद्यपि ये आंदोलन न तो राजनीतिक तौर पर सफल हो सके और न ही तोकूगावा बाकूफू की सरकार को गिरा सके या इसका कोई विकल्प प्रस्तुत न कर सके। फिर भी इन्होंने उस परम्परा को बनाया

जिसकी वदौलत जनता के अधिकारों का आंदोलन लोकप्रिय निर्वाचित सभा की अपनी मांग के लिये दबाव डाल सका। मेजी पुनर्स्थापन का प्रारम्भ उस समय हुआ जबकि जापानी संस्थाओं तथा परम्पराओं में नाटकीय परिवर्तन हो चुका था। इस पुनर्स्थापन से एक केन्द्रीकृत राजनीतिक तन्त्र का निर्माण हुआ। इस विषय में पहले की इकाइयों में विवरण किया जा चुका है। यहां पर यह याद रखा जाना चाहिये कि राजनीतिक संगठनों एवं गुटों का निर्माण संवैधानिक सरकार की मांगों के लिये किया गया। उदाहरण के तौर पर सन् 1880 में कोची में **कोजूंशा** या गुम्मा में **युशिंशा** जैसी 150 स्थानीय सोसाईटियों ने एक राष्ट्रीय सभा की स्थापना की मांग की।

लेकिन दूसरी ओर मेजी सरकार ने एक ऐसे राजनीतिक तन्त्र के निर्माण को प्राथमिकता दी जिसे केन्द्रीय स्तर से ही चलाया जा सके और जहां पर नीचे से उठने वाले सामाजिक दवाव शासकों की इच्छाओं की सीमाओं में बने रहेंगे। लेकिन इसके बावजूद भी बहस होती रही और भिन्न-भिन्न विचारों का आस्तित्व बना रहा। मेजी शासक तन्त्र सम्राट की संप्रभुता को जनता द्वारा हड़पने से सुरक्षित रखना चाहता था। फिर भी तोकुगावा बाकूफू (बाकूफू सम्राट के नाम पर शासन कर चुका था) जैसी संस्था के, उद्भव को रोकने के प्रयास किये गये, जिसके परिणामस्वरूप राज्य के विभिन्न अंगों के बीच सत्ता का विसर्जन किया गया और उनमें से किसी के पास भी पूर्णरूपेण शक्ति नहीं रहीं। इस तरह से जहां एक ओर मेजी शासन, शाही प्रभुत्व के अधीन बहुत अधिक केन्द्रीकृत राज्य दिखायी पड़ता था वहीं दूसरी ओर प्रत्येक गुट या संस्था को पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई। सम्राट की प्रत्यक्ष प्रभुसत्ता का उपयोग सेना एवं नौकरशाही के द्वारा भरपूर तरीके से किया गया। हमें यहां पर यह याद रखना चाहिये कि संवैधानिक व्यवस्था का उपयोग जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये नहीं अपितु सम्राट की संप्रभुता के लिये किया गया। राज्य की इन संस्थाओं में सामंजस्य बनाये रखने के लिये व्यवहार में शासक तन्त्र या हबात्सू का एक शक्तिशाली ताकत के रूप में उदय हुआ।

हंबात्सू या शासक तन्त्र मेजी पुनर्स्थापन के नेताओं से मिलकर बना था। ये लोग क्षेत्रीय समझौते से बंधे थे और उन्होंने मेजी काल में हुए रूपांतरण के समय में देश का नेतृत्व किया था। सतसुमा एव चोसू दोनों प्राथमिक महत्व के क्षेत्र थे और इन्हीं क्षेत्रों ने नौकरशाही, सेना, प्रिवी कौंसिल तथा हाउस ऑफ पीर्स के अधिकतर सदस्यों की आपूर्ति की। मेजी शासकों को बड़ा राजनयिक कहा जाता था और साम्राज्यिक सदन में वे एक संस्था के रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे।

प्रतिनिधि सभा की रचना मेजी संविधान के अंतर्गत की गई थी और उसके महत्व पूर्ण-सदस्य मेजी शासक तन्त्र का विरोध करते थे। इनमें से कई सदस्य इस शासक तन्त्र के सदस्य रह चुके थे लेकिन वे इससे अलग हो गये थे। उन्होंने जनता के अधिकारों के आंदोलन में भाग लिया था और राजनीतिक दलों को संगठित किया था। मेजी शासक तन्त्र ने अपने-अपने राजनीतिक दलों के निर्माण के विचार का विरोध किया। प्रारम्भ में इतो हिरोबूमि, इन्नो कोरू आदि जैसे नेता अपने स्वयं के दलों को संगठित करना चाहते थे लेकिन बहुमत के द्वारा उनका विरोध किया गया।

संविधान की उद्घोषणा के समय तक अर्थात् 1889 तक ऐसे दो बड़े गुट थे जिनके आस-पास प्रथम राजनीतिक दलों को संगठित किया गया। इनागाकी तैसुके मेजी सरकार काउंसिलर के रूप में शामिल हुआ लेकिन उसने कोरिया पर आक्रमण करने के प्रश्न पर हुए मतभेदों के कारणवश 1873 में त्यागपत्र दे दिया। इतागाकी ने कोरिया पर आक्रमण करने की योजना का समर्थन किया था। उसने और उसके समर्थकों ने देशभक्तों की एक ऐसी पब्लिक पार्टी का गठन किया जिसने लोकतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित राष्ट्रीय सभा के लिये अभियान चलाया। बाद में उसने सेल्फ-हेल्प सोसायटी (Self Help Society) के संगठन में भी मदद की। देश भक्तों की सोसायटी ने 1880 में पुनः नामकरण किया और 1881 में यह उदारवादी दल **(जियूतो)** हो गया।

जियतो ऐसा दल था जिसका समर्थन भूतपूर्व सामुराई तथा ग्रामीण प्रबुद्ध वर्ग के द्वारा किया गया लेकिन जनता के अधिकारों के आंदोलन के दौरान बढ़ती हिंसा को लेकर इस दल के नेता चिन्तित थे। जैसा कि पहले की इकाई में उद्धृत किया गया कि 1882-1886 के वर्षों में

होंशू के चिचिबू तथा कबासान जैसे केन्द्रीय भाग में हिंसात्मक घटनायें हुई और सरकार ने कठोरता के साथ इसका दमन किया। इसके फलस्वरूप सरकार ने इस दल पर प्रतिबंध लगा दिया तथा फिर 1890 के आमचुनावों के बाद तब इस दल का संवैधानिक उदार दल के रूप में **(रिक्केन जियतो)** सुधार किया गया।

हिजेन के सामंत ओकूमा शिगेनोबू को सन् 1881 में सरकार से त्यागपत्र देने के लिये बाध्य किया गया। उसके त्यागपत्र देने के पीछे अन्य कारणों के अलावा यह भी एक कारक था कि वह अति शीघ्र निर्वाचित सभा का अधिवेशन बुलाना चाहता था। ओकूमा ने ब्रिटिश व्यवस्था पर आधारित संसदात्मक व्यवस्था के प्रारूप का भी समर्थन किया। सरकार छोड़ने के बाद उसने संवैधानिक सुधार दल **(रिक्केन कैशिन्तो)** का गठन किया। इस दल ने शहरी मध्यम वर्ग का समर्थन प्राप्त किया। इस दल ने धीरे-धीरे लोकतांत्रिक सुधार के विचारों का प्रचार किया। ओकूमा ने इतागाकी के उदार दल में विलय करने से इंकार कर दिया लेकिन जैसे ही सरकार ने जनता के अधिकारों के आंदोलन का दमन करना शुरू किया वैसे ही ओकूमा ने दल को छोड़ दिया। आगे चलकर यह दल प्रगतिशील दल **(शिम्पोतो)** बन गया। यह दूसरा महत्वपूर्ण दल था।

इन ''जनता के दलों'' **(मिन्तों)** का संक्षिप्त रूप में एक ऐसे रूढ़िवादी गुट के द्वारा विरोध किया गया जिसको संवैधानिक साम्राज्यिक दल **(रिक्केन तेजैतो)** कहा जाता था। यद्यपि इसने राजनीतिक तौर पर कोई महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं की लेकिन यह दल उस समय में विद्यमान सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था।

प्रथम डायट का उद्घाटन नवम्बर 1890 में किया गया 1898 में प्रथम दलीय मन्त्रि परिषद के गठन की यह विशेषता थी कि इस समय में दलों के एक शासक तन्त्र **(हाबत्सू)** के बीच गहमागहमी होती रही। कुछ सरकार समर्थक गुट भी थे और अक्सर इनका गठन होता रहता था। इन दोनों गुटों के द्वारा जिस समस्या का सामना किया गया वह यह थी कि मेजी संविधान के अधीन राजनीतिक दल केवल वार्षिक बजट को पारित होने से रोक सकते थे और इस तरह की स्थिति में पिछले वर्ष का बजट जारी रहता था। इन सबके बावजूद शासक तन्त्र इन राजनैतिक दलों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता था जब तक वे मेजी संविधान को स्वीकार करते थे और इसी कारण से उन दोनों को साथ-साथ कार्य करना सीखना पड़ा। राजनीतिक दल निचले सदन पर नियन्त्रण रख सकते थे लेकिन ''पीर्स के ऊपरी सदन पर शासन तन्त्र और उनके समर्थकों के द्वारा नियन्त्रण किया जाता था। चीन-जापान युद्ध के शीघ्र बाद ही इन दोनों गुटों के द्वारा यह महसूस किया गया अर्थात् राजनीतिक दलों एवं शासक तन्त्र ने आपसी गठबंधनों को बनाना शुरू कर दिया।

22.2.2 समान स्वार्थ वाले समूह एवं राजनीतिक दल

शासक तन्त्र का विचार था कि दलीय सरकार किसी गुट विशेष के हितों के प्रतिनिधि के तौर पर कार्य करेंगे और वे चाहते थे कि मन्त्रि परिषद को राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करना चाहिये। इसलिये वे ''अतिश्रेष्ठ मन्त्रिमंडलों'' **(शोजेन नैकाकू)** की बात करते थे। फिर भी पारस्परिक मेल-मिलाप का तात्पर्य था कि उन विचारों में परिवर्तन हुआ जो शासक तन्त्र के बीच तथा जनता के दलों ''के बीच फैले हुए थे और इस तरह से जनता के दलों के बीच शासक तन्त्र की स्थिति के विरोध में फैले हुए विचारों में भी परिवर्तन हुआ। उदाहरण के तौर पर नवम्बर 1895 में सरकार ने उदार दल के साथ यह बंधन किया तथा इतागाकी तैसुके। (उदार दल का अध्यक्ष) सन् 1896 में इतो हिरो भूमि के मन्त्रिमण्डल में गृह मन्त्री बन गया। इस तरह से इसको शासक तन्त्र के समर्थकों के दल के विरुद्ध एक चुनौती माना गया और हिरोबूमि का विरोध करने के लिये वे यानागाता अरितोमों के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये।

जहां तक मन्त्रिमण्डल के गठन का प्रश्न है वह बड़े-बड़े राजनयिकों को लेकर बनाया गया और उन्होंने वैकल्पिक तौर पर या तो चोसू रियासत से या फिर सतसुमा से अपने प्रतिनिधियों को नामजद किया। इस तरह इतो चोसू से तथा मतसुकता मसायोशी सतसूमा से थे। इतो ने पार्टी के समर्थन से एक मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रयास किया लेकिन इसका हाबत्सू के द्वारा विरोध किया गया। जून 1898 में **केनसैतो** नाम के दल का गठन पहले के

अन्य दलों के तत्वों को मिलाकर किया गया और यह एक ऐसी नयी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था जिसने शासक तन्त्र की ओर से एक भिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया को पैदा किया। अन्ततः शासक तन्त्र ने **केनसैतो** को मन्त्रिमण्डल का गठन करने दिया।

इवागाकी एवं ओकूमा ने जून 1898 में केनसैतो के सदस्यों को मिलाकर मन्त्रिमण्डल का गठन किया और यह प्रथम दलीय मन्त्रिमण्डल था। इस दल का निचले सदन में 300 सदस्यों में से 244 सदस्यों के साथ पूर्ण बहुमत था। इस दो तिहाई बहुमत के बावजूद भी यह दल कमजोर स्थिति में था। इसके निम्नलिखित कारण थे–

- नौसेना एवं सेना के लिये जिन मन्त्रियों को नामजद किया गया उन्होंने दल का विरोध किया,
- इस दल का गठन दो ऐसे गुटों के विलय के द्वारा किया गया था जो कर बढ़ाने के प्रश्न पर विभाजित थे।

सैन्य खर्चों को पूरा करने के लिये सरकार को करों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया था। जबकि दल ने भूमि करों में वृद्धि का विरोध किया किन्तु व्यापारिक एवं शहरी हितों वाले गुटों ने सरकार के इन प्रयासों का विरोध नहीं किया क्योंकि सरकार ने आर्थिक प्रसार तथा और अधिक सार्वजनिक खर्च की नीति का अनुसरण किया।

चार माह के अन्दर मन्त्रिमण्डल के पतन ने इन राजनीतिक गुटों के द्वारा किये गये गठबंधन के खोखलेपन को स्पष्ट कर दिया। इन गुटों ने कुछ चुनिंदा तथा अस्थायी कारणों से एक दूसरे के साथ गठबंधन किया था। पार्टी सिद्धान्तकारों के बीच अब यह विचार उभर रहा था कि हान्बात्सू तथा होशी तोरू के साथ सहयोग करना जरूरी हो गया था। **केनसैतो** ने हांबात्सू के साथ मिलकर कार्य करने का प्रयास किया। यामागाता ने नवम्बर 1898 में मन्त्रिमण्डल का गठन किया और भूमि कर बढ़ाने को अपना समर्थन दिया। वह दल जो अब तक लगातार भूमि करों में होने वाली वृद्धि का विरोध कर रहा था उसने रेल मार्गों के राष्ट्रीयकरण की मांग की सौदेबाजी की और इसके बदले में भूमि करों में होने वाली वृद्धि का समर्थन करने की पेशकश की। इस सौदेबाजी में शहरी व्यापारिक एवं वाणिज्यिकी हितों ने अधिक भूमिका अदा की।

राजनीतिक दलों पर अब तक ग्रामीण हितों का वर्चस्व कायम था और उन्होंने उस तरह की नीति का अनुसरण किया जो उनकी चिन्ताओं तथा हितों को प्रकट करती थीं। जबकि ये दल हांबात्सू के कड़े विरोधी थे लेकिन जब कभी भी आवश्यक हुआ तब उन्होंने इसके साथ समझौता किया। वे क्षेत्रीय एवं व्यक्तिगत वफादारियों को भी लेकर विभाजित थे। उदाहरण के तौर पर इतागाकी तोसा क्षेत्र से तथा दूसरे गुट क्यूशू या कान्तों से थे। इस क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्विता एवं गुटबाजी ने एकता का मार्ग अवरुद्ध किया और गहरे विरोधों को जन्म दिया। दूसरी कमजोरी यह थी कि पीर्स के सदन में राजनैतिक दलों का कोई प्रतिनिधित्व न था और उनका स्थानीय राजनीति पर भी कोई नियन्त्रण न था क्योंकि सभी मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती थी। इस तरह से राजनीतिक दलों में विभाजन हुआ और वे आपसी कलह में व्यस्त हो गए। उनको शासक तन्त्र के विरोध का भी सामना करना पड़ा। इन शासक तन्त्र का मुख्य संस्थाओं पर नियन्त्रण था।

शहरी व्यापारिक गुटों के हितों का महत्व उन चुनावी कानूनों के संशोधन में निहित था जिनके द्वारा मत देने वाले एवं प्रत्याशी के लिये कर देने की योग्यता में कमी कर दी गई थी। इसके कारण मतदाताओं की संख्या में 1898 में 502,000 से 1900 में 989000 तक की बढ़ोतरी हुई। निर्वाचन जिलों के संशोधन का उन शहरी क्षेत्रों को लाभ हुआ जहां पर कुछ लोग ही प्रतिनिधि का चुनाव कर सकते थे। इस तरह से डायट में शहरी प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई।

सितम्बर 1900 में इसतो हीरोबूमि ने संवैधानिक सरकारी पार्टी के मित्रों को संगठित किया और इसको जापानी भाषा में **सेयूकाय** के नाम से पुकारा गया। यह इतो के उस लक्ष्य का प्रतिनिधित्व करती थी जिसके अनुसार वह यह तर्क प्रस्तुत करता था कि सरकार को अपनी स्वयं की पार्टी का गठन करना चाहिये जिससे वह निचले सदन पर अपना नियन्त्रण कायम कर सके। उसका विरोध यामागाता तथा मेजी शासक तन्त्र के दसरे लोगों द्वारा किया

गया। **केनसैतो** तथा यामागाता के बीच हुआ गठबंधन भी संक्षिप्त साबित हुआ और एक दल ने यह महसूस किया कि शासक तन्त्र के द्वारा कोई विशेष छूट दी जाने वाली नहीं। एक बार होशी तोरू ने यह महसूस किया कि यामागाता के साथ मिलकर काम करने से कुछ लाभ हो सकता है।

वह इतो के पास पहुंचा तथा उसके साथ मिलकर काम करने की इच्छा व्यक्त की। उनके हित एक सिक्के के दो पहलू थे। हांबात्सू तथा उन दलीय तत्वों के द्वारा **सेयूकाय** का गठन किया गया था जो राजनीति में स्थायित्व की तलाश में थे और 1920 के दशक तक इसका वर्चस्व बना रहा।

इतो हिरोबूमि का विरोध यामागाता ऐरितोमो के द्वारा किया गया। ऐरितोमो के राजनीतिक विचार भिन्न प्रकार के थे और उसका गुट शासक तन्त्र या हांबात्सू के अन्दर एक महत्वपूर्ण गुट था। **सेयूकाय**, यामागाता गुट तथा **केनसैहोन्तो** के बीच राजनीतिक सत्ता के लिये संघर्ष था। **कैनसे होन्तो शिम्पोतो** विचारधारा का अनुसरण कर रहा था। 1913 में यामागाता गुट के कातसूरा तारों ने मित्रों की संवैधानिक एसोसिएशन का गठन किया और 1916 में यह **केनसैकाय** संवैधानिक एसोसिएशन हो गई तथा इसने इतो की **सेयूकाय** का विरोध किया।

1904 के रूस-जापान युद्ध से 1912 तक राजनीतिक सत्ता यामागाता गुट के कातसुरा तारो तथा सायओनजी किमोशी के हाथों में बारी-बारी से रही। कानसुरा ने तीन मन्त्रिमण्डलों का नेतृत्व किया और किंमोशी ने **सेयूकाय** का अध्यक्ष बनने पर दो बार मन्त्रिमण्डल का गठन किया।

इस समय **सेयूकाय** का सबसे महत्वपूर्ण नेता हारा ताकेशी था और वह प्रथम प्रधान मंत्री बनने वाला था। वह पार्टी का आदमी था और उसने **सेयूकाय** को एक ऐसी प्रभावशाली पार्टी बनाया कि उसका संगठन सम्पूर्ण जापान में फैल गया। अन्य राजनीतिक दलों के साथ मिलकर काम करने के स्थान पर उसने यामागाता के गुट के साथ राजनीतिक नीति के तहत गठबंधन करना उचित समझा। हारा और उसकी पार्टी **सेयूकाय** ने "सकारात्मक नीति" का अनुसरण किया। चीन-जापान युद्ध से पूर्व अन्य दलों ने सरकारी खर्च को सीमित करने का प्रयास किया जबकि हारा ने रेलवे लाइन निर्माण, बन्दरगाहों को सुधारने तथा सम्पर्क तन्त्र को और अधिक चुस्त बनाने के लिये सरकारी खर्च को बढ़ाने के प्रयास किये। इन खर्चों के कारण वित्त को स्थानीय समुदायों की ओर मोड़ा जा सका और सेयुकाय का प्रभाव बनाने में इस नीति ने मदद की। हारा ने हाऊस ऑफ पीर्स (House of Pears) में भी समर्थन बढ़ाने का प्रयास किया लेकिन इस नीति को 1920 में उस समय सफलता प्राप्त हुई जबकि पीर्स के अन्दर से ही कुछ गुट समर्थन करने के लिये आ गये।

हारा ने जहां एक ओर पार्टी को संगठित किया और उसके प्रभाव को बढ़ाया वहीं पर उसने आम मताधिकार की मांग का समर्थन नहीं किया। इस मांग को पहली बार 1910 में उठाया गया तथा पुनः 1919-20 में फिर उठाया गया और इस बार सारे देश में इस मांग के समर्थन में व्यापक तौर पर प्रदर्शन हुए। बुद्धिजीवियों के साथ-साथ श्रमिक एवं दलों के नेतागण भी इस आंदोलन में सक्रिय थे। हारा को इस मांग का समर्थन करने में सन्देह था क्योंकि उसका विचार था कि इससे जन दबाव बढ़ जायेगा। उसने सोचा कि इस तरह के निर्णय को धीरे-धीरे लागू किया जाये। इस आंदोलन के कारण सदन को भंग कर दिया गया और आम चुनाव में **सेयूकाय** दल सबसे बड़े दल के रूप में उभरा। विरोधी दलों ने शहरी क्षेत्रों में अपनी स्थिति में सुधार किया जिससे यह स्पष्ट हुआ कि सार्वभौमिक मताधिकार की मांग का शहरी क्षेत्रों में अधिक समर्थन था।

सेयूकाय तथा यामागाता गुट के बीच संबंधों में न तो स्थायित्व था और न ही निरंतरता। दबावों एवं खिंचावों के कारण उनके बीच मतभेद उभरते रहते थे। **सेयूकाय** की शक्ति के कारण यामागाता गुट इस पर निर्भर था। यह **सेयूकाय** विरोध गठबंधन को **कैसे होन्तों** के तत्वों एवं अन्य छोटे गुटों के साथ प्रभावशाली ढंग से बनाने मे असफल रहा। **सेयूकाय** के साथ गठबंधन करने के कारण **कैसेहोन्तों** में विभाजन हो गया जबकि अन्य गुटों ने यामागाता के साथ मिलकर काम करने के विचार का समर्थन किया। यह संतुलन 1912-1913 में उस समय छूट गया जबकि **तेशो** का राजनीतिक संकट पैदा हो गया था।

कुछ विद्वानों का मत है कि गठबंधन एवं सहयोग का यह प्रतिमान उस नीति का प्रतिनिधित्व करता था जिसको **जोई तोगो** या दो शक्तियों के बीच अन्तर्निहित पारस्परिक सहमति का नाम दिया गया। इसका तात्पर्य यह था कि सरकार की शक्तियों तथा राजनीतिक दलों के बीच एक अन्तर्निहित सहमति थी और उन्होंने इस सामान्यतः स्वीकृत किये गये मॉडल के अन्तर्गत कार्य किया। फिर भी यहां पर यह जानना अति महत्वपूर्ण है कि शासक तन्त्र दलीय राजनीति में और गहरा उतरता गया और कलसुश तारो ने **सेयूकाय** के प्रभुत्व को तोड़ने का प्रयास किया और उसने एक राजनीतिक दल का गठन भी किया। जापान में हो रहे परिवर्तनों के माध्यम से भी **हांबात्सू** की शक्ति में हुई कमी की अभिव्यक्ति हुई। मेजी शासन काल के प्रारम्भ में **हांबात्सू** एक ऐसा गुप्त एवं समरूपी गुट था जिसने समान उद्देश्यों के लिये संघर्ष किया और पुनर्स्थापन में उसने जो योगदान दिया उसके कारण उसे व्यापक समर्थन भी प्राप्त हुआ। लेकिन अब यह बिल्कुल भी सत्य न था और राजनीतिक सत्ता का उपयोग अब उन राजनीतिक दलों के द्वारा किया गया जो विरोधी हितों को जोड़ने एवं उनके बीच समझौता करने के लिये कार्य करते थे।

बोध प्रश्न 1

1) मेजी शासक तन्त्र का राजनीतिक दलों के प्रति क्या दृष्टिकोण था? इसका विवेचन लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) जियूतो का गठन कैसे हुआ? पांच पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....

22.3 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

रूस-जापान युद्ध के बाद का काल जापान की आर्थिक सम्पन्नता का काल था। इसके साथ-साथ शहरीकरण तथा शिक्षा प्रसार में हुई वृद्धि के कारण अन्य दूसरे क्षेत्रों में हुई प्रगति के साथ-साथ बुद्धिजीवी वर्ग का भी विकास हुआ। उदाहरण के तौर पर 1905 में जापान में एक समाचार पत्र की 1,50,000 प्रतियाँ प्रकाशित होती थीं और 1922 में यह

संख्या बढ़कर 500,000 हो गई। शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना में हुए प्रसार के कारण राजनीतिक विचारों में अभिव्यक्ति भी व्यापक स्तर पर हुई। इसकी पुष्टि लोकतन्त्र के विषय में राजनीतिक विचारों तथा राजनीतिक सहभागिता में हुई वृद्धि से भी होती है।

1882 में औरियंटल समाजवादी पार्टी का गठन किया गया लेकिन इस पर शीघ्र ही प्रतिबंद्ध लगा दिया गया। फिर भी समाजवादी विचारों का प्रसार होता रहा और अध्ययन केन्द्रों का निर्माण किया गया। अन्ततः सन् 1901 में सोशलिस्ट डेमोक्रेटिक सोसाइटी (**शकाय मिन्शुतो**) का गठन किया गया। इस तरह के विचारों एवं राजनीतिक दलों के उदय पर चिन्ता व्यक्त की गई और इन संगठनों की गतिविधियों का दमन करने के लिये 1900 में शांति बनाये रखने के कानून को पारित कर दिया गया। समाजवादी दलों ने पुनर्गठबंधन किये और 1906 में जापान की समाजवादी पार्टी (**निहोन शकायतो**) का उदय एक मूलगामी दल के रूप में हुआ तथा उसके नेता कोतोकू शूसूई जैसे लोग थे तथा कोतोकू ने सीधी कार्यवाही (Direct Action) की वकालत की। इस दल पर 1907 में प्रतिबंद्ध लगा दिया गया तथा कोतोकू एवं अन्य पर देशद्रोह के आरोप में मुकदमा चलाया गया।

1907 में कातायाम सेन जैसे उदार समाजवादियों ने सोशलिस्ट्स कामनर्स पार्टी का गठन किया लेकिन इस दल पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया क्योंकि सरकार इस तरह के उदार विचारों को भी सहन करने के लिये तैयार न थी। वर्ग संघर्ष में और अधिक चेतना को उत्पन्न करने तथा एक समान समाज की स्थापना करने के लिये उग्रवादी कार्यवाही करने की आवश्यकता पर रूसी क्रान्ति का निर्णायक प्रभाव पड़ा। इसी कारण से 1922 में जापान की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई।

22.4 दलीय मन्त्रिमण्डल व्यवस्था

राजनीतिक दलों की शक्ति तथा घटनाओं को प्रभावित करने की उनकी क्षमता को गम्भीर रूप से सीमित कर दिया गया था। क्योंकि राजनीतिक जीवन में ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण क्षेत्र थे जो उनके नियन्त्रण में न थे। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित उदाहरण दिये जा सकते हैं:

- नौकरशाही एवं सैनिक सेवा प्रत्यक्ष तौर पर सम्राट के अधीन कार्य करती थी और इसलिये वे राजनीतिक दलों के नियन्त्रण से मुक्त थीं।
- 1899 में अधिकतर सरकारी नौकरियों के लिये नागरिक सेवा परीक्षण को कानून के द्वारा अनिवार्य कर दिया गया।
- मेजी संविधान ने मेजी सम्राट को सेना पर नियन्त्रण प्रदान कर दिया था और 1899 से सक्रिय अधिकारी ही सेना एवं नौसेना के मन्त्री हो सकते थे और इस तरह से सैनिक कमाण्ड को अधिक नियन्त्रण प्राप्त था। सन 1912 में सेना ने इस शक्ति का प्रयोग सरकार गिराने के लिये किया। सेना मन्त्री यूहारा यासकी ने इसलिये त्याग पत्र दे दिया था क्योंकि मन्त्रिमण्डल ने दो अन्य डिविजनों के निर्माण की सेना की मांग को मानने से इंकार कर दिया था। सरकार को इसलिये गिरा दिया गया क्योंकि सेना ने उत्तराधिकारी को नियुक्त करने से इंकार कर दिया।

1921 में हारा ताकेशी की हत्या कर दी गई और इसके बाद गैर-दलीय मन्त्रिमण्डलों का गठन हुआ। हारा के उत्तराधिकारी ने सात माह के बाद त्याग-पत्र दे दिया। कातों तोमासबूरो ने एक अनुभव विहीन मन्त्रिमण्डल का गठन किया और उसके बाद यामातो ने और कियोरा कैगो ने। कियोरा मन्त्रिमण्डल के दौरान **केन्सेकाय, सेयूकाय** तथा सुधार क्लब ने संविधान की रक्षा के लिये दूसरा आंदोलन शुरू किया और मई 1924 में आम चुनाव के समय उन्होंने कातो ताकि के नेतृत्व में एक संविद मन्त्रिमण्डल का गठन किया।

इस समय में कुछ सदस्यों ने **सेयूकाय** को छोड़ दिया और **रिक्कैन मिनसैतो** (संवैधानिक लोकतान्त्रिक दल) का गठन करने के लिये वे **केन्सेकाय** में शामिल हो गये। पहले 1925 में

सुधार क्लब के सदस्य **सेयूकाय** में शामिल हो गये थे। इन दोनों दलों ने अर्थात **सेयूकाय** एवं **केन्सेकाय** ने मई 1932 तक वैकल्पिक तौर पर मन्त्रिमण्डलों का गठन किया जबकि 15 मई की घटनाओं में **सेयूकाय** प्रधान मन्त्री सूयोशिक की हत्या कर दी गई थी। इस काल को "दलीय शासन" कह कर उद्धृत किया गया है और यह "तैशो लोकतन्त्र" के पनपने का प्रतिनिधित्व करता है।

इस समय तक सैन्जी किन्मोशी को छोड़ कर बाकी उन सभी जेनरो का देहान्त हो चुका था जो राजनीतिक निर्णय करने वाले एवं सरकारों को तोड़ने वाले थे। राजनीतिक दलों ने अपनी शक्ति एवं अपने नियन्त्रण का विस्तार कर लिया था। मितानी तैशिरों ने तर्क दिया है कि ऐसी छः परिस्थितियां थी जिनके अन्तर्गत 1924-1932 तक दलीय मन्त्रिमण्डल का कार्य करना सम्भव हो सका। ये छः परिस्थितियां निम्नलिखित थीं:

i) 1924 तक डायट का निचला सदन मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण करने वाली मुख्य शक्ति बन चुका था और यह "हाऊस ऑफ पीर्स" से कहीं अधिक शक्तिशाली था।

ii) संवैधानिक विशेषज्ञ मिनोबे तात्सूकिशि के विचारों ने दलीय शासन के लिये आधार उपलब्ध कराया। उसका कहना था कि साम्राज्यिक डायट राज्य का ऐसा अवयव नहीं है जिसको सम्राट के द्वारा शक्ति प्रदान की गई हो बल्कि "वह जनता की प्रतिनिधि है।" इस अवधारणा का अन्त करने के लिये उसने हाउस ऑफ पीर्स का चुनाव किया। मिनौबे के विचारों को नौकरशाही ने स्वीकार किया और उसके सिद्धान्तों को न्यायिक तथा नौकरशाही की सेवाओं के लिये होने वाली प्रवेश परीक्षा में शामिल कर लिया गया।

iii) 1888 में स्थापित की गई प्रिवी कौंसिल ने एक निर्णायक भूमिका अदा की और राजनीतिक दलों की शक्ति में होने वाली वृद्धि के विरुद्ध एक सुरक्षा का कार्य किया। यामागा कौंसिल का अन्तिम शक्तिशाली अध्यक्ष था और 1924 के बाद इसकी भूमिका में कमी आयी। अन्तिम जेनरो सैओंजी ने प्रिवी काउसिंल की भूमिका को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

iv) राजनीतिक दलों तथा नौकरशाही के बीच एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी और दलों का नेतृत्व का तो तकाकी, तनाका गिशी, आदि जैसे भूतपूर्व नौकरशाहों द्वारा किया गया। इन नीति का प्रारम्भ हारा तकेशी के गम्भीर प्रयासों के कारण हुआ था तथा उसने दल–नौकरशाही संबंधों को और मजबूत किया।

v) न्यायपालिका पार्टी विरोधी थी लेकिन जूरी (न्यायपालिका) की व्यवस्था की स्थापना के द्वारा उस पर पार्टी का नियंत्रण हो गया। हारा ने न्यायपालिका के अधिकारियों से भी प्रगाढ़ संबंध बनाये और संरक्षण के द्वारा सैयूका के लिये उनके समर्थन को प्राप्त कर लिया और उन्होंने भी जूरी व्यवस्था का समर्थन किया जो 1923 में हारा की मृत्यु के बाद कानून बन गया।

vi) सेना तथा दलों के बीच के रिश्ते निर्णायक तौर पर महत्वपूर्ण थे। 1921-22 के वाशिंगटन सम्मेलन के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हथियारों को कम करने के एक युग का प्रारम्भ हुआ और इसने सेना की प्रसार योजना पर एक कुठाराघात किया। इस सन्दर्भ में सैनिक अधिकारियों ने राजनीतिक दलों के सहयोग करने में अपना लाभ समझा। 1919 में तरोशी तथा 1922 में यामागाता जैसे नेताओं की मृत्यु के बाद तनाका गिशी जैसे सेना के नेताओं ने एक आधुनिक एवं तकनीकी तौर पर सर्वोच्च सेना के निर्माण के लिये सैयूका तथा हारा के साथ सक्रिय सहयोग करना शुरू कर दिया। इसी के साथ उन्होंने सुरक्षित की गई सेना की एसोसिएशनों के महत्व को बढ़ाने में मदद की। तनाका स्वयं सेयूका के काफी नजदीक हो गया तथा 1929 में अपनी मृत्यु तक इस पद पर बना रहा।

तनाका गिशी ही एकमात्र ऐसा नेता न था जो सेना के साथ मिल कर कार्य करना चाहता था। अन्य दूसरे नेता भी इस तरह की कार्यवाही का समर्थन करते थे और कई दूसरे ऐसे भी थे जो इस तरह की कार्यवाहियों का विरोध करते थे। उहारा युसाकू जैसे सेनापति इस तरह के सहयोग के विरोधी थे। वे सेना की निष्पक्ष और उसकी स्वतन्त्रता को बनाये रखना चाहते थे। इसी नीति के एक भाग के रूप में उन्होंने

महाद्वीप में आगे बढ़ने की नीति का समर्थन किया। इन विरोधों को नियन्त्रण में रखा गया और ये उसी समय अभिव्यक्त हो पाये जब कि 1930 में लन्दन नौसेना संधि को लेकर विवाद हुआ। मितानी तार्याशिरो के अनुसार इन सभी परिस्थितियों के कारण 1932 तक राजनीतिक दलों के द्वारा कार्य करना सम्भव हो सका, लेकिन एक बार जैसे ही इन परिस्थितियों में परिवर्तन होना शुरू हुआ, वैसे ही सरकार चलाना असम्भव हो गया।

22.5 राजनीतिक दलों का पतन

बहुत कारणों से राजनीतिक दलों का पतन हुआ और उनमें कुछ विशेष महत्वपूर्ण कारणों का हम इस भाग में विवेचन करेंगे।

22.5.1 बाह्य एवं आन्तरिक कारण

राजनीतिक दलों के प्रभाव में कमी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में हुए बदलाव एवं उन घरेलू दबावों के कारण आयी थी जिनसे सैन्यवादियों के हाथ मजबूत हुए। बाह्य तौर पर आर्थिक मंदी ने जापान में सामाजिक तनावों को बढ़ावा दिया और बढ़ते चीनी राष्ट्रवाद ने भी जापानी हितों पर दबाव डाला। चीन में च्यांग काई शेक की ताकत में वृद्धि हो रही थी और जापान ने महसूस किया कि मंचूरिया में उसके हितों को खतरा हो गया था। वाशिंगटन की व्यवस्था ने बड़ी शक्तियों के बीच सहयोग एवं मेल-मिलाप के वातावरण को पैदा किया, लेकिन इसके महत्व को कम करके आंका गया और जापान ने पुनः सोचा कि उसके हितों की पर्याप्त तौर पर सुरक्षा नहीं की गई।

सेना के प्रभाव एवं शक्ति का प्रसार हो रहा था और इससे राजनीतिक दलों के प्रभाव में कमी आई।मंचूकूओं की स्थापना ने सेना की स्वतन्त्रता को स्पष्ट कर दिया। कृषि में आयी मंदी के कारण आन्तरिक स्थिति और जटिल हो गई तथा इसी के साथ-साथ यह भावना भी बलवती होती जा रही थी कि धनी एवं बड़े व्यापारियों को आर्थिक नीतियों से लाभ हो रहा था।

इन घटनाओं ने व्यापक आलोचना एवं वाद-विवाद को जन्म दिया। आलोचना सीधे-सीधे राजनीतिक दलों की कमजोरी एवं उनके भ्रष्टाचार के विरुद्ध थी। लेकिन जिस संकट का सामना राष्ट्र कर रहा था तथा इसका हल कैसे किया जा सकता था– इन पर अधिकतर वाद-विवाद केन्द्रित था। मई 1932 में राजनीतिक दलों ने प्रधानमंत्री के पद को खो दिया और 1941 तक उनको मन्त्रिमण्डल में कोई स्थान न मिला। दलीय शासन में तेज़ी से आई गिरावट और उसका अन्त इन बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तनों की उपज था। जहां एक ओर इस दशक में एक नये व्यापारिक प्रबुद्ध वर्ग की शक्ति का उदय हुआ वहीं इसी के साथ-साथ नागरिक एवं सैनिक नौकरशाही की शक्ति में भी वृद्धि हुई। इसी दशक में राष्ट्रीय नीति का निर्माण करने के प्रयासों के कारण भी तनाव पैदा हुए।

1926 में जापान में घरेलू अर्थव्यवस्था में मंदी व्याप्त थी और इसी के साथ-साथ 1927 में बैंक संकट पैदा हो गया। इनके कारण सरकार को बाध्य हो कर निम्नलिखित कदमों को उठाना पड़ा:

- सरकार के खर्चों में कटौती की गई,
- स्वर्ण स्तर की ओर वापस लौटा गया, और
- उद्योग को व्यवस्थित एवं मशीनीकृत किया गया।

1929 की मंदी के साथ स्थिति और बिगड़ गई क्योंकि इसके कारण आमदनी में कमी आयी और बेरोजगारी बढ़ी। ग्रामीण क्षेत्रों को जबरदस्त आर्थिक भार का सामना करना पड़ा और 1934 में कुछ क्षेत्रों में खराब फसल हो जाने से संकट और गहरा हो गया।

हामागुशी के नेतृत्व में **मिसेटो** की सरकार की असफलता तथा लन्दन में नौसेना सम्मेलन में इसकी असफलता (जापान अपनी नौसेना के जहाज माल पर कोई सीमांकन स्वीकार नहीं करना चाहता था लेकिन इसको स्वीकार करने के लिये उसे बाध्य किया गया) के कारण 1930 में हामागुशी की हत्या कर दी गई। आगामी वर्षों में प्रतिक्रियावादी गुट का राजनीति में महत्व बढ़ गया और उनकी आतंकित करने वाली नीतियों का वर्चस्व कायम हो गया। ये गुट उस संकट की अभिव्यक्ति मात्र थे जिसका सामना राष्ट्र कर रहा था और ये राजनीतिक दलों की नीतियों से उपजे असन्तोष की अभिव्यक्ति भी थे। उनके द्वारा राष्ट्र हित में किये गये निःस्वार्थ कार्यों की प्रशंसा की गई थी किन्तु उन्होंने इनकी भी अवमानना की।

इस वातावरण में सेना के अधिकारियों ने क्वांग तुग सेना का नेतृत्व किया तथा 1931 में मंचूरिया की घटना को उकसाया। उन्होंने सोचा कि मंचूरिया में जापान के हितों को खतरा था। 1932 में मंचूरिया एक स्वतन्त्र राज्य हो गया तथा इस पर एक तरह से जापान का अधिकार हो गया। संयुक्त राष्ट्र लीग ने इस के अधिग्रहण का विरोध किया। लेकिन वाकात्सूकी मन्त्रिमण्डल इस विषय में कुछ भी करने में असमर्थ था बल्कि इस मन्त्रिमण्डल के कई सदस्यों ने सेना की इस कार्यवाही का समर्थन किया। इनूकाय त्यूसोशी वाकात्सूरी का उत्तराधिकारी बना। इनूकाय सेयूकाय का अध्यक्ष था तथा वह अन्तिम दलीय प्रधान मन्त्री था। इनूकाय के द्वारा चीनियों के साथ बातचीत तथा बिगड़ती आर्थिक स्थिति ने जापान में आतंकवाद के लिये माहौल को परिपक्व किया और 15 मई, 1932 को इनूकाय की हत्या कर दी गई।

राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति में अगले मन्त्रिमण्डल का गठन हुआ और इसका गठन एडमिरल सेतो मकोतो के द्वारा किया गया। सेतो का चुनाव अन्तिम **जेनरो** सायओजि के द्वारा किया गया। राजनीतिक दलों ने इस आशा के साथ नये मन्त्रिमण्डल का समर्थन किया कि वे अपनी स्थिति को पुनः प्राप्त कर लेंगे। लेकिन उसका अनुसरण 1934 में एडमिरल ओकाडा कैसूके ने किया। राजनीतिक दलों की असफलता का कारण नौकरशाही एवं सेना का बढ़ता प्रभाव था। नौकरशाही तथा विशेषकर गृह मंत्रालय ने अर्थव्यवस्था को दुरस्त करने के कार्यक्रम का संचालन किया और इसके कारण इसका जनता पर भी प्रभाव बढ़ने लगा।

इन घटनाओं से सेना को भी लाभ हुआ। सेना के योजनाकर्ता अब देश की सामाजिक-आर्थिक ताकत के महत्व के प्रति सजग थे और युद्ध की स्थिति में वे देश की सम्पूर्ण शक्ति एवं संसाधनों को गतिशील कर सकते थे। इस तरह से उन्होंने "राष्ट्रीय गतिशीलता" पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इन बहुत से उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये सरकार ने ऐसी एजेंसियों का निर्माण किया जिन्होंने मन्त्रालयों की सभी सीमाओं को लांघ दिया। सन् 1933 में मन्त्रिमण्डल शोध ब्यूरो का निर्माण नागरिक सेवाओं तथा सेना के विशेषज्ञों को मिलाकर किया गया। इन नये संबंधों के कारण दलों के हितों को नुकसान पहुंचा।

राजनीतिक दलों के महत्व के पतन की अभिव्यक्ति उद्योग तथा नौकरशाही से होने वाली नयी भर्ती की कमी में भी हुई। पुराने नेताओं की हत्या कर दी गई थी और नया कोई आगे आ नहीं रहा था। **सेयूकाय** में अपने स्वयं के विरोध के कारण भारी पतन हुआ और फरवरी 1926 में हुए चुनाव में उसके केवल 176 सदस्य निर्वाचित हो पाये और 126 पराजित हो गये। गोर्डन बर्गर का कथन है कि फरवरी 1936 से जुलाई 1937 के बीच मेजी राजनीतिक व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिये जबरदस्त दबाव डाले गये। संघर्षों को हल करने तथा एक दूसरे के प्रतियोगी हिस्से में सहयोग करने के प्रयासों को राजनीतिक दलों के द्वारा सम्पन्न किया जाता था लेकिन अब ऐसा करने की शक्ति उनके पास न थी। इस तरह की स्थिति में अन्य गुटों ने ऐसी संस्थाओं को बनाने का प्रयास किया जो इन तरह के कार्यों को पूरा कर सकें।

22.5.2 राष्ट्रीय रक्षा राज्य (नेशनल डिफेंस स्टेट)

"राष्ट्रीय रक्षा राज्य" (**कोकूबो कोक्का**) बनाने से तात्पर्य देश को एक पूर्ण युद्ध के लिये तैयार करना था और इस योजना का अनुमोदन सेना तथा नौकरशाही के द्वारा किया गया।

मंत्रिमण्डल शोध ब्यूरो—मन्त्रालयों से ऊपर सर्वोच्च संगठन को बनाने के उनके प्रयास जबरदस्त विरोध के कारण सफल न हो सके। अगली सरकार ने व्यापारी वर्ग एवं सेना के मध्य कुछ सहयोग करने का समय समझा और उस समय उसको "वित्त के साथ गठबंधन" का नाम दिया गया। इस गठबंधन में राजनीतिक दलों को पूर्णतः अलग रखा गया और जब भी राजनीतिज्ञ मन्त्रिमण्डल में शामिल हुए तभी उनको दल से त्यागपत्र देना पड़ा।

राजकुमार कोनोइ फूमीमारो के मन्त्रिमण्डल ने अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिये नए आर्थिक नीतियों को लागू करने के कार्य को जारी रखा। इस स्थिति में उन्हें असमंजस का सामना करना पड़ा। क्योंकि विकास कार्यों के लिये धन जुटाने हेतु कर लगाना आवश्यक था लेकिन मंदी के कारण इस तरह के करों का जनता के द्वारा विरोध किया जाता। इसलिये उन्होंने जनता को गतिशील करने या राज्य की सुरक्षा पर जोर देने के लिये सरकारी दलों का उपयोग किया। उन्होंने किसी भी प्रकार की असहमति का दमन किया।

1937 में जापान चीन के साथ युद्ध करना चाहता था और जापान के कई नेताओं ने सोचा कि चीनी राष्ट्रवाद को कुचलने का यह सुअवसर है। आन्तरिक तौर पर इस योजना के समर्थन में जनता को गतिशील किया गया तथा इसके विरोध को और कम कर दिया। मन्त्रिमण्डल ने इस एकता का उपयोग अपनी नीतियों को जारी रखने के लिये किया लेकिन संसाधनों को युद्ध की ओर अग्रसर कर दिये जाने से आर्थिक योजनाओं को लागू कर पाना असम्भव हो गया। अब बहुत से प्रबुद्ध वर्गों के बीच संघर्ष और गहरा हो गया। कोनोइ का उत्तराधिकार हिरोमा किशीरा और उसके बाद थोड़े समय के लिये एबे नोबूयूकी मन्त्रिमण्डल द्वारा किया गया। इस मन्त्रिमण्डल को भी निचले सदन के द्वारा हटाया गया क्योंकि निचले सदन में स्थापित दलों के खिलाफ असन्तोष बढ़ रहा था।

घरेलू राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले सुधारों की प्रवृत्ति पर सेना का वर्चस्व था तथा सेना भी अपने राजनीतिक सहयोगी की तलाश में थी। अन्ततः उन्होंने कोनो फूमिमारो के साथ समझौता कर लिया। कोनो ने एक ऐसी योजना को तैयार किया जिसके द्वारा बजट घाटे से ग्रस्त मेजीराज्य बाहर निकल जायेगा और "राष्ट्रीय लामबंद राज्य" (नेशनल मोबिलाइजेशन स्टेट) की स्थापना करना सम्भव हो सकेगा। 26 जुलाई 1940 को उसके नेतृत्व में सरकार ने "मूलभूत राष्ट्रीय नीतियों के प्रारूप" को अपनाया। यह नीति एक नियन्त्रित अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक तौर पर वफादार जनता को तैयार करने के लिये थी। सरकार ने अपनी प्रसारवादी नीतियों को और अधिक निश्चय के साथ जारी रखा क्योंकि उनको लगातार आर्थिक नाकेबंदी का भय था। 12 अक्टूबर 1940 को इम्पीरियल रूल एसिसटेन्स एसोशियसन (आई.आर.ए.ए.) का गठन किया गया और ऐसा एक नई व्यवस्था के लिये एक राजनीतिक दल के रूप में किया गया। जबकि राजनीतिक दलों को भंग कर दिया गया था तब आई.आर.ए.ए. एक सही अर्थों में राजनीतिक दल न बन सका और यही जनता को लामबद करने वाली एक सरकारी एजेन्सी बन गई। जापान को एक प्रसारवादी शक्ति बनाने के उद्देश्य को पूरा करने हेतु बनायी गयी बहुत सी संस्थायें सफल न हों पायी तथा मेजी सरकार के अधीन पुरानी संस्थाओं एवं मन्त्रालयों की स्थापना का कार्य जारी रहा। दूसरे विश्व युद्ध का उपयोग एक सार्वभौमिक विचारधारा को बनाने तथा असहमति को दबाने के लिये होना था लेकिन गोर्डन बर्नर के अनुसार वे नयी केंद्रीय व्यवस्था को बनाने में असफल रहे। जनरल तोजो के मन्त्रिमण्डल के अधीन राजनीतिक प्रतियोगिता विद्यमान थी और यह पहले की तरह थी। 1945 में आत्मसमर्पण करने का निर्णय इस व्यवस्था के धराशायी होने का प्रतीक था। राजनीतिक प्रबुद्ध वर्ग ने सम्राट से हस्तक्षेप की मांग की। सम्राट राजनीतिक व्यवस्था से पृथक बना रहा था।

बोध प्रश्न 2

1) जापान में समाजवादी विचारों के विकास का वर्णन कीजिये। उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....
....
....
....
....
....
....
....

2) वे कौन सी छः परिस्थितियां थीं जिनके कारण 1924-1932 तक दलीय मन्त्रिमण्डल के लिये कार्य करना सम्भव हो सका? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) जापान में दलीय मन्त्रिमण्डल के पतन के कारणों को बताइये। उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

22.6 सारांश

जापान में दलीय सरकार का उत्थान एवं पतन एक जटिल प्रक्रिया थी। यह

महत्वपूर्ण है कि मेजी शासन तन्त्र द्वारा निर्मित संवैधानिक सरकार को दलीय सरकार का मूलरूप से विरोध करना पड़ा। इस तरह के शत्रुतापूर्ण वातावरण में राजनीतिक दलों तथा उनके समर्थकों को जहां एक ओर अपनी देशी परम्पराओं से शक्ति प्राप्त करनी पड़ी वहीं पर उन्होंने पश्चिमी विचारों का भी सहारा लेते हुए एक ऐसी व्यवस्था को बनाया जिसके अन्तर्गत वे कुछ शक्ति का उपयोग कर सके। लेकिन वे ऐसा तभी कर पाये जबकि उन्होंने मेजी शासन तन्त्र के साथ समझौता किया।

मेजी शासन तन्त्र ने यह भी समझ लिया था कि यदि वे संवैधानिक ढांचे के अन्तर्गत सरकार का संचालन करेंगे तब उनको राजनीतिक दलों की सहमति प्राप्त करनी होगी। इस तरह दलीय सरकार मूलभूत परिवर्तनों को न ला सकी और उनको मेजी व्यवस्था के अन्तर्गत ही काम करना पड़ा।

समाजवादी, साम्यवादी और अन्य उग्रवादी गुट कोई व्यापक आधार वाला जन आंदोलन संगठित करने में असफल रहे। लेकिन उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया और सफलतापूर्वक उन लोगों की समस्याओं को उठाया भी जो औद्योगिक विकास के कारण समस्याओं का सामना कर रहे थे।

सेना डायट के नियन्त्रण से मुक्त थी और इसका स्वतन्त्र अस्तित्व था। जापान के सुरक्षा हितों के प्रति सेना का जो दृष्टिकोण था उसके फलस्वरूप सेना ने धीरे-धीरे लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के महत्व को कम किया और उन दलीय मन्त्रिमण्डलों को हटा दिया जिन्होंने सेना के विचारों को मानने से इंकार किया। लेकिन इन सबके बावजूद वास्तविक तौर पर सर्व-सत्तावाद की व्यवस्था को न लादा जा सका और इसके चरमोत्कर्ष के समय में भी राजनीतिक प्रतियोगिता निरन्तर जारी रही। ऐसा इसलिये हुआ कि जापानी "फासीवाद" का चरित्र यूरोप में स्थापित फासीवाद से भिन्न था।

जापान में "फासीवाद" था या नहीं यह एक बड़ी बहस का विषय है और अधिकतर पश्चिमी विद्वान इस विचार का अनुसरण नहीं करते। (देखें इकाई 25) न यह ही कहा जाता है कि यह व्यवस्था लोकतन्त्रवादी नहीं थी और जापान विदेशों के साथ सैन्यवाद दुःस्साहस की नीति का अनुसरण नहीं कर रहा था। अन्ततः यह समझा जाना चाहिये कि मेजी ढांचे में दलीय व्यवस्था एकीकृत हो चुकी थी और इतने प्रतियोगी हितों को अपनी प्रतियोगी मांगों के लिये बात चीत करने की अनुमति प्रदान की।

22.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें भाग 22.2
2) अपने उत्तर का आधार भाग 22.2 को बनायें

बोध प्रश्न 2

1) भाग 22.3 को उद्धृत्त करें
2) देखें उपभाग 22.3.1
3) देखें भाग 22.4

इकाई 23 सैन्यवाद का उदय

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य
23.1 प्रस्तावना
23.2 शासन का चरित्र
23.3 सेना एवं सरकार
23.4 राजनीतिक दलों के साथ सेना की नाराज़गी
23.5 शिक्षा एवं राष्ट्रवाद
23.6 विचारों एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठाराघात
23.6.1 सेना का विरोध
23.6.2 1930 के बाद के अधिनियम
23.7 सेना के अंदर विभाजन
23.8 सेना की तानाशाही
23.9 युद्ध एवं आर्थिक नीतियां
23.10 युद्ध एवं सेना का व्यवहार
23.11 सारांश
23.12 शब्दावली
23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको जानकारी हो सकेगी:

- 1930 के बाद जापान में सैन्यवाद के उदय के बारे में,
- सेना की शक्ति बढ़ाने में शिक्षा एवं देशभक्त संगठनों की भूमिका के बारे में,
- उन साधनों एवं विधियों के विषय में जिनके द्वारा सेना ने राज्य के मामलों का संचालन किया, और
- स्वयं सेना के अंदर होने वाले संघर्षों के विषय में।

23.1 प्रस्तावना

प्रशान्त महासागरीय युद्ध प्रारंभ होने के ठीक पहले के दशक (1931-1941) तक के समय को जापानियों के द्वारा "कूराइ जनिमा" (अंधेरी घाटी) कहकर उद्धृत किया गया है। यही वह समय था जबकि जापान में "सैन्यवाद" एवं "उग्र राष्ट्रवाद" का अभूतपूर्व तौर पर उदय हुआ।

इसी समय के दौरान सेना ने राजनीति, अर्थव्यवस्था एवं विदेशी संबंधों के क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता को स्थापित किया। इस समय के शासन के चरित्र की जांच-पड़ताल से इस इकाई का प्रारंभ किया गया है। इस इकाई में सैन्यवाद के उदय के कारणों के साथ-साथ इस संदर्भ में देश भक्त संगठनों एवं साहित्य द्वारा किए गए योगदान का विवेचन किया गया है। इस इकाई में सैन्यवाद के अधीन परिस्थितियों तथा सेना के अंदर विभाजन की भी

विवेचना की गई है। अंत में, युद्ध के दौरान की आर्थिक नीतियों तथा युद्ध के प्रति सेना के दृष्टिकोण का भी उल्लेख किया गया है।

23.2 शासन का चरित्र

जापान में इस दौरान (1930 के दशक एवं 1940 के दशक) जो शासक वर्ग सत्ता में था उसके चरित्र को लेकर विद्वानों के बीच काफी बहस हो चुकी है। जिस प्रश्न के इर्द-गिर्द बहस होती है, वह यह है कि क्या यह शासन फासीवाद या फिर सैन्यवादी था? पहले हम इन दोनों व्यवस्थाओं की विशेषताओं का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत करेंगे :

i) फासीवाद की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं:
   - ऐसा राष्ट्रवाद जो जनता के एक समूह की नैसर्गिक सर्वोच्चता पर आधारित होता है।
   - कड़ा अनुशासनबद्ध तानाशाहीपूर्ण राजनीतिक राज्य; और
   - एक नेता ही राज्य का प्रतीक होता है।

ii) सैन्यवाद से तात्पर्य उस राज्य से है :
   - जिस राज्य के अंतर्गत सेना देश के प्रशासन में निर्णायक भूमिका अदा करती है,
   - जिसके अंतर्गत आर्थिक एक राजनीतिक नीतियों की मुख्य निर्माता सेना ही होती है, और
   - जहां सेना के अधीन विदेशी संबंधों में एक आक्रामक एवं प्रसारवादी नीति का अनुसरण किया जाता है।

फासीवादी राज्य का सबसे अच्छा उदाहरण 1922-1945 के मध्य बेनितो मुसोलिनी के अधीन इटली और एडोल्फ हिटलर के अधीन जर्मनी का दिया जा सकता है। कुछ विद्वानों ने जापान को इन दोनों फासीवादी राज्यों के अनुरूप ही माना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस समय जापान में भी फासीवाद की प्रवृत्तियां मौजूद थीं और जो निम्न प्रकार से हैं:

- विदेशी संबंधों में आक्रामकता,
- अन्य एशियाई देशों से ऊपर सर्वोच्चता की भावना, और
- घरेलू मामलों में विरोध-दमन की नीति।

लेकिन जापान का मामला इन दोनों यूरोपीय देशों से अलग था। जापान में कोई सैनिक क्रांति नहीं हुई थी। परंतु इटली में 1922 में सत्ता को पलट दिया गया था और 1933 में जर्मनी में हिटलर के द्वारा ऐसा किया गया। जापान में जर्मनी की नाजी पार्टी की भांति कोई जनआधार वाला फासीवादी दल नहीं था। न ही जापान में हिटलर या मुसोलिनी की तरह का कोई ऐसा नेता था, जिसका राजनीतिक वातावरण पर पूर्णरूपेण वर्चस्व कायम हो गया था। सेना एकमात्र ऐसा संगठन था, जिसके पास व्यापक एवं निर्णायक शक्तियां थीं। यद्यपि राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी सम्राट था, लेकिन वास्तविक शक्तियां सेना के पास ही थीं। फिर भी सेना ने सम्राट के सम्मान को पुनर्स्थापित करने के लिए कड़ा संघर्ष किया। जापान के संदर्भ में यह कहना उचित होगा कि राज्य का शासन सैन्यवाद के द्वारा संचालित किया गया। यहां पर यह उद्धृत करना भी उचित है कि समाज के एक बड़े भाग का जापान की एक "विशिष्टता" में विश्वास था और ऐसा सोचने वाले लोग नौकरशाही, कृषि वर्गों, सैन्यवादियों, एशियाई स्वतंत्रतावादी "राष्ट्रीय समाजवादियों", बड़े नेतागण तथा विद्वानों में थे। राष्ट्रवादी भावनाओं ने जापानी जनता को अति जागरूक बनाया। यद्यपि जापान ने

पश्चिमी तरीकों के आधार पर आधुनिकीकरण के मार्ग को अपनाया, फिर भी जापान ने राजतंत्र, कन्फ्यूशियस नैतिक मूल्यों तथा सेवा की सामुराइ परंपरा जैसे अपने समाज के मौलिक पक्षों को बनाए रखा।

जनता की राष्ट्रवादी भावनाओं ने 1930 के दशक में उग्रवादी स्वरूप अर्थात् "उग्र-राष्ट्रवाद" का रूप धारण कर लिया। 1930 तथा 1940 के प्रारंभिक वर्षों में सैनिक नेताओं ने जनता को राजनीतिक तथा व्यापारिक नेताओं के प्रभाव से मुक्त कराने एवं सम्राट के सम्मान को पुनर्स्थापित करने के कार्य को अपने हाथ में ले लिया। सैनिक नेताओं ने महसूस किया कि राजनीतिक एवं व्यापारिक नेताओं ने समाज के "जापानीवाद" को संशय में डाल दिया था।

23.3 सेना एवं सरकार

मेजी शासन के प्रारंभ से ही सेना राज्य के मामलों एवं प्रशासन में विशेष स्थान रखती थी। सैनिक नेताओं ने सरकार के निर्णय करने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। वास्तविकता यह है कि 1885 से 1945 तक लगभग आधे प्रधानमंत्री सैनिक नेता रह चुके थे। इसी के साथ-साथ अक्सर सेना के बड़े अधिकारी, गृहमंत्री एवं विदेश मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पदों पर भी रहे। किसी बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के द्वारा मंत्रिमंडल का गठन कर लिए जाने पर भी सैनिक मंत्रालय पर किसी न किसी तरह से सेना के बड़े अधिकारी का ही नियंत्रण रहता था।

1889 में लागू किए गए मेजी संविधान में एक ऐसी संसदात्मक सरकार की व्यवस्था की गई थी, जिसके अंतर्गत डायट में निर्वाचित प्रतिनिधिगण सरकारी निर्णयों में भाग लेते थे। लेकिन वे निर्णायक भूमिका अदा नहीं कर पाते थे क्योंकि सम्राट के पास व्यापक शक्तियां थी। ऐसे सभी कार्यपालिका अंग जो सम्राट के लिए कार्य करते थे, डायट की अनुमति के बगैर उनको लागू कर सकते थे और डायट का सेना पर भी कोई नियंत्रण न था। इस संदर्भ में संविधान की धारा XI को उद्धृत किया जा सकता है : "सम्राट सेना एवं नौसेना का सर्वोच्च अधिकारी है," और धारा XII के अनुसार "सम्राट सेना तथा नौसेना की सहमति के साथ संगठन एवं शांति को सुनिश्चित करता है।"

इस तरह से सम्राट के सर्वोच्च अधिकारी होने के कारण उसको सेना एवं नौसेना के अधिकारियों के द्वारा सलाह दी जाती थी। सेना के अधिकारीगण ऐसी नीतियों का निर्माण एवं लागू कर सकते थे, जिन पर सरकार की अनुमति लेना आवश्यक न था। न ही उनके लिए यह आवश्यक था कि अपने निर्णयों के लिए सरकार को सूचित तक करें। ऐसा संविधान की धारा VII के कारण था क्योंकि उसमें कहा गया था, "सेना के गुप्त एवं नियंत्रण संबंधी मामलों को सेना का मुख्य सेनापति प्रत्यक्ष तौर पर सम्राट को सूचित करता था और सेना तथा नौसेना का मंत्री उन्हीं मामलों की सूचना प्रधानमंत्री को दे सकता था, जिनकी सूचना सम्राट मंत्रिमंडल को देता था।"

हम पहले भी उद्धृत कर चुके हैं कि केवल सैनिक अधिकारी ही रक्षा मंत्रालय का मंत्री बन सकता था। परिणामस्वरूप सेना ऐसी किसी भी सरकार को गिरा सकती थी जो इसे स्वीकार्य न थी। सरकार को गिराने का काम सेना ने अपने किसी अधिकारी द्वारा त्यागपत्र दिलवाकर या किसी पद के लिए कोई अधिकारी न नियुक्त करके करती थी। जैसा कि हम आगामी भागों में देखेंगे कि सेना ने अपनी इस शक्ति का प्रयोग अपने लाभ के लिए किया।

23.4 राजनीतिक दलों के साथ सेना की नाराज़गी

जेनरो या बड़े राजनेताओं ने मेजी शासन के पुनर्स्थापन तथा देश के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान किया था। उनको समाज में ऐसा विशेष स्थान प्राप्त था, जो सरकार एवं सेना दोनों से उच्च था। **जेनरो** का सम्राट के साथ प्रत्यक्ष संपर्क था और सम्राट अक्सर उनके विचारों का अनुसरण करता था। जब तक बड़े राजनेता जीवित रहे, तब तक नागरिक एवं सैनिक नीतियों के बीच कम से कम टकराव हुआ। लेकिन 1922 तक अधिकतर बड़े नेतागणों की मृत्यु हो चुकी थी या जो कुछ जीवित बचे उन्होंने राजनीति से सन्यास ले लिया था। इस समय तक राजनीतिक दलों का राजनीति में दबदबा कायम हो चुका था और अब राजनीतिक दलों तथा सेना के मध्य होने वाला संघर्ष काफी गंभीर हो गया था।

राजनीतिक दलों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद जिन सरकारों का गठन किया, उनके द्वारा किए गए कार्यों से सेना काफी नाराज़ थी। सेना ने राजनीतिक दलों के उस दृष्टिकोण का विरोध किया, जिसके अनुसार उन्होंने सेना के बजट में बढ़ोत्तरी एवं सैनिक डिवीज़नों के प्रसार का विरोध किया। उदाहरण के रूप में, प्रधानमंत्री कातो तक्काकी की सरकार ने सेना की 21 डिवीजनों में कमी करके उनको 17 कर दिया। राजनीतिक दलों की चीन के प्रति जो नीति थी, उसको लेकर भी सेना नाराज थी। 4 फरवरी 1922 को चीन तथा जापान के बीच जो आपसी समझौता हुआ उसके अनुसार चीन को शांतुंग प्रदेश की संप्रभुता वापस लौटा दी गई और उस क्षेत्र में जापान के आर्थिक विशेषाधिकारों को मान्यता प्रदान कर दी गई। तभी से चीन के प्रति संचालित होने वाली जापानी नीति का मुख्य लक्ष्य सैन्य प्रसार के स्थान पर आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करना हो गया। इस नीति को "नरम" चीन नीति का नाम दिया गया तथा यह नीति प्रधानमंत्री शिदेहारा किजूरो की नीति थी, जो जून 1924 से अप्रैल 1927 तथा पुनः जुलाई 1929 से दिसम्बर 1931 तक जापान का प्रधानमंत्री रहा।

सेना चीन के प्रति नरम नीति की कटु आलोचक थी, क्योंकि जापान ने मुख्य भूमि पर जो उपलब्धियां प्राप्त की थी उनको साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के उफान से भारी जोखिम पैदा हो गया था। यह आंदोलन कुओमिंतांग (KUOMINTANG) दल के नेता च्यांग काई शेक के नेतृत्व में और अधिक शक्तिशाली होता जा रहा था। उसने जापान सहित सभी समझौतों के पुनरावलोकन की मांग की और दक्षिण मंचूरिया में जापान की प्रमुख भूमिका के जारी रहने पर भी प्रश्न उठाए।

राजनीतिक दलों ने भी व्यापारिक घरानों **(जैबात्सू)** के साथ उनके घनिष्ठ संबंध की आलोचना की। किसानों ने विशेष रूप से यह विश्वास किया कि राजनीतिक दलों के प्रभुत्व वाली सरकारों ने **जैबात्सू** के हितों की रक्षा की और कृषि की अपेक्षा व्यापार एवं उद्योग को अधिक महत्व दिया। इस संदर्भ में कोरिया एवं ताइवान से आयात किए जाने वाले सस्ते चावल का उदाहरण दिया जा सकता है क्योंकि इस व्यापार से व्यापारियों को लाभ हुआ और इसने किसानों की आमदनी पर विपरीत प्रभाव डाला (देखें इकाई 24) व्यापारिक घरानों के साथ-साथ राजनीतिक दलों पर भी भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए। विदेशी विचारों के आगमन के लिए भी राजनीतिक दलों को जिम्मेदार ठहराया गया, क्योंकि इन विचारधाराओं को खतरनाक एवं सम्राट के प्रभुत्व को और अधिक सुदृढ़ करने वाली समझा गया। राजनीतिक दलों के विरुद्ध व्याप्त इस तरह की भावनाओं का लाभ सेना ने उठाया।

इस पृष्ठभूमि में नौसेना ने उस लंदन नौसेना संधि (1930) का कड़ा विरोध किया, जिसमें हथियारों में कटौती का आह्वान किया गया था। लेकिन उस समय के प्रधानमंत्री हामागुशियाको ने इसे डायट से पारित कराने में सफलता प्राप्त कर ली थी। सरकार की कड़ी आलोचना की गई और टोकियो में हिंसात्मक विरोध हुआ। बाद में हामागुशि की हत्या कर दी गई। अंतिम प्रधानमंत्री इनूकाय त्सूयोशि भी सेना में लोकप्रिय न था और सेना ने मंचूरिया में जो सैनिक कार्यवाही की उसके विषय में सेना के अधिकारियों ने सरकार को सूचित तक करना आवश्यक न समझा। इनूकाय ने सैन्य प्रसार का विरोध किया और

सेना में अनुशासन कायम करने का आहवान किया। मई 1932 में छोटे सैनिक अधिकारियों के द्वारा उसका भी वध कर दिया गया। इसी के साथ जापान में राजनीतिक दलों की सरकार के काल का अंत हो गया।

हमें यहां पर यह उद्धृत करना होगा कि जापान में सैन्यवाद ने उग्र राष्ट्रवाद की भावनाओं के कारण गति पकड़ी। ये उग्र राष्ट्रवाद की भावनाएं जापान में काफी पहले से उत्पन्न हो चुकी थीं। इन भावनाओं के विकास में निश्चय ही कुछ अन्य कारकों ने अपनी भूमिका अदा की।

बोध प्रश्न 1

1) फासीवाद एवं सैन्यवाद की विशेषताएं बताइए। 1930 तथा 1940 के दशकों में जापान को आप इनके बीच कहां पर रखेंगे? उत्तर लगभग 15 पंक्तियों में दीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) सेना की राजनीतिक दलों के प्रति शत्रुता क्यों थी? लगभग दस पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

लागू किया गया, उसकी प्रेरणा जर्मनी से ली गई थी। जापानियों का जर्मनी की भांति विचार था कि,

> "युद्धों को कक्षा कमरों में जीता जा सकता है।"

प्राथमिक स्कूलों को राष्ट्रवादी विचारों का बीजारोपण करने के लिए सबसे अधिक उर्वरक समझा गया। मेजी शासन के प्रारंभिक समय में शिक्षा व्यवस्था के प्रारूप को तैयार करने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान मोरू ऐरिनोनी का था और उसने एक बार कहा कि:

> "सभी स्कूलों के प्रशासन को संचालित करते समय मस्तिष्क में यह रोपित किया जाना चाहिए कि जो कुछ भी किया जाता है, वह विद्यार्थियों के लिए नहीं बल्कि देश के लिए किया जाना है।"

एक अन्य अवसर पर उसने कहा :

> "हमारे देश को तीसरे स्थान से दूसरे स्थान के लिए तथा फिर प्रथम स्थान के लिए आगे बढ़ना है और तब उसको विश्व के सभी देशों में प्रथम स्थान को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ना है।"

इस तरह की भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि स्कूल के पाठ्यक्रमों में नैतिक शिक्षा को प्राथमिकता दी गई।

अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए जिन नार्मल स्कूलों को खोला गया, उनको इस तरह से योजनाबद्ध किया गया था कि वे अध्यापकों को विद्यार्थियों के लिए आज्ञाकारिता, समर्पण, देश-प्रेम, सम्राट के प्रति वफादारी एवं भक्ति में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। एक सेवा निवृत्त सैनिक अधिकारी को उनमें मानसिक एवं शारीरिक अनुशासन पैदा करने के लिए रखा जाता था।

मेजी शासन के दौरान शिक्षा ने जिन दोहरे उद्देश्यों को प्रोत्साहित किया गया वे इस प्रकार थे : "देशप्रेम एवं वफादारी और इंजीनियरों, मैनेजरों तथा वित्त अधिकारियों आदि के एक नए वर्ग को तैयार करना।"

जनता में राष्ट्रवादी भावना को और गहरा बनाने के लिए शिक्षा का एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया गया। 1937 में चीन के साथ दूसरे युद्ध के बाद संपूर्ण देश को युद्ध की स्थिति में रखा गया। इसके फलस्वरूप युद्ध के समय देश की जरूरतों को पूरा करने के लिए शिक्षा कौंसिल के द्वारा व्यवस्था में कुछ परिवर्तनों का सुझाव दिया गया। प्राथमिक स्कूलों का नाम बदलकर "राष्ट्रीय स्कूल" कर दिया गया। इसका उद्देश्य जनता को "जापानी साम्राज्य के उन नैतिक सिद्धांतों के अनुरूप प्रशिक्षित करना था, जिनका तात्पर्य जनता को सम्राट के प्रति वफादार बनाना था।"

जैसे-जैसे जापान युद्ध की गहराई में धंसता गया, वैसे-वैसे शिक्षा में राष्ट्रवादी तत्व और अधिक बढ़ता गया। 1941 के शैक्षिक सुधार तथा 1943 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा जारी की गई माध्यम संबंधी नीति में युवकों को "साम्राज्य के तरीके के अनुरूप" प्रशिक्षित करने की जरूरत पर बल दिया गया। इस तरीके में "वफादारी, निष्ठा, सुरक्षा तथा साम्राज्यिक सिंहासन की सम्पन्नता को बनाए रखने, देवताओं एवं पूर्वजों के प्रति भक्ति भाव रखने" पर जोर दिया गया था। इसके द्वारा पूर्वी एशिया तथा विश्व में जापान के लक्ष्यों को विद्यार्थियों को समझाने की आवश्कता पर भी बल दिया गया। जापानी साहित्य, साम्राज्य की परंपराओं के ज्ञान तथा जापानी जीवन शैली एवं संस्कृति के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाने लगा।

जापान के लक्ष्य तथा बृहत् पूर्वी एशिया के सह-सम्पन्नता के क्षेत्र की नीति के महत्व को जापानियों को समझाने के लिए उनको पूर्वी एशिया के देशों के विषय में तथा वहां पर यूरोपीय देशों के शासन के दौरान पैदा की गई दुर्दशा के विषय में शिक्षित करना आवश्यक था। इस प्रकार से सरकार ने उस तरह से जनता के मन को तैयार किया जिस तरह से वे चाहते थे क्योंकि शिक्षा के द्वारा उन्होंने जनता के बीच राष्ट्रवादी भावनाओं को

भरपूर तौर पर पैदा किया था। इस तरह के सभी विचारों का प्रसार करने में सेना ने महत्वपूर्ण योगदान किया। इसके द्वारा ऐसी राष्ट्रव्यापी भावनाओं को उभारा गया, जिन्होंने सेना के उद्देश्यों को पूरा करने में भरपूर मदद की।

23.6 विचारों एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती

राष्ट्रवाद की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए उस असंतोष का दमन करना आवश्यक था, जो देश के राजनीतिक एवं आर्थिक तंत्रों में हुए परिवर्तनों से पैदा हुआ था।

औद्योगीकरण के कारण एक ऐसी जनसंख्या उभर कर आई, जिसमें जापान में पारिवारिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। औद्योगीकृत पश्चिम से आए नए सामाजिक मूल्य और धारणाओं ने जापानी समाज में प्रवेश किया, जिसके कारण कन्फ्यूशस के सिद्धांतों पर आधारित जापानी सामाजिक व्यवस्था का आधार टूटने लगा।

विचारों तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में कटौती करने के लिए मेजी सरकार द्वारा अनेकों सुरक्षा कानूनों तथा प्रकाशित अधिनियमों को लागू किया गया। इन कानूनों के द्वारा केवल सरकार का पक्ष लेने वाले साहित्य को प्रकाशित होने की अनुमति प्रदान की गई।

1870 तथा 1880 के दशकों में जापान में जनता के अधिकारों का आंदोलन (देखें इकाई 16 से 22 तक) व्यापक तौर पर फैला था। कैद करने, नेताओं को खरीदने तथा मनोबल तोड़ने जैसे तरीकों सहित सरकार ने इस तरह के अधिनियमों को भी बनाया, जिनके द्वारा सभा करने पर पाबंदी (1880) लगा दी गई तथा आंदोलनों को कुचलने के लिए किसी भी समाचार-पत्र को सरकार की प्राथमिक अनुमति के बिना प्रकाशित करने से (1983) रोक दिया गया। यहां तक कि नाटकों तथा चलचित्रों को साधारण जनता को दिखाने से पूर्व सरकार की अनुमति लेनी होती थी।

इन सभी दमनकारी उपायों के बावजूद जनता के अधिकारों के आंदोलन को जापान में संसदात्मक सरकार स्थापित कराने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। लेकिन संविधान के द्वारा "कानून की सीमाओं के अंदर" जनता को सीमित स्वतंत्रता प्रदान की गई थी और जिसको आगामी वर्षों में पारित होने वाले कानूनों ने और सीमित कर दिया।

23.6.1 सेना का विरोध

जापान में बढ़ते सैन्यवाद के विरुद्ध प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं बाद में कड़ा प्रतिवाद किया गया। सबसे अधिक संगठित एवं व्यवस्थित युद्ध-विरोधी आंदोलन साम्राज्यवादियों एवं साम्राज्यवादियों एवं साम्यवादियों के द्वारा चलाया गया। कई युद्ध-विरोधी लेखों के द्वारा सेना की बुराई को उजागर किया गया। कोबायाशी ताकिजी ने अपने लेख **कानी कोसेन** (कैनेरी नाव, 1929) में दिखाया कि सेना हड़ताल का कैसे दमन करती थी। कुरोशिमा देनजी द्वारा लिखित **बुसो सेरू शिगाय** (हथियारों के अधीन शहर) में साइबेरिया अभियान के दौरान सैनिकों की मुसीबतों को दर्शाया गया। इस तरह की साहित्यिक कृतियों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था। साम्यवादी दल पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया था, क्योंकि वह सैनिक अभियानों का जबरदस्त विरोधी था। इस दल के अनेक नेताओं को जेल की सजा दी गई और बहुत से भूमिगत हो गए।

सेना ने राष्ट्रवादी भावनाओं का इस्तेमाल ऐसे मज़दूर वर्ग को पैदा करने के लिए किया, जो कड़ा परिश्रमी, अनुशासनिक तथा मांग न करने वाला था। यह सेना एवं पूंजीपति दोनों के लिए लाभदायक साबित हुआ।

23.6.2 1930 के बाद के अधिनियम

1930 तथा 1940 के वर्षों में जैसे जापान युद्ध में शामिल होता गया, वैसे-वैसे विचारों तथा

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कड़ा नियंत्रण कसता चला गया। विद्यमान अधिनियमों के क्षेत्रों को विस्तृत करने के लिए उनमें संशोधन किया गया। 1925 में शांति बनाए रखने के लिए पारित किए गए अधिनियम को 1928 में एक विशेष शाही अध्यादेश के द्वारा संशोधित कर दिया गया। इस अधिनियम को पुनः 1941 में संशोधित किया गया जिससे कि किसी भी राजनीतिक कार्यकर्ता को गिरफ्तार कर उसे अनिश्चित समय के लिए जेल में रखा जा सके।

1941 के राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के साथ-साथ दूसरे प्रतिबंधित अधिनियमों को बनाया गया। इनके अनुसार लायजन सम्मेलन तथा मंत्रिमंडल की बैठकों में हुई बहस को "अति गुप्त" रखा जाना था। जो कोई भी इनसे संबंधित सूचना प्राप्त करने या देने या प्रयास करता पाया जाएगा उसको कड़ी सजा दी जाएगी। युद्ध के दौरान होने वाले अपराधों से संबंधित कानूनों में 1942 में संशोधन कर सरकारी प्रशासन में हस्तक्षेप करने को भी अपराध घोषित कर दिया गया।

युद्ध में जुड़े सवालों पर आम बहस करना या बातचीत करना विद्यमान कानूनों के कारण असंभव सा हो गया। आम लोगों के लिए युद्ध की वास्तविकताओं को जानना भी असंभव हो गया था क्योंकि समाचार-पत्र सामान्य जनता को वही बता सकते थे, जो सरकार चाहती थी। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य न था यदि जनता सैनिक सरकार की नीतियों का समर्थन करने को बाध्य थी, बल्कि सेना के लिए बहुत-सी स्थापित देश भक्त संस्थाओं तथा संगठनों के प्रचार ने और सरल बना दिया था क्योंकि इनका अस्तित्व मेजी सरकार के समय ही बना हुआ था (इनके विषय में आप इकाई 25 में पढ़ेंगे)। इन संस्थाओं तथा संगठनों ने "उग्र-राष्ट्रवादी" साहित्य को तैयार किया जिसने सेना को ताकत प्रदान की। बहुत से सैनिक अधिकारी न केवल इस तरह की संस्थाओं एवं संगठनों के सदस्य थे, बल्कि उनका इनकी विचारधारा में कड़ा यकीन था और उसको लागू करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इनमें अधिकतर नौजवान अधिकारी थे। अधिकतर नौजवान अधिकारी साधारण मध्यम वर्गीय परिवारों, छोटे व्यापारियों के पुत्रों तथा कार्यालयों में बाबूओं से संबंधित थे। एक बड़ी संख्या उन ग्रामीण अंचलों से भी आती थी जहां पर आर्थिक संकट का गहरा प्रभाव हुआ था। इनमें से कई अधिकारियों ने शहरों में स्थित सम्पन्न धनी लोगों का विरोध भी किया था।

राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित होकर ये नौजवान अधिकारी यातो किता इक्की जैसे नेताओं के साथ हो गए थे या फिर ऐसे संगठनों के सदस्य बन गए थे, जिनमें केवल सेना एवं नौसेना के सदस्य शामिल थे। ओकावा शूमई के साथ-साथ किता इक्की ने **यूजोन्शा** (राष्ट्रीय भावनाओं को बनाए रखने के लिए संस्था) का गठन किया। ओकावा औप निवेशीकरण अकादमी में प्रवक्ता था और इन दोनों ने संयुक्त रूप से विदेशों में सैनिक प्रसार तथा सेना के द्वारा सत्ता प्राप्त करने की वकालत की। दूसरी प्रसिद्ध संस्था **सकूराकाय** (चेरी ब्लॉसम) थी और इसकी स्थापना 1930 में लेफ्टीनेंट कर्नल हाशिमोते किंगोरो ने की थी।

मेरिन्का (ऊंची नैतिकता की संस्था) के अंतर्गत भी सेवा निवृत्त सेना एवं नौसेना अधिकारी थे। **कोदोकाय** (साम्राज्यिक मार्ग की संस्था) की स्थापना 1933 में पूंजीवादी ढांचे और राजनीतिक दलों को समाप्त करने के लिए की गई थी और इसने राज्य के द्वारा नियंत्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना का समर्थन किया। इन संस्थाओं पर सैनिक अधिकारियों का वर्चस्व था और ये 1931 के मंचूरिया संकट के बाद विशेष तौर से लोकप्रिय हो गई।

1930 के वर्षों में जो अनेकों षड़यंत्र रचे गए, उनसे स्पष्ट है कि आला कमान स्वयं अपने अधिकारियों पर नियंत्रण करने में सक्षम न थी। इसका प्रथम प्रमाण मंचूरिया की वह सेना थी, जिसका इस क्षेत्र के मामलों एवं योजनाओं को बनाने पर नियंत्रण था और इसने टोकियो में उच्च अधिकारियों की पीठ पीछे कार्यवाहियों को लागू किया। सेना के नेतागण राजधानी में आगे होने वाली घटनाओं पर अपना नियंत्रण कायम न रख सके लेकिन उन्होंने उनकी कार्यवाहियों को उचित ठहराया। छोटे अधिकारियों ने अधिनियमों को तोड़ा। सेना की जो टुकड़ियां विदेशों में तैनात थी उन्होंने टोकियो की नीतियों का अनुसरण नहीं किया। समय-समय पर सेना ने सर्वोच्च कामण्डर अर्थात् सम्राट की आज्ञाओं का भी पालन नहीं किया।

बोध प्रश्न 2

1) सैन्यवाद के राष्ट्रवादी विचारों को विकसित करने में शिक्षा ने कैसे योगदान किया? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन गलत या सही है। गलत (x) या सही (/) का चिहन लगाइए।

   i) किता इक्की ने लोकतांत्रिक सरकार का समर्थन किया।

   ii) राष्ट्रीय भावना का इस्तेमाल मांग न करने वाले अनुशासित मज़दूर वर्ग को पैदा करने के लिए किया गया।

   iii) साम्यवादियों ने सैन्यवाद का विरोध किया।

   iv) किसी सीमा तक सेना ने सरकार की शिक्षा नीति को निर्देशित किया।

   v) जिन लेखों के द्वारा सेना की बुराई को उजागर किया गया, उनको प्रोत्साहित किया गया।

23.7 सेना के अंदर विभाजन

आर्थिक एवं राजनीतिक संकट के कारण जो स्थिति पैदा हुई, उससे निपटने के लिए क्या नीति अपनाई जाए—इसे लेकर सेना उच्च स्तर पर दो खेमों में विभाजित थी। ये दोनों मुख्य गुट निम्न प्रकार से थे :

i) एक **कोदोहा** (साम्राजिक मार्गी गुट) था और इस गुट में अकारी सदाओ तथा माज़ाकी जिंजाबुर जैसे सेनापति शामिल थे।

ii) दूसरा गुट **तोसेई** (नियंत्रण गुट) था और इस गुट में सामान्य स्टाफ के नागाता तेत्सूजन, ताजो हिदेकी तथा इशिवारा कांजी जैसे उच्च अधिकारी शामिल थे।

कोदोहा गुट ने वफादारी तथा नैतिकता पर बल दिया और तंत्रीय परिवर्तनों में कोई विशेष योगदान न किया। **तोसेई** गुट ने पूंजीवाद तथा संसदात्मक व्यवस्था का विरोध नहीं किया। इसने राज्य नियंत्रण की स्थापना एवं इसके लागू करने पर ज़ोर दिया जिससे जापान को युद्ध के लिए तैयार किया जा सके। **तोसेई** गुट को व्यापारियों, नौकरशाहों तथा बुद्धिजीवियों से समर्थन प्राप्त हुआ।

सत्ता के लिए सेना के अंदर संघर्ष काफी गंभीर था। **कोदोहा** गुट उस समय वर्चस्व की स्थिति में था, जबकि 1931 में अराकी युद्ध मंत्री एवं मंजाकी उप सेनापति बना। लेकिन मंचूरिया में तोसेई गुट का ही अधिक प्रभाव था।

1934 में अराकी ने त्याग-पत्र दे दिया तथा उसका उत्तराधिकारी हायाशि सेन्ज़ूरो बना और सेन्ज़ूरो धीरे-धीरे नागाता तेत्सूजान के प्रभाव में आ गया। माजाकी ने उप सेनापति के रूप में कार्य करने के बाद सैनिक शिक्षा के डायरेक्टर जनरल का पद प्राप्त किया। लेकिन नागाता ने किसी तरह से 1935 में उसको इस पद से हटाने में सफलता प्राप्त की। बदले की भावना से काम करते हुए माजी समर्थकों ने आगे चलकर नागाता की हत्या कर दी। इन वर्षों के दौरान यह समझा गया कि **कोदोहा** के सदस्य लगातार समस्या' पैदा करते रहते थे और इसी कारण से उनमें से अधिकतर को मंचूरिया भेज दिया गया।

लेकिन **कोदोहा** के सदस्य सत्ता पर अधिकार करने के लिए कृत-संकल्प थे। 26 फरवरी, 1936 में एक प्रयास उस समय किया गया, जबकि इस गुट के युवा अधिकारियों ने टोकियो केन्द्र पर अधिकार कर लिया तथा वित्त मंत्री, प्रिवी कोंसिल के लॉर्ड एवं सैनिक शिक्षा के इंस्पेक्टर जनरल जैसे बड़े नेताओं की हत्या कर दी गई। इन युवा सैनिक अधिकारियों ने माजाकी के अधीन एक नए तंत्र की स्थापना की मांग की। लेकिन बड़े अधिकारियों के दबाव में उन्हें अंततः आत्म-समर्पण करना पड़ा। इनमें से लगभग 13 अधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया और उनको फांसी की सजा दे दी गई। यद्यपि किता इक्की इस घटना में प्रत्यक्ष तौर पर शामिल न था, किन्तु 1937 में उसे भी फांसी दे दी गई। अराकी एवं माज़ाकी को भी हटा दिया गया। इस तरह से अधिकारियों को अलग-अलग करके **कोदोहा** की शक्ति को क्षीण कर दिया गया। उनमें कुछ का हस्तांतरण करके देश से दूर मंचूरिया भेज दिया गया। इस तरह दोनों गुटों के बीच सत्ता के लिए हुए संघर्ष में **तोसेई** गुट को विजय प्राप्त हुई। लेकिन इस आंतरिक संघर्ष के कारण सेना किसी भी तरह से कमजोर न हुई।

23.8 सैनिक तानाशाही

मंत्रिमंडल के गठन में सेना ने जिस तरह विघ्न डाला उससे सेना की तानाशाही की अभिव्यक्ति हुई। यदि प्रधानमंत्री या मंत्रिमंडल के सदस्य के रूप में नियुक्त होने वाला नेता सेना को स्वीकार्य न था, तब सेना सेवा पद पर एक अधिकारी को नियुक्त करने से इंकार कर सकती थी। इसके कारण मंत्रिमंडल का गठन करना असंभव हो गया। जैसे-जैसे सेना का हस्तक्षेप बढ़ता गया, वैसे-वैसे राजनीतिक नेताओं के पास इसके सिवाय कोई विकल्प न रह गया था कि वे सेना की सभी बातों को माने।

26 फरवरी 1930 की उस घटना के बाद जबकि आंकुदा केसूके मंत्रिमंडल का पतन हो गया था, हिरोता कोकी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। जब तक सेना के द्वारा मंत्रिमंडल के सदस्यो के नामों का अनुमोदन नहीं कर दिया गया, तब तक वह उनको मंत्रिमंडल में शामिल न कर सका।

हिरोता मंत्रिमंडल को भी सेना ने त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य किया। इसका कारण यह था कि डायट में हामाद कुनिमात्सू ने एक ऐसा प्रश्न किया, जिसको सेना ने अपने विरुद्ध माना। सेना ने उसके निकाले जाने की मांग की अन्यथा उसे सेना का सहयोग प्राप्त नहीं होगा।

सेना उगाकी काज़ूशिज़े के पक्ष में भी न थी। उगाकी को न तो मंत्रिमंडल का गठन करने के लिए बुलाया गया और उसको मंत्रिमंडल में मंत्री का पद देने से भी इंकार कर दिया गया। वास्तव में सेना ने उगाकी को बड़े ही असंदिग्ध तरीके से प्रधानमंत्री बनने से रोका। जिस समय उगाकी टोकियो को जा रहा था उसे उस समय सेना पुलिस के कप्तान द्वारा टोकियो की सीमा के बाहर कांगवाय मोड़ पर रोक लिया गया। उगाकी को कार में बैठा लिया गया और पुलिस कप्तान ने बताया कि युवा सैनिक अधिकारियों में काफी असंतोष फैला हुआ है। इसलिए सेना मंत्री का आदेश है कि आप प्रधानमंत्री के पद को स्वीकार करने से इंकार कर दें। युवा सैनिक अधिकारियों की नाराजगी का कारण यह था कि उगाकी ने 1931 में मंचूरिया के षडयंत्र में भाग लिया था।

मई 1936 में अधिनियमों में संशोधन कर यह व्यवस्था कर दी गई कि जो अधिकारी सक्रिय रूप से कार्यरत थे, केवल वे ही सेना एवं नौसेना के मंत्री पदों को ग्रहण कर सकते थे। अब प्रधानमंत्री सेना के रिटायर्ड अधिकारियों की इस पद पर नियुक्ति नहीं कर सकता था।

राजनीतिक दलों का महत्व इस तथ्य में निहित था कि डायट में वे जनता का प्रतिनिधित्व करते थे और नीतियों के प्रति उनकी सहमति का तात्पर्य था कि जनता भी उन नीतियों का समर्थन करती थी।

अक्तूबर 1940 में राजनीतिक दलों का स्थान **तैसेई याकूसन काय** (इम्पीरियल रूल एसिस्टेंस एसोसिएशन) ने ले लिया। राजनीतिक दल भी इस संस्था में शामिल हो गए और राष्ट्रीय नीतियों का समर्थन करने के लिए जनमत तैयार करने की प्रतिज्ञा की। अब निर्णय लेने की प्रक्रिया में राजनीतिक दलों की भूमिका बिल्कुल ही नगण्य हो गई।

23.9 युद्ध और आर्थिक नीतियां

1937 में चीन के साथ युद्ध छिड़ जाने के बाद से जापान इस देश के आंतरिक मामलों में गहरी रुचि लेने लगा। युद्ध चीन के बहुत से भागों में फैल गया और जापान को जान-माल का भारी नुकसान हुआ। महाद्वीप में जो घटनाक्रम घटित हुआ उनका प्रभाव घरेलू नीतियों पर भी हुआ। सेना ने युद्ध में व्यापक तौर पर भाग लेने के लिए देश के अंदर और अधिक तैयारियां की। इसके कारण आर्थिक व्यवस्था पर सरकार का नियंत्रण और बढ़ गया। अब हथियारों एवं भारी उद्योगों पर अधिक बल दिया जाने लगा।

जून, 1937 में जैसे ही कोनोइ फूमिमारो ने प्रधानमंत्री का पद संभाला, वैसे ही नागरिक उड्डयन तथा तेल वितरण को सरकार के नियंत्रण में कर लिया गया। आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए मंत्रिमंडल नियोजन बोर्ड का गठन किया गया।

यह भी निर्णय लिया गया कि लॉयजन सम्मेलनों का आयोजन प्रधानमंत्री, विदेश मंत्री तथा सेना एवं नौसेना मंत्रियों के बीच होगा और उसी के अंदर महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाएंगे। इन कार्यवाहियों में अन्य मंत्री भाग न ले सकेंगे और इस तरह से सभी महत्वपूर्ण निर्णयों के विषय में मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यगण अनभिज्ञ बने रहे।

सन् 1938 में एशिया विकास बोर्ड का गठन किया गया और इसका उत्तरदायित्व चीन से संबंधित मामलों का संचालन करना था। 1942 में निर्मित बृहत् पूर्वी एशिया मंत्रालय में एशिया विकास बोर्ड का उसी वर्ष विलय कर दिया गया।

1929 में डायट के द्वारा गतिशील कानून को पारित किया गया और इसके द्वारा श्रम, कच्चे माल आदि पर सेना के प्रभुत्व को और कड़ा कर दिया गया। ऐसे उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया, जो युद्ध की मशीनरी का प्रसार करने में सहायक थे। मंचूकाओ प्रदेश पर सेना का पूरा नियंत्रण था और वहां पर भी सभी प्रयासों को कोयला, लौह एवं स्टील उद्योगों, आटोमोबाइल एवं युद्ध विमानों के निर्माण के विकास की ओर निर्देशित किया गया।

23.10 युद्ध एवं सेना का व्यवहार

जैसे-जैसे युद्ध फैलता गया, वैसे-वैसे जापान ने 1942 के मध्य से 1944 के मध्य तक अपने साम्राज्य को विकसित एवं प्रसारित करने के प्रयास किए और इसका आर्थिक तौर पर शोषण भी किया। जापान ने नवम्बर, 1941 में एक योजना का प्रारूप तैयार किया, जिसके

अनुसार संपूर्ण पूर्वी एशिया को बृहत् पूर्वी एशिया के रूप में परिवर्तित कर जापान के साथ एक सह-सम्पन्न क्षेत्र बनाना था। चीन तथा मंचूरिया को भी अपना औद्योगिक आधार बनाना था।

यद्यपि सह-सम्पन्न क्षेत्र बनाने के विचार का तात्पर्य एशिया के देशों को पश्चिमी देशों के नियंत्रण से "मुक्त" कराना था, किन्तु जापान का मुख्य उद्देश्य इन देशों को एशिया क्षेत्र से हटाकर अपना प्रभाव कायम करना था।

मार्च, 1941 में इम्पोरियल रूल एसिसटेंस एसोशियसन ने "बृहत् पूर्वी एशिया के सह-सम्पन्न क्षेत्र की मूल अवधारणाओं" को प्रकाशित करते हुए कहा, "यद्यपि हमने "एशियाई सहयोग" शब्द का प्रयोग किया है, लेकिन इससे इस वास्तविकता को नहीं भुलाया जा सकता है कि जापान को ईश्वर के द्वारा स्वतःजातीय समानता के लिए बनाया गया है।" इसका तात्पर्य यह था कि समानता के बावजूद कुछ एशियावासी (जैसे जापान) दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठतर थे।

जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया और संयुक्त राज्य अमेरिका पर शीघ्रता के साथ विजय दर्ज की। इसके बाद जापान ने शीघ्रता से दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा प्रशान्त महासागर के क्षेत्रों पर अपना शासन कायम कर लिया।

जिन देशों पर जापान ने युद्ध के दौरान अधिकार कर लिया था उनके साथ सेना का व्यवहार काफी असभ्य रहा। इन क्षेत्रों में जापानी सेनाओं ने जो ज्यादतियां की उनमें नृशंसता, लूट, बलात्कार तथा हत्या का बोलबाला था।

कोरिया तथा ताइवान जैसे देशों पर जापान के लम्बे शासन काल में इन देशों की जनता के साथ जापान ने दूसरे दर्जे के नागरिकों जैसा व्यवहार किया। सम्मिश्रण की एक कठोर नीति को लागू किया गया, जिसके अनुसार इन देशों की जनता को जापानी भाषा सीखने तथा जापानी नामों को अपनाने के लिए बाध्य किया गया।

जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे जापान को लड़ाकू सेना तथा श्रमिकों की और अधिक आवश्यकता होने लगी। कोरियाई लोगों को कल-कारखानों में काम करने के लिए लाया गया। ऐसे विशेष कानूनों को लागू किया गया, जिससे वे लोग बाध्य होकर जापानी सेना में शामिल हो जाएं।

मलाया, फिलीपीन्स, बर्मा, इण्डोनेशिया, वियतनाम, कम्बोडिया एवं लाओस जैसे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों ने जापानी शासन का विरोध यूरोपीय शासकों से अधिक किया। इस असंतोष के निम्नलिखित कारण थे:

- जापानियों ने अपनी जातीय श्रेष्ठता की मान्यताओं के कारण विजित देशों की स्थानीय रीतियों एवं लोगों का अपमान किया,
- राजनीतिक अधिकारों में कटौती की, और
- उन देशों की अर्थव्यवस्था को नष्ट किया और उनमें जापान की जरूरतों के मुताबिक परिवर्तन किया।

प्रारंभ में बर्मा, इण्डोनेशिया तथा फ्रेंच इण्डो चीन जैसे देशों ने जापानियों को अपना "मुक्तिदाता" समझा। उन्होंने जापान को एशिया की ऐसी प्रथम शक्ति माना, जिसने 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के दौरान एक यूरोपीय शक्ति को पराजित किया और उनके दिमागों में उसी जापान की याद अभी तक तरोताजा दी। लेकिन जापान के वास्तविक रूप को समझने में उन्हें अधिक समय न लगा और वे जापानियों तथा सेना द्वारा थोपे गए शासन से घृणा करने लगे। शीघ्र ही इन देशों में जापान के विरोध में एक संगठित एवं व्यापक आंदोलन का उद्भव हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) जापानी सेना में कौन से गुट थे तथा उनके दृष्टिकोण क्या थे? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़े तथा सही (✓) और गलत (x) के निशान लगाएं।
   i) 1940 के दशक के प्रारम्भ में राजनीतिक पार्टियों ने नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।
   ii) सेना के दबाव के कारण अधिक धन का इस्तेमाल हथियारों के उत्पादन में किया गया।
   iii) मंचूकों के आर्थिक संसाधनों का इस्तेमाल युद्ध उद्योगों के प्रसार के लिये किया गया।
   iv) जापान द्वारा जीते गये देशों में सेना का व्यवहार काफी अच्छा था।

23.11 सारांश

1930 के बाद सेना के स्थापित होने वाले वर्चस्व एवं सत्ता की जड़ें वास्तव में संविधान में ही निहित थी।

जिन मेजी शासकों को "उदार" समझा जाता था, वे वास्तव में काफी अनुदार थे और वे एक सीमा से आगे जनता को शक्ति देने के लिए तैयार न थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिस लोकतांत्रिक व्यवस्था को 1889 में लागू किया गया था, उसके अंतर्गत जन प्रतिनिधियों के पास बहुत सीमित अधिकार थे। हम देख चुके हैं कि सेना ने किसी तरह से मंत्रिमंडलों को सत्ता से हटाकर अपने प्रभुत्व को कायम किया।

सैन्यवाद के उदय के लिए यहां पर प्रारंभ से ही पृष्ठभूमि तैयार थी। मेजी शासकों ने प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व विदेशों में प्रसारवादी नीति को लागू करने की रूपरेखा को तैयार कर लिया था। घरेलू मोर्चे पर भी कई सारे अधिनियमों को लागू करके संचार माध्यमों पर नियंत्रण किया गया और एक बिन्दु से परे किसी भी प्रकार असहमति को सहन नहीं किया गया। बड़े राजनेताओं की उपस्थिति के कारण सेना पर नियंत्रण बनाए रखा जा सका।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद आर्थिक संकट को हल करने तथा देश के अंदर राजनीतिक स्थायित्व स्थापित करने के लिए राजनीतिक दलों को अवसर प्रदान किया गया। लेकिन जहां तक सेना का संबंध था, उसपर नियंत्रण करने में राजनीतिक दल असफल रहे। सेना ने राजनीतिक दलों के प्रति कोई मित्रता नहीं दिखाई क्योंकि इन दलों को सशस्त्र सेनाओं के विकास में बाधक समझा जाता था।

राष्ट्रवाद का इस्तेमाल प्रसार की नीति तथा सैनिक शासन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। कुछ राजनीतिक संगठनों एवं शिक्षा नीति ने जनता के बीच इस तरह की भावनाओं को उभारने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

यद्यपि सेना के बीच गुटबंदी थी, लेकिन सेना के मध्य होने वाले आंतरिक संघर्ष ने किसी भी तरह से राजनीति एवं प्रशासन पर उसके नियंत्रण को कमज़ोर नहीं किया। आर्थिक संसाधनों को उस युद्ध तंत्र को बनाने की ओर मोड़ दिया गया, जिसको द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की पराजय के बाद ही तोड़ा जा सका।

23.12 शब्दावली

मंचूको : जापान ने मंजूरिया पर अधिकार करने के बाद उसका नामकरण मंचूको कर दिया था।

सैन्यवाद : इस व्यवस्था के अंतर्गत देश के आंतरिक प्रशासन एवं देश की विदेशी मामलों में सेना के द्वारा निर्णायक भूमिका अदा की जाती है।

देशभक्त संस्थाएं : देशभक्त संस्थाओं की स्थापना राष्ट्रवादी विचारों को फैलाने के लिए की गई थी। अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने प्रसारवादी नीतियों का समर्थन किया।

उग्र राष्ट्रवाद : अत्यंत उग्र देश-प्रेम की भावना।

23.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार भाग 23.2 को बनाएं। जापान की स्थिति की तुलना जर्मनी एवं इटली के साथ करें।

2) बहुत से कारण थे, जैसे कि राजनीतिक दलों के विरोध में वृद्धि, सेना के बजट में बढ़ोत्तरी होना, सेना के आकार में कमी आदि। सैन्यवादियों ने सोचा कि जापान विदेशी नीति में विनम्रता की नीति का अनुसरण कर रहा था। देखें भाग 23.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 23.5

2) (i) ✓ (ii) ✓ (iii) ✓ (iv) ✓ (v) ✓

बोध प्रश्न 3

1) **कोदोहा** तथा **तोसेई** जैसे गुटों एवं उनके दृष्टिकोणों को उद्धृत करें। देखें भाग 23.7

2) (i) X (ii) X (iii) X (iv) X

इकाई 24 प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 युद्ध के कारण अर्थव्यवस्था का उत्थान
24.3 अंतर्युद्ध काल में औद्योगिक विकास
- 24.3.1 विद्युत उद्योग
- 24.3.2 भारी एवं रसायन उद्योग
- 24.3.3 सूती कपड़ा उद्योग

24.4 अंतर्युद्ध काल में कृषि
- 24.4.1 पृष्ठभूमि
- 24.4.2 रेशम उत्पादन

24.5 दोहरे ढाँचे का निर्माण
24.6 औद्योगिक केंद्रण तथ जैबात्सू
24.7 अंतर्युद्ध समय में विदेश व्यापार
24.8 सारांश
24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद :

- अंतर्युद्ध काल में कुछ महत्वपूर्ण उद्योगों में हुई अधिक प्रगति के विषय में आपको ज्ञान होगा,
- आप उस कारण की व्याख्या कर सकते हैं जिससे इस काल में कृषि ठहराव आया और "चावल दंगों" के प्रति सरकार की प्रतिक्रिया की भी,
- आप जापान में दोहरी संरचना के निर्माण को समझ जाएंगे, और
- इस काल में आपको वित्तीय जमाव, बड़े व्यापारिक घरानों तथा जापान के विदेशी व्यापार का भी बोध हो जाएगा।

24.1 प्रस्तावना

दोनों विश्व युद्धों के बीच के समय को अर्थात 1918 से 1937 तक के समय को अंतर्युद्ध का समय कहा गया है।

जापान की जिस अर्थव्यवस्था का 1885 से आधुनिकीकरण शुरू हुआ था, वह अंतर्युद्ध के समय में आर्थिक विकास के कुछ सुनिश्चित पक्षों के दृष्टिकोण से भटकती प्रतीत होती है। प्रथम विश्व युद्ध ने औद्योगिक विकास को काफी प्रोत्साहित किया था लेकिन यह काफी संक्षिप्त था। शीघ्र ही जापान में कृषि में ठहराव पैदा हो गया। विदेश व्यापार में भी संकट आ गया। ऐसा इसलिए हुआ कि सरकार पर सेना का नियंत्रण था और इस कारण से जारी की गई आर्थिक नीतियों में जनता के हितों को ध्यान में नहीं रखा गया था। यही वह समय

था जबकि अर्थव्यवस्था का दोहरा ढांचा अस्तित्व में आया और जापान में अर्थव्यवस्था का यह तंत्र आज तक जारी है। इस इकाई में ऐसी कई समस्याओं का विवेचन किया गया है जो अंतर्युद्ध के दौरान जापान में आर्थिक विकास से जुड़ी थीं। औद्योगिक विकास जैबात्सू की भूमिका, विदेशी व्यापार तथा कृषि की स्थिति—ऐसे कुछ विषय हैं जिनका विवेचन इस इकाई में किया गया है।

24.2 युद्ध के कारण अर्थव्यवस्था का उत्थान

इकाई 20 में हम पहले ही, जापान तथा प्रथम विश्व युद्ध के विषय में विवेचन कर चुके हैं। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जापान की अर्थव्यवस्था के मुख्य पक्षों की हम संक्षिप्त विवेचना करेंगे क्योंकि ये पक्ष अंतर्युद्ध काल के दौरान के औद्योगिक विकास से आंतरिक तौर पर संबंधित हैं। प्रथम विश्व युद्ध ने जापान के लिए कुछ समस्याएं पैदा कर दी थीं। जैसे कि विदेश व्यापार में रुकावटें पैदा होने लगी तथा ऋणों का आदान-प्रदान भी प्रभावित हुआ क्योंकि यह सब लंदन संचालित होता था। ब्रिटेन के पूंजी बाजार में भी अव्यवस्था फैल गई जिसके कारण एक संकट पैदा हो गया। लेकिन जहां तक जापान का प्रश्न है, उसके हित मे कुछ चीजों में तेजी के साथ परिवर्तन हुआ। उसकी अर्थव्यवस्था में एक ऐसे आर्थिक विकास का उत्कर्ष हुआ जो 1920 तक चला। प्रथम विश्व युद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों के साथ था। लेकिन यह युद्ध एशिया में बहुत अधिक नहीं लड़ा गया और इसी कारण से जापान को अधिक सैन्य व्यय नहीं करना पड़ा।

युद्ध के कारण जापान ने अचानक महसूस किया कि वह अपने निर्यातों को बढ़ा सकता है। यूरोप के उद्योगों में युद्ध की आवश्यकताओं के लिए उत्पादन किया जा रहा था और जापान युद्ध में प्रत्यक्ष तौर पर बहुत कम शामिल था, इसलिए जापान ने बहुत से निर्यात अवसरों का लाभ उठाया। उदाहरणार्थ, जापान युद्ध सामग्री की आपूर्ति करने वाला प्रमुख देश हो गया। जापान के जहाजों की मांग भी काफी बढ़ गई। यही वे दिन थे जबकि जापा के सूती वस्त्रों ने भारत में अपना मजबूत आधार बना लिया।

वास्तव में इस समय जापान में विदेशी बाजारों का बहुत अधिक प्रसार हुआ था। निर्यात मे वृद्धि हुई, लेकिन उत्पादन मांग के अनुरूप नहीं हो रहा था। यहां तक कि संपूर्ण श्रम एवं उत्पादन क्षमता को गतिशील कर दिए जाने के बावजूद भी निर्यात की बढ़ती मांग को पूरा नहीं किया जा सका।

जापान के निर्यात व्यापार में होती अपार वृद्धि के कारण भारी माल तथा मशीनों के आयात की मांग बढ़ी। लेकिन, जिन देशों से ये आयात किए जाते थे, वहां पर युद्ध के कारण निर्यात पर प्रतिबंध था और इस तरह से जापान में आयात-निर्यात के समक्ष न हो सका। इसके फलस्वरूप निर्यात का विशाल लाभ एकत्रित हो गया। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि 1911 से 1914 के बीच के वर्षों में आयात में निर्यात की अपेक्षा 6 करोड़ 50 लाख येन प्रति वर्ष वृद्धि हो रही थी। लेकिन बाद के वर्षों में निर्यातों में बढ़ोत्तरी के कारणवश, जापान के निर्यात में आयात की अपेक्षा 35 करोड़ 20 लाख येन की प्रति वर्ष वृद्धि हुई। कुल मिलाकर निर्यात 1913 की अपेक्षा 1918 में तीन गुना हो गया।

इस समय में जापान के जहाजों की मांग बढ़ गई और माल भाड़े में भी तेजी के साथ वृद्धि हुई, जिससे और अधिक मुनाफा हुआ। जहां जापान के जहाज 1914 में मात्र 15 लाख टन माल की ढुलाई करते थे वे 1918 में 30 लाख टन माल की ढुलाई करने लगे। ठीक इसी समय में भाड़े से होने वाली आमदनी 4 करोड़ येन से बढ़कर 45 करोड़ येन हो गई। लेकिन 1920 के आते-आते युद्ध से होने वाले इस अथाह मुनाफे में कमी होने लगी।

24.3 अंतर्युद्ध काल में औद्योगिक विकास

औद्योगिक उत्कर्ष के अंत के बावजूद भी जापान में कुछ ऐसे निश्चित उद्योग थे जिनका लगातार विकास होता रहा। आगामी उपभागों में हम कुछ उद्योगों के विषय में विवरण करेंगे।

24.3.1 विद्युत उद्योग

जापानी उद्योग में उत्पादक क्षमता में पर्याप्त वृद्धि को केवल उसी समय महसूस किया गया जिस समय प्रथम विश्व युद्ध के बाद मशीनों के आयात की आवश्यकता हुई। अंतर्युद्ध के दौरान औद्योगीकरण की प्रक्रिया में विद्युत उद्योग ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। विद्युत के विशाल ट्रांसमिशन तथा जेनरेटर 1907 से ही कार्यरत थे। विद्युत प्रयोग के द्वारा उत्पन्न की जाने वाली शक्ति का मूल्य के द्वारा उत्पन्न की जानेवाली शक्ति से आधा था। इसी कारणवश विद्युत शक्ति के लिए उद्योगों की ओर से भारी मांग की जा रही थी। और प्रथम विश्व युद्ध शुरू होने से पूर्व ही विद्युत शक्ति उद्योग भलीभांति स्थापित हो चुके थे। विद्युत शक्ति उद्योग का विकास तकनीकी प्रगति तथा युद्ध के दौरान बढ़ती विद्युत शक्ति की मांग के कारण संभव हो सका।

तालिका 1 में सन् 1914 से 1940 तक उत्पादित की गई विद्युत शक्ति के आंकड़े दिए गए हैं। हम देखते हैं कि विद्युत उत्पादन बड़ी तेजी के साथ बढ़ा। तालिका के दूसरे भाग में विद्युत की सापेक्ष कीमतों को दिया गया है। जिस समय हम विद्युत शक्ति के दाम को कोयले के दाम से विभाजित करते हैं तब हमें विद्युत की सापेक्ष कीमतों का पता चलता है। उद्योग में गति शक्ति को विद्युत या कोयले के प्रयोग के द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है। तालिका को देखने पर हमें यह भी मालूम पड़ता है कि विद्युत की सापेक्ष कीमतों में वर्ष प्रति वर्ष कमी होती गई।

तालिका-1 : अंतर्युद्ध काल में जापान मे विद्युत उत्पादन तथ मूल्य

वर्ष	उत्पादित विद्युत (मिलियन किलोवाट)	सापेक्ष मूल्य (विद्युत शक्ति मूल्य) कोयले का मूल्य
1914	1,791	2.58
1915	2,217	2.23
1920	4,669	1.58
1925	7,093	1.81
1930	15,773	1.43
1935	24,698	0.95
1940	34,566	0.83

अंतर्युद्ध के दौर की समाप्ति पर जापान में विद्युत का घरेलू उपयोग 90 प्रतिशत घरों में होने लगा था। लेकिन इसके वास्तविक प्रभाव को उद्योगों में देखा जाना चाहिए। विद्युत के कुल उत्पाद का दो-तिहाई भाग खान एवं निर्माण उद्योगों में उपयोग होता था। 1926 तथा 1936 के बीच के वर्षों में उद्योगों में खपत होने वाली विद्युत की मात्रा में तीन गुना वृद्धि हुई। सबसे अधिक विद्युत की खपत रसायनिक उद्योगों में और फिर हथियार निर्माण, खान एवं कपड़ा उद्योगों में होती थी।

विद्युत के प्रसार एवं सुगम उपलब्धि ने उद्योग पर कई प्रभाव डाले। जैसे-जैसे लंबी दूरी के शक्ति ट्रांसमिशनों की तकनीक में सुधार हुआ वैसे-वैसे विद्युत के मूल्यों में कमी आती गई। अब विद्युत मात्र प्रकाश का साधन न रह गई थी बल्कि अब यह उन मशीनों को

संचालित करने का मुख्य साधन बन गई थी जो ऊर्जा के बहुत से स्रोतों को कई उद्योगों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली यांत्रिकी ऊर्जा में परिवर्तित करती थीं। विद्युत मोटरों पर निर्भरता बढ़ने लगी। विद्युत का मुख्य गतिशीलकर्ता के तौर पर तेजी के साथ प्रसार हुआ। 1929 तक लगभग 87 प्रतिशत फैक्ट्रियों में विद्युत मोटरों का उपयोग होने लगा। विद्युत के लागू कर दिए जाने से उत्पादन के ऐसे परंपरागत साधनों को परिवर्तित करने के अवसर प्राप्त हुए जिससे बहुत से सामानों के लिए बढ़ती मांग की कोई जरूरत न रह गई थी। उदाहरण के तौर पर हाथों से संचालित किये जाने वाले हथकरघे को अब बिजली के द्वारा चलाया जाने लगा। सस्ती विद्युत तथा विद्युत मोटरों के विसर्जन के कारण विदेशी मशीनों को लागू करना संभव हो सका। उस समय के विकसित देशों में औद्योगिक क्रांति उपभोग की वस्तुओं को पैदा करने वाली मशीनों की खोज के कारण संभव हो सकी थी। जापान के संदर्भ में यह विद्युत प्रसार ही था जिसके कारण उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन के लिए नवीन तरीकों का प्रयोग किया जा सका और इस तरह से जापान का एक औद्योगिक रूपांतरण संभव हुआ।

विद्युतीकरण के प्रसार का दूसरा प्रभाव यह था कि जिन उद्योगों ने विद्युत का उपयोग प्राथमिक उत्पाद के तौर पर किया उनकी संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। विद्युत रसायन उद्योग तथा विद्युत पर आधारित तेल शोधक उद्योग इसके उदाहरण हैं। अक्सर ऐसा कहा जाता है कि यदि जल विद्युत स्टेशनों का निर्माण किया जाए तब काफी बड़ी मात्रा में विद्युत शक्ति उपलब्ध होगी। फिर इस तरह से उत्पादित की गई अधिक विद्युत शक्ति की खपत करने के लिए उद्योगों का निर्माण किया जाएगा। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रसायन उद्योग के उत्पाद का आयात करना असंभव हो गया। इसी कारण से जापान में इस समय में विद्युत शक्ति का प्रयोग करने वाले सोडा, कार्बाइड तथा अमोनियम सल्फेट जैसे रसायनिक उद्योगों की स्थापना की गई।

24.3.2 भारी एवं रसायन उद्योग

भारी उद्योग के अंतर्गत स्टील, गैर-लौह धातु तथा मशीनी उद्योग आते हैं। सन् 1915 में कुल औद्योगिक उत्पादन का 29 प्रतिशत भारी एवं रसायन उद्योग का उत्पादन था और सन् 1920 में बढ़कर यह 33 प्रतिशत हो गया। 1925 में इस उत्पादन में 25 प्रतिशत तक गिरावट आई और 1930 में फिर एक बार यह 33 प्रतिशत हो गया। इस उत्पादन वृद्धि की यह दर जारी रही, 1935 में यह 44 प्रतिशत था तो 1940 में इसका भाग 59 प्रतिशत हो गया। भारी तथा रसायन उद्योग में युद्ध के दौरान तथा बाद में आई इस संपन्नता का कारण आयातों में पैदा हुई रुकावटें थीं। युद्ध के बाद पुनः प्रारम्भ हुए व्यापार के कारण ह्रास हुआ। 1925 में 24 प्रतिशत की कमी आई।

तालिका-2 : भारी और रसायन उद्योग में कुल उत्पादन
औद्योगिक उत्पादन (मिलियन में)

वर्ष	कुल औद्योगिक उत्पादन	भारी तथा रसायन उद्योग उत्पादन	कुल औद्योगिक उत्पादन में भारी तथा रसायन उद्योग का भाग (प्रतिशत में)
1915	2,880	840.5	29.2
1920	9,579	3,202.7	33.4
1925	10,100	2,390.5	23.7
1930	8,838	2,896.0	32.8
1935	14,968	6,516.0	43.5
1940	33,252	19,569.0	58.8

भारी तथा रसायन उद्योगों के लिए रसायनिक खादों के निर्माण कार्यों में उपयोग किए जाने वाले सीमेंट तथा स्टील के उत्पादकों के बड़े बाजार थे। इस समय के दौरान स्टील का

उदाहरण भारी एवं रसायनिक उद्योगों की प्रगति के रूप में दिया जा सकता है। हम इसके विषय में विस्तृत तौर पर विवेचन करेंगे। 1920 के दशक में स्टील की वस्तुओं के घरेलू उत्पादन में चार गुना वृद्धि हुई। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के प्रारंभ के साथ ही स्टील की वस्तुओं के आयातों में तेजी से गिरावट आई लेकिन स्टील के उत्पादन में निरंतर वृद्धि होती रही। इसके कारणवश स्टील क्षेत्र की मूलभूत निर्माण उत्पाद के उपलब्धकर्ता के तौर पर स्थापना हुई। इसी के साथ-साथ आयातित स्टील पर निर्भरता भी कम होने लगी। विशाल निर्माण कार्यों तथा रेलवे लाइन के बिछाने के काम ने लगातार स्टील की मांग को बनाए रखा लेकिन इस तरह की मांग मशीन उद्योग के लिए बरकरार न रह सकी।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान जापान ने भारी तथा रसायन उद्योग में जो निवेश किया था उसके परिणाम युद्ध के बाद प्राप्त होने शुरू हुए। युद्ध के दौरान आयात में आई रुकावटों के कारण नए भारी तथा रसायन उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। इस क्षेत्र में विशाल स्तर पर पूंजी निवेश हुआ और 1920 के दशक में भारी तथा रसायन उद्योगों को मजबूती के साथ स्थापित कर दिया गया था।

इस संदर्भ में हम विद्युत शक्ति उद्योग, रसायन तथा हल्के मशीन उद्योगों के मध्य एक घनिष्ठतम संबंध देखते हैं। विद्युत शक्ति की भरपूर मात्रा सस्ते दामों पर उपलब्ध थी और इसी के कारणवश विद्युत रसायन तथा स्टील उद्योगों का विकास संभव हुआ।

इस समय के दौरान जापान का औद्योगिक विकास केवल पहले से सुनिश्चित किए गए क्षेत्रों तक सीमित न था। धातु एवं मशीन उद्योग अन्य दूसरे उद्योगों की विशाल स्तर पर सहायता करते थे और इन उद्योगों का विकास भी कुछ सुनिश्चित क्षेत्रों में हुआ। अन्य दूसरे ऐसे उद्योग जिनका विकास बाद में हुआ—इनके साथ घनिष्ठ तौर पर जुड़े थे। 1920 के दशक के दौरान हम जापान में औद्योगिक क्षेत्रों के निर्माण को पाते हैं। टोकियों—याकोहामा तथा ओसाका—कोबे को इस तरह के औद्योगिक क्षेत्रों के रूप में उद्धृत किया जा सकता है।

भारी तथा रसायन उद्योग का विकास 1930 के वर्षों में भी बराबर जारी रहा। 1920 के दशक में भी भारी तथा रसायन उद्योगों का प्रसार जारी रहा तथा आर्थिक मंदी के दौरान भी इन उद्योगों में भारी उत्पादन हुआ। 1935 तक उत्पादन में वृद्धि विद्यमान क्षमताओं के द्वारा स्वयं ही होती रही। लेकिन भारी तथा रसायन उद्योगों के उत्पादनों की मांग लगातार बढ़ती रही। उनकी मांग सिविल इंजीनियरिंग निर्माण तथा मशीन, जहाज निर्माण आदि जैसे उद्योगों से आती थी। इसके कारण पुनः भारी एवं रसायन उद्योगों के प्लांट का विकास हुआ और इस उद्योग में वृद्धि निम्नलिखित कारणों से हुई—

1932 तथा 1937 के बीच में ऐसे जहाजों को नष्ट कर दिया गया जो 25 वर्ष से अधिक पुराने थे। नए जहाजों के निर्माण के फलस्वरूप उनके उत्पादों की पुनः मांग हुई।

1936 तक इस उद्योग से की जाने वाली सैनिक मांग उनकी कुल मांग का मात्र 10 प्रतिशत थी। लेकिन इस उद्योग से सैनिक मांग उस समय बढ़ी जबकि सैनिक आवश्यकता के लिए युद्ध विमानों आदि से संबंधित वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हुई।

24.3.3 सूती कपड़ा उद्योग

यद्यपि सूती कपड़ा उद्योग प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व भी महत्वपूर्ण था, लेकिन युद्ध के बाद इसमें महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। युद्ध के तुरंत बाद के वर्षों में सूती कपड़ा मिलों की संख्या में वृद्धि हुई। क्षमता की वृद्धि का संकेत मिलों एवं कंपनियों की संख्या में हुई वृद्धि से मिलता है और इसके बाद इनके सुदृढ़ीकरण की प्रवृत्ति का भी आभास होता है। 1929 के आसपास तकवों का 50 प्रतिशत स्वामित्व मात्र सात कंपनियों के पास था। लेकिन सूत कताई का कार्य कपड़ा मिलों ने प्रारंभ कर दिया जबकि इससे पूर्व जुलाहे अलग-अलग इस कार्य को करते थे। संयुक्त तौर पर कताई-बुनाई की मिल सूती कपड़ा उद्योग की एक जटिल विशेषता हो गई। इस समय कपड़ा उद्योग में महत्वपूर्ण घटना हुई। वह व्यापक विशेष प्रकार के कारखानों (पचास लूमों से ऊपर के) का प्रकट होना था और इन कारखानों में बिजली से चलने वाले करघे लगे थे तथा विदेशी बाजार के लिए कपड़े का उत्पादन करते

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औद्योगीकरण पर प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

2) शक्ति उत्पादन में हुई वृद्धि ने औद्योगीकरण में कैसे सहायता की? उत्तर लगभग 1(पंक्तियों में दें।

24.4 अंतर्युद्ध काल में कृषि

अंतयुर्द्ध काल के दौरान जापानी कृषि में ठहराव आ गया था। कृषि में वृद्धि दर तथा कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि न हो सकी। ग्रामीण जनता के आमदनी स्तर में भी एक ठहराव पैदा हो गया था। इसी कारण उनके रहने का स्तर काफी कम था। लेकिन कृषि में आए इस ठहराव का एक सकारात्मक पक्ष भी था, कृषि तकनीकी की एक नई क्षमता का विकास हो रहा था। इसके परिणाम 1950 के बाद दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति पर ही प्राप्त हो सके।

24.4.1 पृष्ठभूमि

प्रथम विश्व युद्ध से पहले के 25 वर्षों में जापान में कृषि में तेजी के साथ विकास हुआ। स्थानीय विशेषता के साथ कृषि तकनीक में आई बहुत सी प्रगतियों का प्रसार संपूर्ण देश में हुआ। राज्य के संरक्षण में किसानों, कृषि वैज्ञानिकों, तथा कृषि उत्पादनों की आपूर्ति करने वाली कंपनियों के बीच अंत:क्रिया थी और उन्होंने पहले से ही उपलब्ध तकनीक का भरपूर उपयोग किया।

लेकिन 1910 के दशक में इस स्थिति में परिवर्तन हुआ। ऐसे जमींदार जो कृषि की प्रगति में सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे, उन्होंने उद्योग में तेजी से हुए विकास के कारण कृषि में रुचि लेना बंद कर दिया। उनमें से बहुत से जमींदार ऐसे थे जो आमदनी का कृषि में पुनः निवेश करते रहते थे, किंतु अब उन्होंने इसके स्थान पर यह देखा कि अगर इस आमदनी का उन बहुत से उद्योगों में निवेश किया जाना जिनका तेजी के साथ विकास हुआ था–अधिक लाभदायक होगा। इसके फलस्वरूप कृषि में होने वाले सुधारों को एक धक्का लगा। पहले जमींदार लोग बहुत से प्रकार के कृषि सुधारों में रुचि लेते थे और इन सुधारों में योगदान भी करते थे। लेकिन उनकी इस निवेशात्मक भूमिका का स्थान एक दूसरी प्रक्रिया ने ले लिया। अब ऐसा प्रतीत होता था कि कृषि के उत्थान में कोई योगदान किए बगैर जमींदार लगान एकत्रित करने में रुचि रखते थे। इस तरह वह पूंजी जिसको कृषि से एकत्रित किया गया था किसी अन्य मद में निवेश कर दिया जाता।

इस समय से पूर्व पिछले दो सौ वर्षों में जिस कृषि तकनीक का विकास हुआ था, वह अपने विकास के चरम बिन्दु पर पहुंच चुकी थी और उसके द्वारा अब कृषि उत्पादन में वृद्धि करना संभव न था। उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक नई तकनीकी की आवश्यकता थी। परंतु सरकार के कृषि अनुसंधान के केंद्र इस बिंदु तक विकसित न थे जहां पर वे पहले से ही शोध कार्यों के स्तरों को विकसित कर सकते थे। कृषि की नवीन प्रौद्योगिकी को विकसित न कर पाने की इस अयोग्यता के साथ-साथ जमींदारों के द्वारा कृषि में निवेश किए जाने वाले धन की कमी के कारण 1910 के दशक में स्वयं ही जापान की कृषि में गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई।

24.4.2 1918 का चावल दंगा और इसके परिणाम

औद्योगीकरण की द्रुत गति के फलस्वरूप शहरी केंद्रों में श्रम शक्ति की मांग भी बढ़ने लगी। बेहतर परिवहन तथा संचार की सुविधाओं के कारण शहरी केंद्रों के पास ही अधिकतर उद्योगों की स्थापना हुई। उद्योगों में कृषि की अपेक्षा अधिक मजदूरी होने के कारण उद्योगों में काम करने के लिए सैकड़ों लोगों ने अपने ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़ दिया। प्रथम विश्व युद्ध का उत्कर्ष–व्यापारिक परिस्थितियों में औद्योगिक श्रमिकों द्वारा अधिक खाद्य पदार्थों की मांग की जाने लगी और यह मांग इससे पूर्व भी बढ़ चुकी थी लेकिन इस समय इस मांग ने एक विशेष स्वरूप ग्रहण कर लिया। लेकिन इसी के साथ-साथ यह वह समय भी था जबकि जापान में कृषि उत्पादनों में कमी भी हो रही थी। खाद्य पदार्थों का उत्पादन इतना अधिक था कि वह इनकी बढ़ती मांग को पूरा कर सके। खाद्य पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि मजदूरी से अधिक थी। इसके परिणामस्वरूप उस सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति 1918 के चावल दंगों के रूप में हुई। यह दंगा मात्र एक छोटी सी घटना अर्थात् चावल के उच्च दामों के विरुद्ध विरोध के तौर पर शुरू हुआ। लेकिन जैसे ही इसका प्रारंभ हुआ वैसे ही यह द्रुत गति से संपूर्ण जापान में फैल गया।

विशाल भीड़ ने अनाज के भंडारों को तोड़ डाला और धनी व्यापारियों की दुकानों को लूट लिया। वास्तव में यह सामाजिक न्याय की वह लोकप्रिय अभिव्यक्ति थी जिसने दंगों को और अधिक सक्रिय बनाया। ओचामा इको ने इसकी विशेषता बताते हुये लिखा है कि–यह "कानून की आड़ में लूट के विरुद्ध प्रतिकारात्मक" कार्यवाही थी। जब यह समझ लिया गया कि सामाजिक समस्याओं के निदान का और कोई तरीका शेष न रह गया है तब इन दंगों का इनके समाधान के तौर पर प्रारंभ हुआ।

आमदनियों में जो विशाल असमानताएं थी उनके विरुद्ध भी जापान में आवाज को बुलंद किया गया। उस संदर्भ में जापान के एक उदार बुद्धिजीवी कावाकामी हैजूने का नाम उद्धृत किया जा सकता है। उसने यह प्रश्न उठाया कि उद्योग एवं तकनीक में हुए विकासों के बावजूद भी देश में इतने अधिक गरीब लोग क्यों हैं? ऐसा महसूस किया गया कि चावल के मूल्यों में आई तेजी का कारण शासकों का सामान्य जनों की दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी के प्रति भावनाविहीन होना था। सरकार की इस बात के लिए आलोचना की गई कि वह संपन्न लोगों के स्वार्थों की रक्षा कर रही थी। तोयो के जाय शिम्पो नाम समाचार पत्र ने साम्यवादियों के विचारों को अभिव्यक्त करते हुए अपने संपादकीय में लिखा–

> "कुछ लोग संपत्ति स्वामी तथा संपत्तिविहीनों के मध्य वर्ग संघर्ष के कारण के रूप में किसी लेबर समस्या को न देखकर सिर्फ दंगों को ही देखते हैं।"

निश्चय ही इस तरह के विचार लोगों के बीच विद्यमान थे। चावल दंगों का समाचार जैसे ही न्यूयार्क पहुंचा वैसे ही जापान के विशेषज्ञों ने यह विश्वास किया कि जापान में क्रांति होने वाली थी। लेकिन कोई घटना घटित न हुई और सरकार ने स्थिति पर नियंत्रण करने में सफलता प्राप्त कर ली। ये दंगे आर्थिक मुश्किलों तथा निर्धनता के विरुद्ध विरोध मात्र बने रहे। वे इस राजनीतिक व्यवस्था को चुनौती न दे सके तो इसके लिए उत्तरदायी थी। फिर भी उदारवादी बुद्धिजीवियों ने संवैधानिक प्रक्रिया में लोकप्रिय भागीदारी को विस्तृत करने की मांग की। अभी सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन करना था। अब कृषि मंत्रालय को अकेले बिना किसी पक्षपात के किसानों से जूझना पड़ा। शहरी केंद्रों में श्रमिकों की सहायता के लिए भी प्रयास इस आशय के साथ किए गए जिससे कि उनको मजदूर संघों में शामिल होने से रोका जा सके।

चावल दंगे के जवाब में सरकार ने चावल का आयात अपने उपनिवेशों कोरिया एवं ताइवान से शुरू कया। ऐसा करने लिए कोरिया तथा ताइवान वासियों को चावल से निम्न स्तर के खाद्य पदार्थों को खाने के लिए बाध्य किया गया जिससे कि वे अपने चावल को जापान को निर्यात कर सकें। अधिक चावल को प्राप्त करने के लिए इन उपनिवेशों में जापान की उच्च पैदावार वाली चावल की किस्मों को लागू किया गया तथा सिंचाई एवं जल नियंत्रण में पूंजी निवेश भी किया गया। इस कार्यक्रम के सकारात्मक परिणाम हुए। सन् 1915 तथा 1925 के बीच कोरिया से जापान को आयात किए जाने वाले चावल में 170 से 1,212 हजार मैट्रिक टन की वृद्धि हुई। इन उपनिवेशों से आयात किया जाने वाला चावल जहां 1915 में घरेलू उत्पादन का 5 प्रतिशत था वहीं पर वह 1935 में बढ़कर 20 प्रतिशत हो गया।

लेकिन इन उपनिवेशों से आयात किए जाने वाले जिस चावल ने उस संकट की घड़ी में जापान की मदद की बाद में चलकर वह जापान के लिए एक समस्या बन गया। प्रथम युद्ध की समाप्ति पर व्यापार उत्कर्ष का अंत हो गया और खाद्य पदार्थों की मांग में भी कमी आई। लेकिन औपनिवेशिक चावल ने जापान के बाजारों को भर दिया। इसके कारण घरेलू उत्पादित चावल के दामों में गिरावट आई। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि आमदनी में भी गिरावट आई। अंततः विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने जापान के कृषि संकट को और गहरा कर दिया। कृषि की आमदनी में आई गिरावट ही मुख्य समस्या थी। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए—

i) प्रथमतः सरकार ने कृषि उत्पादनों के समर्थन मूल्य को लागू किया। जिसका तात्पर्य यह था कि उत्पादनों को कम से कम मूल्य की गारंटी प्रदान की गई और कृषि उत्पादनों के मूल्यों को इनसे नीचे नहीं गिरने दिया जाएगा।

ii) दूसरे, सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक बुनियादी ढांचे का निर्माण शुरू किया जिससे कि ग्रामीण जनता को अतिरिक्त रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें।

iii) तीसरे, सरकार ने उन किसानों को कर्ज दिया जो पहले से ही ऋण-ग्रस्त थे। सरकार इस कर्ज पर जो ब्याज वसूल करती वह ग्रामीण महाजनों की तुलना में काफी कम था। इसका तात्पर्य यह था कि ब्याज तथा ऋण की पुनः अदायगी के भार को काफी कम कर दिया गया।

iv) चतुर्थ, सरकार ने कृषि सहकारी समितियों के निर्माण का समर्थन किया जिससे किसानों का शोषण बहुत से बिचौलियों के द्वारा न किया जा सके।

सरकार के इन सभी प्रयासों के बावजूद भी कृषकों की आमदनी में पर्याप्त वृद्धि न हो सकी। ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे निर्धन वे कृषक थे जो जमींदारों से भूमि को लगान पर प्राप्त करते थे। काश्तकारी किसान जिस भूमि पर खेती करते उन्हें उसका अधिक लगान वस्तु में देना होता था। जिस समय कृषि की आमदनी के स्तरों में ठहराव आ रहा था, तब उनके लिए इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करना कठिन हो रहा था। इसलिए उन्होंने जमींदारों द्वारा वसूल किए जाने वाले लगान में कमी करने की मांग की। दूसरे, अब जमींदारों का

माई-बाप वाला दृष्टिकोण भी न रह गया था। उन्होंने लगान में कटौती करने से इंकार कर दिया। इसके फलस्वरूप काश्तकार अपना संगठन बनाने के लिए इकट्ठा होने लगे जिससे कि वे मजबूत स्थिति में होकर अपनी मांगों को मनवाने के लिए सौदेबाजी कर सकें। इसके फलस्वरूप जमींदारों ने इसका उत्तर काश्तकारों को उनकी जमीनों से बेदखल करके देना शुरू किया। इस समय में जापान में अनेकों हिंसा की घटानाएं हुई और काश्तकारी झगड़ों में भी व्यापक तौर पर वृद्धि हुई।

सरकार ने काश्तकारों की सहायता करने के लिए सस्ती ब्याज दरों पर भूमि को खरीदा किंतु उनकी समस्या को हल करने के लिए ये प्रयास अपर्याप्त थे।

अंतर्युद्ध के दौरान किसान परिवारों की संख्या लगभग 55 लाख पर ही स्थिर बनी रही। जमीन के वितरण का आकार भी लगभग एक समान बना रहा। छोटी जमीनों तथा बड़ी जमीनों की संख्या में थोड़ी कमी आई। पहले अन्य सभी समयों की भांति इस समय भी चावल ही मुख्य फसल थी। जापानी कृषि में जो वृद्धि स्पष्ट हुई वही चावल के उत्पादन में हुई वृद्धि के रुझानों को स्पष्ट करती हैं। आधे से अधिक कृषि योग्य भूमि पर चावल की खेती ही की जाती थी।

इस समय में कृषि में उत्पादनों की किस्मों में भी वृद्धि हुई। सब्जी की अधिक किस्मों को लागू किया गया। फलों की खेती तथा मुर्गी पालन में भी वृद्धि हुई। इससे शहरी आबादी की आमदनी में हुई वृद्धि की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि वे ही ऐसे प्रमुख लोग थे जो इन क्षेत्रों में पूंजी निवेश करते थे। उर्वरक के प्रयोग में भी वृद्धि हुई। कई प्रकार की रसायनिक खादों का आयात किया जाता था। उदाहरण के लिए, पश्चिमी देशों से अमोनियम सल्फेट का आयात होता था।

24.4.2 रेशम उत्पादन

इस समय के दौरान कृषि में चावल के बाद सबसे महत्वपूर्ण उत्पादन कच्चे रेशम का था। रेशम के उत्पादन के कार्य का विकास कृषि में अन्न उत्पादन के बाद एक प्रमुख दूसरे कार्य के रूप में हुआ। रेशम की बढ़ती विश्वव्यापी मांग के कारण रेशम-उत्पादन उद्योग का विकास द्रुत गति के साथ हुआ और 1914 तथा 1929 के बीच रेशम उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई।

रेशम के कीड़ों का उत्पादन बसंत ऋतु अर्थात् जापान में अप्रैल से जून तक किया जाता था। लेकिन इसी के साथ-साथ चावल एवं अन्य फसलों के उत्पादन का कार्य भी चलता रहता था। दोहरी श्रम मांग होने के कारण रेशम के कीड़ों के उत्पादन को अधिक समय नहीं दिया जा सकता था, इसलिए गर्मी में रेशम का उत्पादन करने वाले कीड़ों पर (रेशम के कीड़ों की ऐसी किस्म जो गर्मी एवं शरद ऋतु में रेशम की उत्पादन कर सकते हों) अन्वेषण निरंतर होता रहा–

- एक ऐसी नवीन युक्ति को तैयार किया गया जिसके अंतर्गत रेशम के कीड़ों के जनन को इच्छानुसार बढ़ाया जा सके।
- रेशम के कीड़ों के जनन की एक कृत्रिम विधि को विकसित किया गया।
- कम मृत्यु दर वाली कीड़ों की उच्च किस्मों को लागू किया गया।

इन सभी विधियों को संयुक्त तौर पर गर्मी आगमन तकनीक का नाम दिया गया और इससे उत्पादन में काफी वृद्धि हुई।

इस नई तकनीक ने किसानों को अनेक प्रकार के लाभ प्रदान किये। इन सब में महत्वपूर्ण यह था कि जो श्रमिक गर्मी एवं शरद ऋतुओं में, बेकार घुमते रहते थे, उनको इस नई तकनीक ने काम उपलब्ध कराया। इस यंत्र का वर्ष में दो बार उपयोग किया जा सकता था। इस तकनीक ने निश्चित रूप से एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और इस वास्तविकता को इस तरह से देखा जा सकता है कि 1920 में रेशम के उत्पादन का आधा इस विधि के द्वारा ही किया जाता था।

1929 में खेती करने वाले सभी परिवारों का 40 प्रतिशत द्वितीय रोजगार के तौर पर रेशम

उत्पादन के कार्य में लगा रहता था। कताई मिलों के कारण महिला श्रमिकों की मांग भी की जाने लगी। इस कार्य की पूर्ति मूल तौर पर कृषक परिवारों की महिलाओं के द्वारा ही की जाती थी। रेशम उत्पादन के द्वारा होने वाली आमदनी तथा महिलाओं के द्वारा कताई मिलों से कार्य करके प्राप्त की जाने वाली मजदूरी किसान की नकद आमदनी का मुख्य भाग हो गयी। रेशम उत्पादन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसने धन के निवेश को अपरिहार्य नहीं बनाया। इस दूसरे कार्य के द्वारा किसानों को जो आमदनी हुई उससे वे गरीबी का शिकार होने से बच गए। इसके फलस्वरूप अब रेशम उत्पादन पर अधिक जोर दिया जाने लगा।

जहां तक रेशम के मूल्यों का प्रश्न है वे युद्ध के दौरान काफी ऊंचे बने रहे परंतु युद्ध के बाद आई मंदी में उनमें कमी आई और बाद में पुनः उनमें वृद्धि हुई। 1930 में जापान के निर्यातों का अमेरिकी बाजार धराशायी हो गया। दुर्भाग्यवश जापानी किसानों के लिए रेशम के दामों में भी उसी समय भारी गिरावट आई जबकि चावल के मूल्यों में भी कमी हुई। जिसका कुल परिणाम यह हुआ कि किसानों ने अपनी मुश्किलों के लिए राजनीतिज्ञों तथा **जैबात्सू** को उत्तरदायी ठहराया। इस विश्वास के कारण सेना में ग्रामीण क्षेत्रों से खूब भर्ती की गई। इस तरह की भावनाओं ने सैन्यवाद की वृद्धि की प्रवृत्ति को खूब बढ़ावा दिया जिनको सेना पसन्द नहीं करती थी। (देखें इकाई 23)।

बोध प्रश्न 2

1) 1918 के चावल दंगे के प्रति सरकार के दृष्टिकोण की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए। चावल की कीमतों को कम करने के लिए क्या प्रयास किए गए?

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) रेशम उत्पादन में क्या-क्या तकनीकी सुधार किए गए? उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

24.5 दोहरे ढांचे का निर्माण

दोहरे ढांचे से तात्पर्य है कि अर्थव्यवस्था में आधुनिक तथा परंपरागत क्षेत्रों का साथ-साथ विद्यमान होना। आधुनिक क्षेत्र में उन उद्योगों से तात्पर्य है जिनमें माल का उत्पादन करने में आधुनिक तकनीकी के प्रयोग के साथ-साथ श्रम की अपेक्षा अधिक पूंजी का उपयोग किया जाता है। परंपरागत क्षेत्र में उन उद्योगों को रखा जाता है जो अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और ये उत्पादन विधि के तौर पर अधिक पूंजी के प्रयोग के स्थान पर श्रम का अधिक उपयोग करते हैं। परंपरागत क्षेत्र में आधुनिक क्षेत्र की अपेक्षा मजदूरी बहुत ही कम होती है। यह दोहरा ढांचा उन देशों में पाया जाता है जिनका अभी हाल में औद्योगीकरण हुआ है या जिनको हम विकासशील देश कहते हैं। आधुनिक क्षेत्र में जिन नई तकनीकों को लागू किया जाता है उनमें पूंजी की अधिकता होती है अर्थात उनको श्रम की अपेक्षा पूंजी की अधिक आवश्यकता होती है। लेकिन पूंजी तथा श्रम के निश्चित किए गए संयुक्त स्वरूप को उस देश के लिए भी परिवर्तित करना संभव नहीं है जिस देश के पास पूंजी की तुलना में अधिक श्रम है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि औद्योगीकरण के जापान के कार्यक्रम को आधुनिक तकनीकी के आधार पर किस ढंग से बनाया गया था। लेकिन ठीक उसी के साथ-साथ विकास के जापानी अनुभव में परंपरागत क्षेत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस संदर्भ में रेशम के उद्योगों को उद्धृत किया जा सकता है। जो कि 1930 के दशक तक विदेशी मुद्रा को कमाने का यह एक महत्वपूर्ण साधन था। इसके बाद 1960 के दशक के वर्षों तक श्रम प्रधान कुटीर स्तर के उद्योग विदेशी मुद्रा को कमाने का महत्वपूर्ण साधन थे। जापानी अर्थव्यवस्था में दोहरे ढांचे की स्थापना अंतर्युद्ध काल में की गई। अब हम दोहरे ढांचे के निर्माण के कारणों तथा दोहरे ढांचे की निरंतरता की विवेचना करेंगे।

जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद कृषि आमदनी में एक ठहराव पैदा हो गया था। जबकि 1920 के दशक में उसमें कुछ सुधार हुआ किंतु एक बार फिर 1927-28 के वर्ष में कृषि आमदनी में कमी आई। तब से उसमें तेजी से गिरावट आई। अगर हम महिला एवं पुरुषों की औद्योगिक मजदूरी की तुलना करें तब हम इन दोनों की मजदूरी में काफी अंतर पाते हैं। महिलाओं को उद्योग में केवल संक्षिप्त समय के लिए कार्य करना होता था और बाद में उनको इस कार्य को छोड़ना पड़ता था। उनकी मजदूरी सामान्यतः कम ही होती थी और उनमें से अधिकतर कृषि क्षेत्र से आती थीं। महिला श्रमिकों का उद्योग में काम करने के लिए सतत प्रवाह बना रहता था और वे उन पुरुष श्रमिकों का स्थान ग्रहण करती जो वापस अपनी खेती करने के लिए लौट जाते। उद्योग उनको कम मजदूरी देते थे लेकिन इसके बावजूद भी उनके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि श्रमिकों की कोई कमी न होगी। फिर भी महिला श्रमिकों की आमदनी पुरुषों की आमदनी की सहायक की बनी रही।

पुरुष श्रमिकों की स्थिति भिन्न थी। उद्योग में वे लम्बे समय तक रहकर कार्य करते। उन्होंने कृषि के साथ अपने संबंधों को पूर्णतः तोड़ दिया था और औद्योगिक मजदूर बनकर अपनी आजीविका को चलाते थे। उनकी मजदूरी महिला श्रमिकों की अपेक्षा अधिक थी। लेकिन कृषि में ठहराव की स्थिति के कारण कृषि क्षेत्र में पुरुष बेरोजगारों की संख्या बहुत अधिक थी। न तो कृषि में उनको रोजगार मिल पाया और न ही बड़े उद्योग उनको रोजगार उपलब्ध करा पाए। छोटे तथा परंपरागत उद्योगों का तेजी के साथ प्रसार हुआ क्योंकि उनको सरलता से श्रमिक उपलब्ध हो जाते थे। इसलिए प्रथम विश्व युद्ध के बाद आधुनिक उद्योग बढ़ती श्रम शक्ति की खपत न कर सका। इसके कारणवश परंपरागत क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हुई। 1920 के दशक में इसके दो परिणाम हुए—

1) प्रथम थोक व्यापार, खुदरा तथा सर्विस क्षेत्रों जैसे—परंपरागत क्षेत्रों का प्रसार हुआ। हम देखते हैं कि इन क्षेत्रों में किराए के मजदूरों, मालिकों एवं परिवार सेवकों की संख्या में वृद्धि हुई। इन लोगों के पास कोई स्थायी रोजगार न होने से वे परंपरागत क्षेत्र की ओर चले गए। यह सत्य था कि परंपरागत क्षेत्र में कम मजदूरी थी फिर भी बेरोजगार इसी को प्राथमिकता देते थे।

2) दूसरा परिणाम यह था कि परिवहन संचार एवं सार्वजनिक उपयोगिताओं का प्रसार हुआ। ऐसा इस कारण से हुआ क्योंकि इस समय में विद्युत शक्ति तथा रेलवे जैसी बड़ी कंपनियों का पर्याप्त विकास हुआ। इसके साथ-साथ हम देखते हैं कि वाणिज्य तथा सर्विस उद्योगों में मजदूरों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई। रोजगार के विशेष क्षेत्र उपभोग वस्तुओं की बिक्री, फुटकर वस्तुओं की बिक्री, सराय, सार्वजनिक स्नान गृह, शौचालय, घरेलू सेवाएं, शिक्षा, दवाई तथा नर्सिंग थे।

इसी के कारण श्रम बाजार में दोहरा ढांचा बना। आधुनिक तथा परंपरागत क्षेत्रों में प्राप्त की जाने वाली मजदूरी में काफी अंतर था। जापान में प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व मजदूरी के अंतर पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद यह अंतर काफी गहरा होने लगा और 1924 के बाद आधुनिक क्षेत्र तथा परंपरागत क्षेत्र में यह अंतर और तेजी के साथ फैला।

24.6 औद्योगिक केंद्रण तथा जैबात्सू

अंतर्युद्ध वर्षों के दौरान जापान में औद्योगिक एकाधिकार में काफी वृद्धि हुई। एकाधिकार से तात्पर्य उस स्थिति से है जबकि किसी विशेष उपभोग की वस्तु के उत्पादन में कुछ ही उत्पादनकर्ता शामिल हों। प्रतियोगिता के अभाव में कई बार उत्पादित वस्तु के दाम बहुत अधिक होते हैं। इन वर्षों के दौरान **जैबात्सू** की भूमिका औद्योगिक केंद्रण की थी। **जैबात्सू** से अभिप्राय विशाल व्यापारिक घरानों से है, लेकिन इन व्यापारिक घरानों के कार्य क्षेत्र एवं स्वार्थ अलग-अलग थे। इन वर्षों में जापान में **मित्सुई, मित्सुबिशी, सुमितोमो,** तथा **यासूदा** जैसे चार बड़े **जैबात्सू** थे।

1920 के दशक की कुछ वित्तीय मुश्किलों के कारण सरकार ने कुछ निश्चित उपायों को लागू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि बैंकों की संख्या में गिरावट आई। 1918 में बैंकों की संख्या 2285 थी वह 1930 में 1913 रह गई। 1928 में **मित्सुई, मित्सुबिशी, दादू इची, सुमी तोमो** तथा **यासुदा** जैसी "बड़ी पांच" बैंकों के पास सभी सामान्य बैंकों की 34 प्रतिशत पूंजी जमा थी। इन पांच बड़े बैंकों में से चार पर **जैबात्सू** का नियंत्रण था। सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में **जैबात्सू** की वित्तीय शक्ति में काफी वृद्धि हुई। **जैबात्सू** द्वारा औद्योगिक नियंत्रण करने के लिए बैंकिंग एवं वित्त सामरिक तौर पर महत्वपूर्ण आधार बन गए थे।

पांच बड़े बैंकों में जमा पूंजी के केंद्रण का परिणाम धन आपूर्ति की एक पूर्णरूपेण नई स्थिति के रूप में हुआ—

1) ये बड़े बैंक शायद ही छोटी या मध्यम कंपनियों को ऋण देते थे। ये विशेष प्रकार के बड़े उद्योगों को ही ऋण देते थे। बैंकों के केंद्रण के साथ ही इन नीतियों को लागू किया गया, कमजोर छोटी कंपनियों को ऋण सुविधा न थी और उनको मुश्किलों का सामना करना पड़ा। बड़े बैंक अपनी विशाल वित्तीय शक्ति के बल पर जिस भी कंपनी पर अपना नियंत्रण कायम करने की सोचते उसको अपने नियंत्रण में ले सकते थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये बड़े बैंक **जैबात्सू** से जुड़ी कंपनियों की देखभाल करते और उन्हीं को प्राथमिकता प्रदान करते।

2) दूसरे, कोई एक विशेष **जैबात्सू** समूह के नियंत्रण तंत्र को विस्तृत करने के लिए बैंक के धन का उपयोग कर सकता था। इस तरह से बैंकों में जो जमा पूंजी थी उसका उपयोग **जैबात्सू** की ताकत को बढ़ाने में किया गया। **जैबात्सू ने** विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कंपनियों की स्थापना की।

3) तीसरे, **जैबात्सू** से संबंधित कंपनियों के पास नियंत्रण की ऐसी शक्तियां थी जो उनकी वित्तीय पूंजी की भागीदारी से कहीं अधिक थीं। **जैबात्सू** की शक्तियां 1920 तथा 1930 के दशकों में अपने चरमोत्कर्ष पर थी किंतु इसके बाद उनका **पतन** शुरू हो गया।

जैबात्सू की शक्तियां केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित न थी। इसका राजनीति में भी काफी प्रभाव था। ये व्यापारिक घराने पिछले 50 वर्षों से शक्तिशाली थे। जापान की सरकार अपनी कुछ निश्चित आर्थिक गतिविधियों के लिए इन घरानों की वित्तीय मदद पर निर्भर करती थी। **जैबात्सू** ने उन राजनीतिज्ञों के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए जो नीतियों का निर्धारण करते थे। नीतियों को लागू करने के लिए वे संसाधनों तथा सहायता को उपलब्ध कराते थे। राज्य उनकी सहायता उनको महत्वपूर्ण ठेके प्रदान करके तथा राज्य की संपत्ति को उन्हें कम दामों पर बेचकर करता था। **जैबात्सू** के राजनीतिज्ञों के साथ घनिष्ठतम संबंध होने के कारण उसकी नीतिगत मामलों पर सलाह महत्वपूर्ण होती थी और ये संबंध उनके इस स्तर पर होते थे कि जहां वे सरकार के ऊपर अपने विचारों को थोप सकते थे।

इन सबका यही पर अंत नहीं हो जाता। विश्वव्यापी मंदी के दौरान किसानों एवं छोटे उत्पादनकर्ताओं को भारी नुकसान हुआ। उन्होंने अपनी कठिनाइयों के लिए **जैबात्सू** को उत्तरदायी ठहराया। सेना सरकार के द्वारा विदेशी मामलों में लिए गए कार्यों तथा सेना को आवंटित किए गए बजट को लेकर नाराज थी और वह **जैबात्सू** को भी पसंद नहीं करती थी। फिर **जैबात्सू** की जबर्दस्त आलोचना की जाने लगी। **जैबात्सू** पीछे हट गई और उसकी महत्वपूर्ण स्थिति में कमी आई। यद्यपि राष्ट्र के प्रति वफादारी के लिए उन्होंने बहुत से योगदान किए, लेकिन इस समय से उसका द्रुत गति से पतन होने लगा।

24.7 अंतर्युद्ध के समय में विदेश व्यापार

हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं तुरंत बाद जापान के निर्यातों में काफी तेजी से वृद्धि हुई। 1913 तथा 1929 के बीच विदेशी व्यापार में तीन गुणा वृद्धि हुई। अगर हम जापान तथा उसके उपनिवेशों के बीच हाने वाले व्यापार को शामिल करते हैं तब यह वृद्धि और भी अधिक होगी। 1914 से पूर्व औपनिवेशिक व्यापार इतना महत्वपूर्ण न था। लेकिन जैसे ही विश्व युद्ध का समापन हुआ वैसे ही यह व्यापार विदेशी व्यापार का 12 प्रतिशत हो गया और 1929 में 20 प्रतिशत। जापान का अपने उपनिवेश कोरिया एवं ताइवान के साथ व्यापार वैसे ही था जैसा कि भारत एवं इंग्लैण्ड के बीच था। जापान अपने उपनिवेशों को औद्योगिक उत्पादनों का निर्यात करता था और उनसे खाद्य सामग्री एवं कच्चे माल के आयात।

जापान का बाह्य विश्व के साथ होने वाला व्यापार इस वास्तविकता का द्योतक था कि इसका तेजी से औद्योगीकरण हो रहा था। जापान के निर्यात में औद्योगिक उत्पादन का प्रतिशत 1913 में 29 प्रतिशत था। वह 1944 में बढ़कर 44 प्रतिशत हो गया। 1913 में निर्यात में कपड़े की भागीदारी अच्छी थी। 1913 के निर्यातों में सूती धागा तथा कपड़ा, कच्ची रेशम तथा रेशम के उत्पादनों की संयुक्त भागीदारी 53 प्रतिशत हो गई। जहां 1913 में इस निर्यात में कच्ची रेशम का भाग 30 प्रतिशत था वह 1929 में 37 प्रतिशत हो गया।

क्षेत्रानुसार चीन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका को होने वाला निर्यात 1913 में 64 प्रतिशत था और वह 1929 में 67 प्रतिशत हो गया। ब्रिटिश भारत को भी 1929 में 9 प्रतिशत निर्यात होने लगा।

1929 में जापान का निर्यात 2149 मिलियन येन था और वह 1933 में वह गिरकर 1,147 मिलियन येन रह गया लेकिन 1936 में उसमें पुनः वृद्धि हुई और वह 2,693 मिलियन येन हो गया। आयातों से भी इस तरह के रुझानों का पता लगता है। तैयार औद्योगिक माल का निर्यात 1929 में कुल निर्यात का 44 प्रतिशत तथा 1936 में 59 प्रतिशत तक बढ़ गया। ठीक इसी समय में अर्ध-औद्योगिक उत्पादनों का निर्यात 43 प्रतिशत से कम होकर 27 प्रतिशत रह गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कच्ची रेशम का निर्यात 1929 में 37 प्रतिशत से कम होकर 1936 में 15 प्रतिशत रह गया। कपास से तैयार माल निर्यात में

अपनी हिस्सेदारी को बनाए रख वस्त्रों का निर्यात 13 प्रतिशत से बढ़कर 18 प्रतिशत हो गया। छोटे स्तर के उद्योगों के उत्पादन के निर्यात में वृद्धि हुई। अमेरिका जहा 1929 में कुल निर्यात का 43 प्रतिशत प्राप्त करता था वहीं 1936 में गिरकर वह 22 प्रतिशत रह गया और यह कमी कच्ची रेशम के निर्यात में आई कमी के कारणवश हुई। चीन को 1929 में कुल निर्यात का 25 प्रतिशत किया जाता था और 1936 में 27 प्रतिशत जापान की सामरिक योजनाओं के कारण उसके धातु एवं मशीन निर्यात में भी वृद्धि हुई।

जापान के बढ़ते इस निर्यात का विरोध 1930 के दशक में अन्य देशों के द्वारा किया गया। 1929 में जापान के निर्यात का बड़ा भाग अन्य दूसरे विकसित देशों के उत्पादों के साथ प्रतियोगिता नहीं कर पाया। 1930 के दशक में उसने कच्ची रेशम के स्थान पर तैयार माल का निर्यात करना शुरू कर दिया। सूत से निर्मित कुछ माल ने अन्य दूसरे विकसित राष्ट्रों के निर्यातों को हटा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि अंतर्युद्ध के वर्षों के दौरान ब्रिटिश कपड़ा उद्योग का लगातार पतन हो रहा था और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारत इस क्षेत्र में अपनी जरूरतों के लिए उत्पादन करने लगा था। इस तरह के विश्व व्यापार में मंदी के दौर में सूत से निर्मित सामानों ने जापान के निर्यातों में स्थान ग्रहण किया और इस समय ब्रिटेन का सूती कपड़ा उद्योग भयंकर तौर पर मंदी की चपेट में था।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि जापान ने 1930 के दशक के प्रारंभ एवं मध्य में विश्व व्यापार में होने वाले हिंसात्मक परिवर्तनों में अपने विदेश व्यापार को पर्याप्त सफलतापूर्वक समायोजित किया। अपने बाजारों एवं प्रारंभिक उपभोग वस्तुओं में आई गिरावट की कुछ भरपाई करने के लिए जापान ने नए-नए ग्राहकों तथा वैकल्पिक उपभोग वस्तुओं को प्राप्त किया।

जापानी हितों के लिए उदार स्वतंत्र व्यापार की स्थिति लाभदायक रही होगी। जापान को ऐसे निर्मित सामानों का निर्यात तथा कच्चे माल का आयात करना पड़ सकता था जिनकी वह अब गुणवत्ता को लगातार सुधारना चाहता था। लेकिन विश्व एक ऐसी स्थिति की ओर अग्रसर हो रहा था जहां पर कि स्थापित आपूर्तिकर्ताओं के बीच प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित होने वाला था। यह स्थिति जापान की प्रसारवादी आर्थिक नीतियों के लिए फिट न थी। इस कारण से वह स्थिति पैदा हो गई जिसके अंतर्गत जापान में कुछ राजनीतिक समूहों ने क्षेत्रीय प्रसार की वकालत की जिससे कि जापान को एकाधिकारवादी लाभ प्राप्त हो सकते थे। जापान को अपने व्यापारिक प्रसार के लिए जिन अवरोधों का सामना करना पड़ रहा था उनके कारणवश ही राजनीतिक क्षेत्रों में प्रसारवादी विचारों को ताकत मिलने लगी।

1930 के वर्षों में सैन्यवादियों का दबाव बढ़ने लगा, (देखें इकाई 23) और सेना की मांग भी बढ़ गई। सेना के कुछ भाग अपनी मांगों को मनवाने के लिए सरकारी अधिकारियों को आतंकित करके बाध्य कर रहे थे। ऐसे प्रमुख अधिकारी जिनके विचार सेना से भिन्न थे उनकी सेना के द्वारा हत्या कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ अधिकारी शांत हो गए और कुछ ने सेना की मांगों को मान लिया। हथियार उद्योग या उससे संबंधित शाखाओं में भारी मात्रा में निवेश किया गया।

1930 के दशक में कृषि में मंदी का दौर जारी रहा। कृषि को छोड़कर काफी बड़ी संख्या में श्रमिक उद्योगों में जाने लगे जिसके कारण उद्योगों में मजदूरी में और गिरावट आई। सपूर्ण अर्थव्यवस्था को युद्ध की तैयारी में लगा दिया गया जिससे मंहगाई में वृद्धि हुई। जिस समय 1937 में चीन के साथ युद्ध हुआ उस समय उद्योगों को इसके लिए बाध्य किया गया कि वे युद्ध प्रयासों की पूर्ति के लिए उत्पादन करें। लोगों से यह आशा की गई कि वे युद्ध को जारी रखने के लिए अतिरिक्त समय में भी कार्य करें। खाद्य पदार्थों की आपूर्ति कम थी। आम जनता की कठिनाइयां द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति 1945 तक जारी रही।

बोध प्रश्न 3

1) आप दोहरे ढांचे से क्या समझते हैं? जापान की अर्थव्यवस्था में परंपरागत क्षेत्र की भूमिका की विवेचना कीजिए। उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

2) धन की आपूर्ति पर **जैबात्सू** के नियंत्रण की लगभग 10 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

3) अंतर्युद्ध के वर्षों के दौरान जापान के विदेशी व्यापार की विशेषताओं की सूची लगभग 10 पंक्तियों में बताइए।

24.8 सारांश

इस इकाई में **हमने यह बताया है** कि जापान ने प्रथम विश्व युद्ध के **दौरान अपने आर्थिक** विकास **को कैसे प्रोत्साहित किया** लेकिन आर्थिक उत्कर्ष का यह दौर काफी **लम्बें समय**

तक न चल सका और निश्चय ही कुछ उद्योगों में मंदी आ गई। इस संदर्भ में कृषि क्षेत्र को उद्धृत किया जा सकता है। यद्यपि सरकार ने कृषि में आए ठहराव को समाप्त करने के लिए कुछ प्रयास किए लेकिन उसे सफलता न मिली। चावल दंगे के कारण अपने उपनिवेशों से चावल का आयात करना पड़ा। यद्यपि इस आयात के द्वारा तात्कालिक मूल्यों में होने वाली वृद्धि को रोकने में मदद मिली किंतु इसके दूरगामी परिणाम भी हुए। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के बावजूद जापान उद्योग के कुछ निश्चित क्षेत्रों जैसे कि भारी एवं रसायन उद्योग, सूती कपड़ा उद्योग तथा शक्ति उद्योग में निरंतर वृद्धि होती रही। रेशम उत्पादन में भी सुधार किए गए और यह कृषक परिवारों की आर्थिक आमदनी का एक दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया।

हमने जापान में दोहरे ढांचे की अर्थात् परंपरागत एवं आधुनिक क्षेत्रों के उत्थान एवं निरंतरता का भी विवेचन किया है। **जैबात्सू** ने प्रारंभ में उत्पादन की शक्तियों तथा वित्तीय पूंजी पर अपना नियंत्रण कायम किया। उसकी इन गतिविधियों ने समस्याओं को पैदा किया और जहां एक ओर उनकी आलोचना कृषकों ने की वहीं पर सैन्यवाद के समर्थकों ने भी उनका विरोध किया। विदेश व्यापार भी इस अंतर्युद्ध समय के दौरान फला-फूला। यद्यपि सैनिक प्रसारवादियों ने आक्रामक नीतियों का अनुसरण न केवल विदेशी मामलों में किया बल्कि देश के अंदर भी उन सभी प्रकार के विरोधों का दमन कर दिया जिन्होंने सरकार के कार्यों में सेना के हस्तक्षेप का विरोध किया। इसके बावजूद भी जापान ने आर्थिक क्षेत्र के विकास में उच्चतम बिन्दुओं को प्राप्त किया किंतु गरीब मजदूरों एवं किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ा।

24.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार भाग 24.4 को बनाइए।
2) आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 24.3.1 को बनाते हुए शक्ति निर्माण एवं उत्पादन के बीच संबंध को भी दिखाएं।

बोध प्रश्न 2

1) चावल दंगे का संक्षिप्त में विवरण करें, कृषि क्षेत्र में किए गए सुधारों के साथ चावल के आयात को भी शामिल करें। देखें उपभाग 24.4.2

बोध प्रश्न 3

1) देखें भाग 24.5
2) देखें भाग 24.6
3) देखें भाग 24.7

इकाई 25 दूसरे विश्व युद्ध तक जापानी साम्राज्यवाद

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य
25.1 प्रस्तावना
25.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस
25.3 जापानी प्रसार का ढांचा
25.3.1 प्रारंभिक दौर
25.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य
25.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन
25.3.4 उपनिवेशों से आर्थिक संबंध
25.4 प्रसार की विचारधारा
25.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएं एवं आमूख
25.6 1931 के बाद की प्रसारवादी नीति
25.6.1 मंचूको की स्थापना
25.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना
25.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना
25.6.4 दूसरा विश्व युद्ध
25.7 सारांश
25.8 शब्दावली
28.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको :

- जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य विशेषताओं की जानकारी होगी,
- जापान के द्वारा अपने अनौपचारिक एवं औपचारिक साम्राज्य पर उपयोग किए गए नियंत्रण के प्रसार एवं प्रकृति का ज्ञान होगा,
- सर्व-एशियावाद के उद्देश्यों एवं विचारधारा का ज्ञान होगा, और
- जापानी प्रसारवाद के पीछे सामाजिक एवं राजनीतिक गुटों का ज्ञान भी हो सकेगा।

25.1 प्रस्तावना

19वीं सदी के मध्य में जापान के रूपांतरण के साथ-साथ दूसरे देशों के साथ संबंधों के एक ढांचे का भी निर्माण किया गया। सापेक्ष तौर पर जापान बाकी विश्व से अलग-थलग था और उसने एक "बंद देश" (**साकोकू**) की नीति का अनुसरण किया था। फिर भी इसका अर्थ यह न था कि तोकूगावा जापान का अन्य देशों के साथ संपर्क न था। तोकूगावा जापान ने पश्चिमी देशों के साथ अपने संबंधों को तोड़ लिया था किंतु उसने कोरिया के साथ अपने कूटनीतिक संबंधों को बनाए रखा और समानता के आधार पर चीन के साथ भी अपने संबंधों को स्थापित करने के प्रयास किए। जापान इस अनुभव से उस समय पश्चिमी देशों के साथ सशर्त लाभ उठा सका, जब उन्होंने जापान को कूटनीतिक संबंध स्थापित करने तथा स्वयं को विदेशी व्यापार के लिए खोलने हेतु बाध्य किया।

विश्व के साथ जापान के संबंधों के प्रतिमान का निर्धारण उस पश्चिमी साम्राज्यवाद की पृष्ठभूमि ने किया जिसने संकट की एक भावना को उत्पन्न किया। यह संकट की भावना दासत्व की थी और दासत्व के इस भय ने जापानी शासक तंत्र को राष्ट्र का निर्माण करने के योग्य बनाया। दूसरी ओर इस भय ने उसकी सीमाओं के प्रसार को तर्कसंगत भी बनाया तथा इस प्रसार ने सुरक्षा के हितों या बाजारों पर अधिकार करने या उस कच्चे माल की आपूर्ति को सुनिश्चित किया जो इसके विकास के लिए निर्णायक था। जापान के प्रसार के कारणों की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस नीति का अनुसरण सामंती सैन्यवादी मूल्यों को जारी रखने के लिए किया गया, परंतु कुछ विद्वानों का तर्क है कि इस नीति को पूंजी की कमी के कारण अपनाया गया और जापान के लिए यही एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा वह विकास के लिए आवश्यक संसाधन संग्रहित कर सकता था। लेकिन कुछ अन्य विद्वानों ने जापान की इन प्रसारवादी नीतियों के पीछे राजनीतिक एवं राष्ट्रवादी भावनाओं को देखा है। इस इकाई में जापान की प्रसारवादी नीतियों का विशुद्ध विवरण किया गया है। साम्राज्यवाद के सिद्धांत से बहस को प्रारंभ करते हुए इसके अंदर यह विश्लेषण किया गया है कि जापान क्यों और कैसे एक साम्राज्यवादी शक्ति बन गया। जापान ने जिन साम्राज्यवादी नीतियों को अपनाया और उनका उपनिवेशों पर जो प्रभाव हुआ—इस इकाई में इस दूसरे पक्ष का भी विवरण किया गया है।

25.2 साम्राज्यवाद : परिभाषा एवं बहस

साम्राज्यवाद की प्रकृति का परीक्षण कई विद्वानों के द्वारा किया गया है और जापान की स्थिति पर कुछ लिखने से पूर्व यह काफी उपयोगी होगा कि इन विद्वानों के तर्कों का संक्षेप में विवरण किया जाए। साम्राज्यवादी प्रसार के कारणों पर सबसे अधिक प्रभावशाली तर्क 1902 में जे.हॉब्सन के द्वारा दिये गये। उसका कहना था कि ग्रेट ब्रिटेन जैसे देशों के पास बहुत अधिक औद्योगिक उत्पादन क्षमता तथा ऐसी अतिरिक्त पूंजी थी जिसका निवेश देश के अंदर नहीं किया जा सकता था और इन सभी ने इन देशों को नए क्षेत्रों की तलाश के लिए बाध्य किया। बैंकर्स एवं रोकड़ियों (फाइनेन्सर्स) की आवश्यकता के पीछे ऐसी राजनीतिक नीतियां थीं जिन्होंने नियंत्रण का प्रसार कर साम्राज्यवाद की स्थापना की। इस तर्क की वी. लेनिन ने और सुस्पष्ट व्याख्या करते हुए दिखाया कि साम्राज्यवाद एकाधिकार पूंजीवाद का एक ऐसा चरण है जब घरेलू बाजार में अतिरिक्त पूंजी की खपत नहीं हो पाती और तब पूंजीपति उपनिवेशों पर प्रभाव के उन क्षेत्रों में अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जो राजनीतिक तौर पर संरक्षित बाजार होते हैं।

इन तर्कों पर बहस की गई और इनको संशोधित किया गया। 1953 में गालाघर तथा रोबिंसन ने अपने लेख "मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद" में विकास के तीन चरणों को बताया। प्रथम चरण व्यापारिक साम्राज्यवाद का था जब साम्राज्यवादी देश अपने राजनीतिक प्रभुत्व का उपयोग उपनिवेशों के आर्थिक लाभों को सुरक्षित करने के लिए करता है। तीसरा चरण वही था जिसकी पहचान हॉब्सन ने की। लेकिन दूसरा चरण मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद था और इस चरण में व्यापार पर पूर्णाधिकार ही सबसे महत्वपूर्ण था। इस चरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन हो सकता है। इस काल में चीन तथा दक्षिण अमेरिका में संरक्षित एवं प्रभाव क्षेत्रों की स्थापना की गई। यही वह समय था जबकि साम्राज्य का अधिकतम प्रसार हुआ।

जोसेफ शुम्पीटर तथा दूसरे विद्वानों ने साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए आर्थिक कारणों की अपेक्षा अन्य कारणों पर अधिक बल दिया है। कार्लटन हेज का कथन है कि राष्ट्रों का प्रसार इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ाने की इच्छा की। शुम्पीटर ने तर्क दिया कि पूंजीवाद एक तर्क संगत व्यवस्था है इसलिए प्रसार का पूंजीवाद के साथ कोई संबंध नहीं है बल्कि इसका प्रतिनिधित्व पूंजीवाद से पूर्व की शक्तियों के द्वारा किया गया। प्रसार का समर्थन सैन्यवादियों, भूस्वामी कुलीनों के द्वारा किया गया और इससे स्पष्ट है कि पूंजीवाद अभी भी अविकसित था। शुम्पीटर निश्चित रूप से जर्मनी को अपने मस्तिष्क में रखते हुए इन तर्कों को प्रस्तुत कर रहा था।

जापान के प्रसारवाद की नीति का विश्लेषण विद्वानों द्वारा भिन्न दृष्टिकोणों से किया गया। इस संदर्भ में सबसे अधिक प्रभावशाली मार्क्सवादी विश्लेषण ओ. तानिन तथा ई. योहान के द्वारा प्रस्तुत किया गया। इन दोनों ने कहा कि जापान ने अपने क्षेत्र का प्रथम बार प्रसार 1894 के बाद किया क्योंकि सामुराइ चीन की मुख्य भूमि पर नियंत्रण स्थापित करना और "श्वेत साम्राज्यवाद" के विरूद्ध संघर्ष करना चाहते थे। जापान के पास एक स्वतंत्र प्रसार को जारी रखने की ताकत की कमी थी और इसी कारणवश उसने ब्रिटेन के साथ एक असमान गठबंधन किया। रूस-जापान युद्ध तक जापान अपनी आर्थिक शक्ति को बढ़ाने के लिए "प्रारंभिक पूंजीवादी संचयन" करने के लिए प्रयासरत था और उसका प्रसार "वित्तीय पूंजीवाद" की उपज न था। लेकिन रूस-जापान युद्ध के बाद जापान एक पूंजीवादी समाज अधिक बन गया किंतु उसकी प्रसारवादी नीतियों का सामाजिक आधार सम्राट के अधीन सेना तथा उदित होते पूंजीपति वर्ग के बीच का गठबंधन निरंतर जारी रहा। यह गठबंधन **मेजी पुनर्स्थापन** के साथ मिलकर बना था और मेजी पुनर्स्थापन अधूरी बुर्जुआ क्रांति थी। कृषि में विशेष तौर पर सामंती संबंधों के जारी रहने ने घरेलू अर्थव्यवस्था पर एक दबाव का कार्य किया और जिसके कारण खरीदने की शक्ति बनी रही तथा उद्योगों को विदेशों में बाजार तलाश करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद की मुख्य चिंता व्यापार एवं कच्चा माल थी न कि पूंजी का निर्यात।

मार्क्सवादी परंपरा के अंतर्गत जापानी इतिहासकारों ने इस विश्लेषण का अनुसरण किया। इनोई कियोशी जैसे विद्वानों का कहना है कि मेजी सरकार एक "निरंकुश" सरकार थी। किसी एक वर्ग का राज सत्ता पर आधिपत्य न था और इसलिए नौकरशाही भूस्वामियों तथा उदित होते पूंजीपति वर्ग के एक गठबंधन ने सम्राट व्यवस्था की विचारधारा का उपयोग करके जनता के ऊपर नियंत्रण बनाए रखा। देश के अंदर प्रभुत्व का यह तंत्र इस आधिपत्य को देश के बाहर फैलाने के लिए भी उत्तरदायी था। रूस-जापान युद्ध इतिहास के उस दौर को स्पष्ट तौर पर रेखांकित करता है जबकि जापान ने आधुनिक पूंजीवाद के युग में पदार्पण किया। इस स्थिति में जापान पश्चिमी दबाव की प्रतिक्रिया मात्र नहीं था बल्कि उसका उद्‌भव अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के सहयोगी के रूप में हुआ था। रूस-जापान युद्ध को जापान के द्वारा आंशिक तौर पर पश्चिमी शक्तियों के लिए लड़ा गया जिससे कि और अधिक शोषण के लिए एशिया को खोला जा सके। प्रसारवादी नीतियों का समर्थन सेना के द्वारा किया गया और उसके कारण वह अपना प्रभाव बढ़ाने में सफल हुई। व्यापारिक घरानों या **जैबात्सू** ने भी इस नीति से लाभ उठाया लेकिन वे सदैव ऐसा न कर पाए। डब्ल्यू.जी. बीजली ने इस तर्क का उपयोग करते हुए लिखा "दाई के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष के साथ जापानी साम्राज्यवाद पश्चिमी साम्राज्यवाद की अवैध संतान हो गया।"

मैरियस जानसेन का तर्क है कि 19वीं सदी में साम्राज्यवाद एक सामाजिक मानक था और इसी कारण से इसकी कोई आलोचना नहीं होनी चाहिए। जापानियों ने डार्विन के उन विचारों को स्वीकार किया था जिनके अनुसार जीवित रहने के लिए एक सतत संघर्ष अपरिहार्य प्रक्रिया है और जापान को अपने को जीवित बनाए रखने के लिए अपनी सीमाओं के प्रसार को जारी रखना चाहिए था। अकिरा इरिर्ड ने ऐसे कई कारणों का उल्लेख किया है जो इसके पीछे संवाहक का कार्य कर रहे थे। उसका कहना है कि जापानी साम्राज्यवाद के प्रारंभिक दौर में आर्थिक एवं सैनिक प्रतिबद्धताएं अविभाज्य तौर पर जुड़ी थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापानी उद्योगों की प्रतियोगिता पश्चिमी कंपनियों के साथ होने लगी और जापान के प्रसार में आर्थिक कारण काफी महत्वपूर्ण हो गए। जापान ने अंतर्राष्ट्रीय ढांचे को स्वीकार तो कर लिया परंतु 1929-30 में व्यापार एवं अर्थव्यवस्था में आई रुकावटों के कारण जापान ने पश्चिमी देशों के साथ सहयोग करने के विचार का परित्याग कर दिया। जापान ने यह भय महसूस किया कि उसको बाजार एवं कच्चे माल के स्रोतों से अलग कर दिया जाएगा और उसके लिए अपनी अतिरिक्त जनसंख्या के लिए कोई क्षेत्र न बचेगा। इसी भय ने जापान को सह-संपन्न क्षेत्र को बनाने के लिए बाध्य किया और जिसके कारण उसको युद्ध भी करना पड़ा।

सह-संपन्न क्षेत्र का अध्ययन एफ.सी.जोन्स के द्वारा किया गया और उसका कहना था कि इसके निर्माण का कारण एशियाई एकता की इच्छा के साथ-साथ साम्राज्यवादी नीतियाँ भी

थी। 1920 के दशक में नीतियों के निर्माण में सेना का महत्व कम होने लगा था लेकिन उसने पुनः अपनी ताकत का प्रयोग करते हुए इनके निर्माण में हस्तक्षेप करना शुरू किया और इसको जहां एक ओर विद्यमान सामंती दृष्टिकोणों से मदद मिली वहीं पर इसकी सहायता उस संस्थागत ढांचे ने भी की जिसने सेना को डायट के नियंत्रण के बगैर काम करने दिया। विशेष तौर पर सामाजिक उथल-पुथल औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में हुई और यह भी असंतोष को उत्पन्न करने में निर्णायक थी और इस असंतोष की इच्छा "शोवा पुनर्स्थापन" की थी। इन अभिलाषाओं के कारण नौजवान सैनिक अधिकारियों तथा देशभक्त संस्थाओं ने जापान को प्रसार तथा युद्ध की ओर जाने के लिए, अपने प्रभाव को और व्यापक एवं गहरा किया।

25.3 जापानी प्रसार का ढांचा

जापान की प्रसारवादी नीतियों के कारणों को 16वीं सदी से देखा जा सकता है जबकि हिदेयोशी ने कोरिया को जीतने का प्रयास किया। लेकिन यह मानना उचित होगा कि आधुनिक जापान ने संपत्ति एवं सुरक्षा की तलाश के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक साम्राज्य के निर्माण के प्रयास किए। पश्चिमी देशों के दबाव के अंतर्गत रूपांतरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मेजी शासक तंत्र "धनी देश शक्तिशाली सेना" **(फुकोकू क्यो हेई)** पर आधारित नीति को अपनाने के लिए तर्क देने में सफल हुआ। यही सर्वोच्च लक्ष्य था और अन्य मांगों की या तो अनदेखी कर दी गई या फिर उनका दमन कर दिया गया। राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक व्यवस्था के लिए एक खतरा माना गया और असंतोष को दबाए रखने के उद्देश्य से बड़े प्रतिबंधित ढंग से संसदात्मक प्रणाली को लागू किया गया। राजनीतिक व्यवस्था के वास्तविक स्तम्भ सेना एवं नौकरशाही थे और वे सम्राट के अधीन कार्य करते थे तथा उनको राजनीतिक दबाव से लगभग पूर्णतः अलग रखा गया था। शिक्षा व्यवस्था का उपयोग उन विचारों के प्रचार एवं प्रसार के लिए किया गया जिन्होंने संस्थात्मक तंत्र को उद्देश्यविहीन बनाने का कार्य किया (देखें इकाई 23)। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि राष्ट्र तथा सम्राट के प्रति वफादारी एवं मेजी राजनीतिक दलों को विभिन्न गुटों के हितों का प्रतिनिधि समझा गया और इसी कारण से सेना तथा उग्र राष्ट्रवादियों के द्वारा उन्हें विघटनकारी समझा गया।

पश्चिमी साम्राज्यवाद के भय ने "एशियाई चेतना" को बढ़ावा दिया। इस विचारधारा के प्रतिनिधि विभिन्न पृष्ठभूमियों के लोग थे। सामान्यतः उन्होंने यह तर्क दिया कि पश्चिमी खतरे से जापान स्वयं को एक ही तरीके से सुरक्षित कर सकता था कि वह अन्य ऐसे एशियाई देशों के साथ अपनी एकता को कायम करे जो एक समान सांस्कृतिक परंपरा का हिस्सा थे। इस गठबंधन का तात्पर्य था कि जापान को इन देशों के आधुनिकीकरण तथा विकास में सहायता करनी चाहिए।

25.3.1 प्रारंभिक दौर

जापान की प्रारंभिक प्रसारवादी नीति का मूल तत्व जनता के अधिकारों के उस आंदोलन से जुड़ा था जो जापान में एक लोकतांत्रिक ढांचे की मांग कर रहा था। इसके कुछ समर्थकों ने कोरियाई राष्ट्रवादियों की मांगों का समर्थन करना शुरू कर दिया जबकि दूसरों ने कोरिया पर आक्रमण करने की मांग की। कोरिया पर आक्रमण किया जाए या नहीं इस बहस **(सैकनरॉन)** के पीछे बहुत से उद्देश्य थे। जिस महत्वपूर्ण तर्क को आक्रमण करने के लिए लिया गया वह यह था कि ऐसा करने से बेरोजगार सामुराइयों को रोजगार प्राप्त होगा। अनिवार्य सैनिक भर्ती कानून के कारण सामुराइयों का सैनिक कार्यों पर स्थापित वर्चस्व समाप्त हो जाने से वे बेरोजगार हो गए थे। इसी के साथ एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण यह था कि जापान को आधुनिक विश्व में प्रवेश करने हेतु कोरिया की मदद करने का अधिकार था। जापान द्वारा इस कार्य को एक सहयोगी के तौर पर संपन्न किया जाना था। लेकिन एक नेता के रूप में कार्य करने की जापान की इस स्थिति में धीरे-धीरे बदलाव आया और

अंततः यह एक औपनिवेशिक शक्ति बन गया। जिस प्रक्रिया के द्वारा सर्व-एशियाई विचारों का एशिया की एकता के स्वप्न में रूपांतरण हुआ वह वास्तव में जापान के एशिया पर कायम होने वाले प्रभुत्व में परिवर्तित हो गया। इस विषय पर काफी गर्म बहस हुई। किंतु जापान के विद्वान निश्चय ही इस पर सहमत होंगे कि 1900 तक जापान के सर्व-एशियाई विचारों में प्रसारवाद का अस्तित्व नहीं था किंतु इसके बाद ये विचार सेना जैसे गुटों की जापान की सुरक्षा एवं धन की मांगों को पूरा करने के लिए जापान की क्षेत्रीय प्रसार की नीति का वैचारिक आधार बन गए।

25.3.2 जापान का औपचारिक साम्राज्य

जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, सुखालीन, कुआंकतुंग क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। चीन-जापान युद्ध के बाद 1895 में जापान द्वारा प्राप्त किए जाने वाला ताइवान उसका प्रथम उपनिवेश था। ताइवान ने जापान को केवल उपनिवेशों का प्रबंधन करने के लिए सुअवसर उपलब्ध कराया अपितु चावल एवं चीनी की आपूर्ति भी की। ताइवान बहुत अधिक लाभदायक साबित हुआ और इस पर अधिकार करने के पांच वर्षों के अंदर ही यह उपनिदेश आर्थिक आधार पर आत्मनिर्भर बन गया। रूस-जापान युद्ध के बाद 1905 में काराफूतों पर अधिकार कर लिया गया। इस उपनिवेश में अधिकतर निवासी जापानी एवं देशी **एइनु** थे। कुछ कोरियाई मूल के भी निवासी थे परंतु उनकी संख्या में लगातार कमी आ रही थी। इस उपनिवेश का प्रशासन जापानी प्रशासन के अधिक समीप था। 1907 में इस पर से जापान का शासन समाप्त हो गया और 1943 में यह जापान का एक भाग बन गया।

कोरिया जापान का सबसे महत्वपूर्ण उपनिवेश **(गैशी)** था और इसका अधिग्रहण 1910 में उस संधि के द्वारा किया गया जिसमें कोरियाइ वासियों के साथ समान व्यवहार करने का वचन दिया गया था। कोरियाई जनता जापानियों के दबाव एवं उपस्थिति से दास बनी हुई थी लेकिन उनकी सांस्कृतिक परंपरा शक्तिशाली एवं विरोध करने वाली थी। उन्होंने जापान के साथ विलय करने के जापानी प्रयासों का कड़ा प्रतिरोध किया। इस तरह से जहां एक तरफ नागरिक एवं पुलिस प्रशासन में कोरियाइयों की काफी बड़ी संख्या थी वहीं पर दूसरी ओर कोरिया में स्वतंत्रता के लिए एक शक्तिशाली आंदोलन भी था।

लिया ओतुंग प्रायद्वीप पर स्थित क्वांगतुंग क्षेत्र पर जापान ने 1895 में अधिकार कर लिया। लेकिन तीन देशों के हस्तक्षेप के कारण (त्रि-पक्षीय हस्तक्षेप) यह चीन को वापस प्राप्त हो गया और बाद में इसे लीज पर रूस को दे दिया गया। 1905 में रूस की पराजय के कारण इस क्षेत्र को प्राप्त करने के साथ-साथ उसने दक्षिण मंचूरिया की रेलवे को प्राप्त कर लिया। क्वांगहुंग स्थित जापानी सेना ने मंचूरिया में अपने नियंत्रण का प्रसार करने के लिए इस रेलवे लाइन का प्रयोग किया और 1934 में क्वांगहुंग के गवर्नर जनरल को जापानियों के अधीनस्थ मंजूकुओं राज्य का राजदूत नियुक्त कर दिया गया।

जापान का नियंत्रण एक छोटे से द्वीप समूह माइक्रोनेशिया पर भी हो गया। इस द्वीप समूह पर स्पेन का नियंत्रण था और इन्हें स्पेन से जर्मनी ने खरीद लिया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद इन पर जापान की नौसेना ने अधिकार कर लिया। राष्ट्र संघ ने उनके तीसरे दर्जे का क्षेत्र (C Class Territory) घोषित किया और इसका प्रशासन चलाने की अनुमति जापान को प्रदान कर दी। जापान 1933 में राष्ट्र संघ से अलग हो गया किंतु इन द्वीपों का प्रशासन उसने अपने हाथों में ही रखा। स्थानीय सरदारों के द्वारा यहां की देशी जनता पर शासन किया जाता था और जापानी प्रशासन ने इनको अपने अधीन रखा।

25.3.3 औपनिवेशिक प्रशासन

औपनिवेशिक प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में भिन्न था। कोरिया स्थित प्रशार्मानिक अधिकारियों को उच्च स्थान प्राप्त था। कोरिया का गवर्नर जनरल या तो सेना का सेनापति या फिर नौसेना अध्यक्ष होता था तथा 1919 तक वह अपनी रिपोर्ट सीधे-सीधे सम्राट को भेजता था किंतु इसके बाद से वह अपनी रिपोर्ट प्रधान मंत्री को भेजने लगा। अन्य सभी उपनिवेशों के अधिकारी मंत्रिमंडल के स्तर के अधिकारियों को उपनिवेशों की रिपोर्ट भेजते थे। 1919 के बाद से उपनिवेशों के सभी गवर्नर नागरिक अधिकारियों में से

बने। ऐसा इस कारण से हुआ कि जापान में लोकतांत्रिक विचारों का महत्व बढ़ रहा था और इसी कारण से अब "नागरिक" तथा "सैन्य" कार्यों को अलग-अलग किया जाने लगा था। लेकिन कोरिया इसका अपवाद बना रहा और कोरिया के गवर्नरों को सैनिक अधिकारियों में से ही नियुक्त किया जाता रहा।

जापान के उपनिवेशों का संचालन 1895-1929 तक एक ब्यूरो के द्वारा किया जाता था और यह ब्यूरो प्रधानमंत्री या गृह मंत्री के कार्यालय से जुड़ा था। 1929 में एक औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का गठन किया गया जिससे कि औपनिवेशिक प्रशासन की एकरूपता कायम की जा सके। फिर भी औपनिवेशिक गवर्नरों के पास पर्याप्त शक्ति बनी रही। जिस समय 1934 में मंचूकुओं को बनाया गया तब प्रधानमंत्री कार्यालय में इस उपनिवेश के संचालन के लिए विशेष ब्यूरो का गठन किया गया और यह ब्यूरो क्वांगतुंग क्षेत्र के मामलों की भी देखभाल करता था।

नवम्बर, 1942 में मंचूरियाई ब्यूरो तथा औपनिवेशिक मामलों के मंत्रालय का स्थान ग्रहण करने के लिए वृहत् पूर्वी एशिया मंत्रालय का गठन किया गया। यह मंत्रालय क्वांगतुंग क्षेत्र, मंचुकुओ, प्रशांत महासागर के द्वीपों तथा अन्य अधीनस्थ क्षेत्रों के मामलों की देखभाल करता था। गृह मंत्रालय कोरिया, ताइवान तथा काराफूतो के लिए उत्तरदायी था। अन्य मंत्रियों को भी यह अनुमति प्रदान कर दी गई कि वे भी उपनिवेशों के अन्य मामलों में स्वयं को शामिल करें जिससे मुख्य जापान में उनके एकीकरण को सरल बनाया जा सके।

25.3.4 उपनिवेशों के साथ आर्थिक संबंध

पिछली कुछ इकाइयों में जापान के विदेश व्यापार के विषय में विवरण दिया जा चुका है। जापान के औपनिवेशिक व्यापार का विवरण करने से पहले यह स्पष्ट हो जाएगा कि जापान के लिए उपनिवेशों का कितना महत्व था। मंचूरिया वास्तव में एक उपनिवेश न था और 1910 तक कोरिया भी जापान का एक उपनिवेश न था। लेकिन 1907 के बाद से जापान के प्रमाणों में मंचूरिया के व्यापार को शेष चीन के साथ होने वाले व्यापार से अलग उद्धृत किया जाने लगा। जापान के आयातों का 18 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक 1910 से 1914 के मध्य ताइवान, कोरिया तथा क्वांगतुंग –मंचूरिया के द्वारा उपलब्ध कराया जाता था। मंचूरिया सोयाबीन, मोटा अनाज, कोरिया चावाल एवं ताइवान चावल तथा चीनी का निर्यात करता था। इन सामानों के बदले ये जापानी सूती कपड़ा एवं अन्य उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करते थे। इन क्षेत्रों ने जापान की शहरी आबादी को सस्ता खाना उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

विदेशी निवेश के क्षेत्र में जापान की स्थिति ने इसकी अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तन को भी अभिव्यक्त किया। ब्रिटेन-जापानी गठबंधन के कारण जापान को चीन तथा कोरिया में रेलवे में निवेश करने के लिए विदेशों से ऋण प्राप्त हुआ। जिस समय चीन में बैंकों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के युग का सूत्रपात हुआ तब भी जापान एक महत्वपूर्ण योगदान करने की स्थिति में था यद्यपि इसने अधिक निवेश नहीं किया। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बैंक का सदस्य होने के बावजूद भी जापान ने कुल ऋण का मात्र 1.8 प्रतिशत ऋण प्रदान किया।

दक्षिण मंचूरियाई रेलवे (मंतेत्सू) एक अच्छा उदाहरण है कि जापान सरकार ने निवेश करने को कैसे गारंटी प्रदान की जिससे बैंक विदेशों से धन प्राप्त कर उसे रेलवे निर्माण की ओर मोड़ सके। 1914 में जापान ने जिस रेलवे निर्माण में 55 प्रतिशत पूंजी का निवेश किया उससे उसको 810 करोड़ येन प्राप्त होते थे। इसके अलावा सरकार की सहायता से जापान की वित्तीय कंपनियों ने निवेश करने वाली योजनाओं को शेष चीन में संचालित किया। ये वित्तीय कंपनियां कभी-कभी एक दूसरे के साथ सहयोग करती थीं जैसे 1908 में मितसुई, मितसुबिशी तथा ओकूरा ने संयुक्त रूप से विदेशों को हथियारों की आपूर्ति करने के लिए ताइपिंग कंपनी का गठन किया। हैनीफिंग कोल एवं आयरन कंपनी जापानी निवेश का एक बड़ा क्षेत्र थी। जापान इसको ऋण एवं उधार देता था और इसके बदले वह निश्चित किए गए दामों पर लौह एवं कोयला प्राप्त करता। जापान की सबसे बड़ी स्टील उत्पादक कंपनी यावता को कच्चे एवं खनिज लोहे की सप्लाई हैनीफिंग के द्वारा की जाती थी। अन्य क्षेत्रों में पश्चिमी पूंजी की अपेक्षा जापानी पूंजी ने कम महत्वपूर्ण योगदान किया। उसकी अधिकतर पूंजी वित्त की अपेक्षाकृत वाणिज्य एवं छोटे उद्योग में लगी थी।

1914-1930 के बीच जापान के पास निवेश **करने के लिए** अधिक पूंजी थी और चीनी सरकार को प्रदान किए जाने वाले ऋण में इसने काफी वृद्धि की। मितसुई तथा ओकरा जैसी कंपनियों ने विशाल परियोजनाओं को स्थापित किया और सूती कपड़ा उद्योग का भी विस्तार हुआ। चीन में निवेश किए जाने वाली पूंजी अब पश्चिमी देशों की पूंजी के समक्ष **हो गई थी** और जिसके फलस्वरूप संघर्ष में भी वृद्धि हुई। जापान के हितों का आधार **उसके** आर्थिक हित हो गए और इसी के साथ-साथ 1930 तक चीन में जापानवासियों की संख्या भी 2,70,000 तक पहुंच गई।

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य पर एक टिप्पणी लिखिए। इसका उत्तर लगभग 15 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) औपनिवेशिक प्रशासन की क्या मुख्य विशेषताएं थीं? उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) **उपनिवेशों के साथ जापान के आर्थिक संबंधों की रूपरेखा बताएं।** उत्तर लगभग 10 **पंक्तियों में दें।**

....

....
....
....
....
....
....
....
....
....

25.4 प्रसार की विचारधाराएं

जापानी साम्राज्यवाद को उन विचारधाराओं के द्वारा प्रेरित किया गया जिनको "उग्र राष्ट्रवादी" तथा "फासीवादी" कहा गया। इन विचारों में समानता इस विश्वास में थी कि जापान को विशेष तौर पर पूर्वी एशियाई देशों तथा एशियाई देशों के साथ-साथ अपनी परंपराओं एवं संस्कृति की रक्षा करने की आवश्यकता थी। इस तरह के विचारों का प्रचार भिन्न-भिन्न समयों पर बहुत से राजनीतिक दलों के द्वारा किया गया। इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण दिया जा सकता है–

- सैगो ताकामोरी (इसने 1877 में सतसुमा के विद्रोह का नेतृत्व किया था) के समर्थकों ने **जेनयोशा** (अंधकारमय समुद्र संस्था) का गठन किया। इस संस्था ने प्रसारवादी नीतियों का समर्थन किया और इसी के साथ-साथ इन नीतियों का समर्थन सरकार में बैठे कई नेताओं ने भी किया।
- **कोकूरूकाय** (काले ड्रैगनों की संस्था) की स्थापना 1901 में उशीदारयोह के द्वारा की गई थी। यह भी एक उग्र राष्ट्रवादी संस्था थी। इसने जापान के नेतृत्व में अन्य एशियाई देशों को पश्चिमी शासन से मुक्त कराने की वकालत की। आंतरिक मामलों में इसने नैतिकता एवं परंपराओं को मजबूत करने पर बल दिया।
- प्रथम विश्व युद्ध के बाद **काकू सुकाय** (1919 में गठित जापान की राष्ट्रीय संस्था) तथा **कोकूहोन्शा** (1924 में गठित राष्ट्रीय स्थापना संस्था) महत्वपूर्ण संस्थाएं थीं। इन संस्थाओं का मुख्य लक्ष्य जापान को समाजवाद से बचाना था। कई सैन्य अधिकारी उनके सदस्य थे। जैसा इकाई 23 में बताया गया है कि किता इक्की तथा ओकावा शुमई ने **यूजोन्शा** का गठन किया और इस संगठन ने विदेशों में प्रसारवादी नीति और देश के अंदर सैनिक शासन की वकालत की।

किता इक्की (1883-1937) प्रारंभ में एक समाजवादी था लेकिन बाद में "शोवा पुनर्स्थापन" तथा प्रत्यक्ष साम्राज्यिक शासन को स्थापित करने के प्रयास हेतु वह सेना के बहुत से देशभक्त अधिकारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। 1919 में उसने जापान के पुनर्निर्माण की योजना की एक रूपरेखा के नाम से एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने विदेशी संबंधों के साथ-साथ आंतरिक नीतियों से जुड़ी योजनाओं को प्रस्तुत किया। किता का कहना था कि जापान को ब्रिटेन एवं रूस के विरुद्ध एशिया का नेतृत्व करना चाहिए क्योंकि उन दोनों देशों का एशिया के एक बड़े भू-भाग पर अधिकार था। जापान स्वयं को सुधारने के बाद चीन एवं भारत सहित दूसरे एशियाई देशों के परिसंघ का नेतृत्व कर सकता था। किता इक्की के आंतरिक सुधार जापान के औद्योगिक विकास पर आधारित थे लेकिन यह एक ऐसा औद्योगिक विकास होना था जिसमें पूंजीपतियों की शक्ति पर नियंत्रण होगा। उसने सैनिक विद्रोह के द्वारा राजसत्ता को बदलने की भी वकालत की जिससे मेजी पुनर्स्थापन के वास्तविक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

कुछ ऐसे प्रसारवादी भी थे जिनकी परिकल्पना जापान के कृषि विकास पर आधारित थी। और इसकी प्रेरणा उन्होंने जापान के विकसित कृषि अतीत से प्राप्त की थी। लेकिन दोनों ही प्रवृत्तियों ने जापान की दलगत राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उन आर्थिक समस्याओं की जिनका विशेष तौर पर जापान के ग्रामीण क्षेत्रों ने सामना किया-कटु आलोचना की। 1930 के दशक के प्रारंभ में ही डायट नौकरशाही एवं व्यवसायिक नेताओं के विरुद्ध एक माहौल सा बन गया और इस व्यवस्था में परिवर्तन करने की मांग की जाने लगी। ठीक उसी तरह से जैसे कि मेजी पुनर्स्थापन ने जापान को एक नवीन दिशा तथा रूपांतरण का क्रांतिकारी कार्यक्रम प्रदान किया था, वैसे ही प्रसारवादियों ने यह महसूस किया कि अब जापान को समय की मांग को पूरा करने के लिए एक "शोवा पुनर्स्थापन" की आवश्यकता थी।

कोनोई फूमियारो 1918 में प्रधान मंत्री रह चुका था और उसका पश्चिमी देशों के साथ मोह भंग हो गया था। उसने 1938 में एक ऐसी नई व्यवस्था की घोषणा की जिसके द्वारा जापान एक ऐसी स्थिति को बदलने का प्रयास करेगा जिसके अंतर्गत जापान को समान अवसरों के लिए नकार दिया गया था। उसने लिखा कि जापान को आत्म-संरक्षण के लिए यथास्थिति को समाप्त करना होगा। सेना के अंदर देशभक्त संस्थाओं ने भी इन प्रश्नों पर बहस की और स्थिति को बदलने के लिए योजना बनाई। मुख्य गुटों को साम्राज्यिक गुट **(कोदो हा)** तथा नियंत्रण गुट **(तोसेई हा)** के नाम से जाना जाता था (देखें इकाई 23)।

साम्राज्यिक गुट का नेतृत्व अराकी सदाओ के द्वारा किया गया तथा उसने सम्राट के महत्व, चीन के साथ सहयोग तथा रूस के विरुद्ध युद्ध पर बल दिया। सहयोग का तात्पर्य निश्चय ही जापान के अधीन दिशा निर्देशन से ही था। साम्राज्यिक गुट ने सर्व-एशियाई सिद्धांत के अनुरूप ढांचे की वकालत भी की। नियंत्रण गुट का वर्चस्व 1936 के बाद स्थापित हुआ और इस गुट का नेतृत्व नागाता तेत्सुजान तथा तोजे हिदेकी के द्वारा किया गया। इस गुट का तर्क था कि आने वाले युद्ध हेतु जापान को गतिशील किया जाए। इसका यह तात्पर्य था कि अर्थव्यवस्था एवं जनता को तैयार किया जाए तथा क्षेत्र का भी प्रसार हो जिससे कि चुनौती का सामना किया जा सके। इसकी योजनाओं तथा विचारों के निर्माण में इशिवारा कंजी ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

इशिवारा का तर्क था कि जापान को निश्चित तौर पर पहले रूस के, फिर ब्रिटेन के और बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्धों की शृंखला को लड़ने की तैयारी करनी चाहिए। जापान एशिया का सर्वोच्च कमांडर होगा। इस भूमिका को प्रभावशाली ढंग से निभाने के लिए केवल एकता पर्याप्त न होगी बल्कि जापान को पूर्णतः युद्ध की तैयारी में व्यस्त हो जाना चाहिए। उसने कहा कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को जापान की सुरक्षा के लि एकीकृत किया जाना चाहिए और उसके लिए सेना की भूमिका राष्ट्रीय नीति को गतिशील बनाने वाली होगी।

25.5 औपनिवेशिक नीति : मान्यताएं एवं आमूख

जापान की औपनिवेशिक नीति का निर्धारण इस मान्यता पर आधारित था कि जहां एक ओर उसके अंदर यूरोपीय औपनिवेशिक विचारों के साथ समानता थी वहां दूसरी ओर भिन्नताएं भी थीं। जापान ने ऐसी किसी सुस्पष्ट नीति का प्रारंभ नहीं किया था कि उसको अपने उपनिवेशों के प्रति किस नीति का अनुसरण करना चाहिए था। वास्तव में उसके उपनिवेशवादी विचारों का विकास समय के साथ हुआ। यूरोपीय विचार के साथ उनकी यह मान्यता समान थी कि भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षमताएं होती हैं और ये पैतृक गुण है।

यूरोपीय शक्तियों का बहुत अलग सांस्कृतिक क्षेत्रों पर नियंत्रण था और इस तरह के विचारों का विकास उनके शासन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। जापानियों ने भी औपनिवेशीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जिसके द्वारा वे

अपने उन पड़ोसियों को सभ्य बना देंगे जो उनके समक्ष विकसित न हो सके थे। इस तर्कसंगत अनुदार तथा पैतृक विचार का नितोबे इनाजो तथा गोतो शिम्पई जैसे बुद्धिजीवियों एवं प्रशासकों द्वारा स्वीकृत एवं प्रचारित किया गया।

फिर भी, जापानी औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रसार ऐसे लोगों के बीच हुआ जिनके साथ उनकी सांस्कृतिक एवं प्रजातीय समानता थी और यह ताइवान एवं कोरिया के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय था। इसी कारण से यह विचार पैदा हुआ कि इन देशों का जापान के साथ एकीकरण कर दिया जाएगा। एकीकरणवादी विचार ने इन देशों में समग्र सांस्कृतिक धरोहर विशेषकर कन्फ्यूशियसवादी मूल्यों पर जोर दिया। जापानी जनता तथा साम्राज्यिक परिवार के बीच के इस कोप कल्पित संपर्क का उन दूसरे लोगों को शामिल करने के लिए प्रसार किया गया जो इस तरह से "साम्राज्यिक जनता" बन गए थे। इस तरह के विचार कई बार सतही एवं विरोधाभास से पूर्ण होते थे, जिसके कारण इनका उपयोग कई तरह की स्थितियों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए किया गया। उन्होंने अपनी भरपूर कोशिश के साथ उन नीतियों को प्रोत्साहित किया जिनसे कानून एवं संस्थाओं का प्रसार करके उपनिवेशों को जापान के साथ एकताबद्ध करने का प्रयास किया गया। इन जापानी नीतियों के द्वारा इन उपनिवेशों की जनता को जापानी भाषा को सीखने तथा जापानी तरह के रहन-सहन एवं पहनावे को अपनाने के लिए बाध्य किया गया। जापानी उपनिवेशवाद की उदार नीतियों का प्रतिनिधित्व हारा ताकेशी के द्वारा किया गया और हारा ताकेशी ने प्रधान मंत्री के रूप में एकीकरण को शिक्षा एवं नागरिक स्वतंत्रताओं के प्रसार के माध्यम से प्राप्त करने की वकालत की। उसने कहा कि अधिकतर कोरियाई स्वतंत्रता को नहीं अपितु जापानियों के साथ समानता को चाहते थे।

1930 के दशक में इस क्रमिक एकीकरण नीति को एक कठोर नीति में रूपांतरित कर दिया गया और इस नीति के अंतर्गत इन उपनिवेशों की जनता को जापानी प्रभुत्व के अधीन करने का प्रयास किया गया। इस नीति के द्वारा इस तरह के अनुबंधों पर बल दिया गया जिससे कि वे स्वयं को जापान का ऋणी समझें। इसकी अभिव्यक्ति उस भाषा से भी हुई जिसमें जापान के अधिपत्य के लिए "आतंरिक क्षेत्र" तथा "बाहय क्षेत्र" जैसे शब्दों का प्रयोग भाषा में किया गया। इस वर्गीकरण के अंदर राष्ट्रीय पहचान को बहुत कम महत्व दिया गया था और जापान ने अपने उस अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखा जिसके अनुसार वह इन अधीनस्थ देशों पर एक श्रेष्ठ जाति की तरह शासन करता था।

25.6 1931 के बाद की प्रसारवाद नीति

इकाई 23 में हम देख चुके हैं कि सैन्यवादियों ने किस तरह से जापान में सरकार पर अपना अधिकार कर लिया था। 1930 के बाद से तथा द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक देश की नीतियों के निर्धारण की प्रक्रिया में सेना ने निर्णायक भूमिका अदा की। सेना इस बात से सहमत थी कि जापान ने चीन के प्रति जिस "उदार" नीति का अनुसरण किया वह उस देश में जापान के आर्थिक हितों के लिए खतरनाक थी। जापान लगातार यह महसूस कर रहा था कि पश्चिमी ताकतें जापान की प्रगति को चीन में रोकना चाहती थीं और वे उसके साथ सहयोग नहीं कर रही थीं। वास्तव में जापान का अमेरिका के साथ मोह भंग हो गया था क्योंकि उसने 1924 में निष्कासन कानून को स्वीकार कर लिया था और महान आर्थिक मंदी के बाद उसने अधिक कर लगाने की नीति का भी अनुसरण किया। ब्रिटेन ने भी चीन में "जापान के हितों" का विरोध किया। अब जापानी नेताओं को यह स्पष्ट हो चुका था कि पश्चिमी ताकतों के साथ सहयोग करने के बजाय एशियाई जमीन पर अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं प्रसारित करके, अधिक लाभ प्राप्त कर सकता था।

देश के अंदर बढ़ता असंतोष आर्थिक राजनीतिक दोनों प्रकार के संकटों का परिणाम था। इसी कारण इस समय यह महसूस किया गया कि संपन्नता की आशाओं को विदेशी प्रसार के माध्यम से पूरा किया जाए।

25.6.2 मंचूको की स्थापना

चीन में विशेषकर मंचूरिया में जापान के आर्थिक हित बढ़ते जा रहे थे और इसी कारण से यहां पर जापानी हितों तथा रेलवे मार्गों को सुरिक्षत रखने के लिए क्वांगतुंग सेना को रखा गया। यह भी महसूस किया गया कि मंचूरिया में जापान की विशेष स्थिति को प्राप्त करने तथा बनाए रखने के लिए आक्रामक नीति का अनुसरण करना अपरिहार्य था। अन्य लोगों के द्वारा इस विचार को स्वीकृत किया गया।

18 सितम्बर, 1931 को क्वांगतुंग सेना के अधिकारियों ने दक्षिणी मंचूरिया को रौंद डाला। इस कार्यवाही के लिए बहाना यह बनाया गया कि समीप रेलवे लाइन मे एक विस्फोट से जापानी रेलवे लाइन मामूली तौर पर क्षतिग्रस्त हो गई। क्वांगतुंग सेना इस तरह के अवसर की खोज में काफी दिनों से लगी थी किंतु टोकियो सरकार ने उसे ऐसा करने से रोके रखा था। क्वांगतुंग सेना को मंचूरिया में कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने मंचूरिया में चीन से स्वतंत्र एक कठपुतली सरकार की स्थापना की। मांचू साम्रॉज्य के अंतिम भूतपूर्व सम्राट पू यी को इस स्वतंत्र राज्य का मुखिया बना दिया गया एवं अब इसको मंचूको राज्य कहा जाने लगा। अब जापानी सरकार को एक निर्विवाद तथ्य का सामना करना पड़ा और अंततः मंत्रिमंडल को मंचूरिया में कठपुतली सरकार की स्थापना का अनुमोदन करना पड़ा।

25.6.2 चीन में आक्रमण का जारी रहना

मंचूरिया में आक्रमण की गतिविधियों के कारण जापान की विश्व समुदाय के द्वारा कड़ी आलोचना की गई और परिणामस्वरूप उसने स्वयं को राष्ट्र संघ से अलग कर लिया। उसकी इस कार्यवाही से यह स्पष्ट हो गया कि वह पश्चिमी देशों से भिन्न प्रकार से कार्य करेगा।

लेकिन पश्चिमी देशों ने जापानी आक्रमण के विरुद्ध चीन की कोई सहायता नहीं की और जापान ने शीघ्र मंचूरिया में विजय प्राप्त कर 1933 में चीन के उत्तरी प्रांतों में अपनी सैनिक कार्यवाही को और तेज कर दिया तथा जैहोल को मंचूको में शामिल कर लिया गया।

जापान अंतरालों में चीन में आगे बढ़ता ही चला गया। उसने विशेषकर उत्तर के उन प्रांतों की राजनीति में हस्तक्षेप किया और उन राजनीतिक आंदोलनों का समर्थन किया जो जापान के संरक्षण में राजनतिक "स्वायत्तता" को प्राप्त करने की इच्छा रखते थे।

लेकिन चीन के अंदर जापान का चीनी जनता द्वारा विरोध लगातार बढ़ता गया और यह विरोध उस समय और भी शक्तिशाली हो गया जबकि 1936 में च्यांग काई शेक तथा साम्यवादियों के बीच जापान के विरुद्ध समझौता हो गया।

जापान के सैन्यवादी नेता इस बात से पूर्णतः सहमत थे कि चीन पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने के लिए एक व्यापक स्तर का युद्ध अपरिहार्य था। सेना पर ऐसे लोगों का वर्चस्व कायम था जो मुख्य भूमि पर जापान के प्रसारवाद में विश्वास करते थे। इसके साथ-साथ जापान की चीन में होने वाली सैनिक कार्यवाही के पीछे यह भी समझ थी कि यदि चीन के अंदर सेना किसी तरह की विशेष उपलब्धि प्राप्त कर लेती है और जनता को उनसे यह आशा थी भी। तब देश के अंदर बढ़ते राजनीतिक असंतोष को शांत किया जा सकता था।

7 जुलाई, 1937 को जापानी एवं चीनी सेना के बीच मार्को पोलो पुल के पास लड़ाई छिड़ गई और शीघ्र ही यह लड़ाई दोनों देशों के बीच एक व्यापक युद्ध में बदल गयी। अगस्त तक पेकिंग तथा त्येनसिन पर जापान का अधिकार हो गया। दोनों के बीच युद्ध बढ़ता चला

गया और जापानी सेनाओं ने च्यांग काई शेक की राजधानी नानकिंग पर दिसम्बर, 1937 में अधिकार कर लिया। जापानी सेना ने बड़े स्तर पर हत्याएं कीं, लूट तथा बलात्कार कि और 12000 चीनी नागरिकों की हत्या कर दी गई।

1938 तक जापानी सेना ने हांको (नानकिंग के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को हां को ले गया था) एवं कैंटन पर अधिकार कर लिया। हांको के पतन के बाद च्यांग अपनी राजधानी को चुंगकिंग ले गया।

1938 तक जापानी सेना ने बहुत से बड़े नगरों तथा कई रेलवे मार्गों पर अधिकार कर लिया लेकिन अभी तक भी इसने अपनी राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ न किया था। जापानी सेना को चीन के छापामार सैनिकों के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। चीन में अपनी उपलब्धियों को बनाए रखने तथा छापामारों से युद्ध करने में जापान पर आर्थिक तौर पर काफी दबाव बढ़ा।

जापान धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के चक्रों में फंसता चला गया, जिसके कारण जहां देश के अंदर उग्र राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला वहीं विश्व स्तर पर इसका अलगाव हुआ औ अंततः अमेरिका के साथ इसका युद्ध हो गया।

25.6.3 जापान का धुरी शक्तियों के साथ शामिल होना

1939 में यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध का प्रारंभ हो चुका था। 1940 में फ्रांस में नीदरलैंड पर जर्मनी का नियंत्रण कायम हो जाने से जापान ने धुरी राष्ट्रों (जर्मनी एवं इटली) की विजय को सुनिश्चित मान लिया। 1940 में जापान ने जर्मनी एवं इटली के साथ इस घोषणा सहित यह त्रि-पक्षीय समझौता किया कि वह पश्चिमी देशों का विरोध करेगा। 1941 में जापान ने सोवियत संघ के साथ आक्रमण न करने की संधि पर हस्ताक्षर किए। इस तरह से जापान ने चीन में स्थित अपनी उत्तरी सीमाओं की सुरक्षा को सुनिश्चित कर लिया और अब वह दक्षिण की ओर फ्रांसीसी, डच एवं अग्रेजों के उपनिवेशों की ओर उन्मुक्त तरीके से अग्रसर हो सकता था।

जापान की प्रसारवादी नीतियों को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत असंतुष्ट था। 1940 में जापान-अमेरिकी व्यापार संधि को समाप्त होने दिया गया। त्रिपक्षीय संधि हो जाने के बाद जापान 1941 मे इंडो-चीन की ओर बढ़ा। अमेरिका, ब्रिटेन तथा हालैंड ने जापान क होने वाले निर्यातों पर पूर्ण नियंत्रण लागू कर दिया। इस निर्णय के कारण जापान को तेल एवं रबर की आपूर्ति पर विकट प्रभाव पड़ा। अमेरिका ने जापान को निर्यात किए जाने वा सामरिक महत्व के सामानों पर भी प्रतिबंध लगा दिया क्योंकि इन सामानों पर जापान के युद्ध एवं भार उद्योग निर्भर करते थे। ये सामान लोहा एवं तेल थे।

पश्चिमी राष्ट्रों ने जिन प्रतिबंधों को लागू किया था उनसे निकलना सेना के लिए आवश्य था। 1841 में जापान एवं अमेरिका के बीच बातचीत हुई लेकिन इस बातचीत में गतिरोध बना रहा क्योंकि कोई भी पक्ष समझौता करने के पक्ष में न था। अमेरिका ने मांग की कि जापान को न केवल इंडो-चीन क्षेत्र को खाली करना चाहिए अपितु वह चीन से भी हट जाए। लेकिन जापान भी इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था कि अमेरिका तेल की आपूर्ति पर से प्रतिबंध उठाए। सुदूर पूर्व में जापान के आधिपत्य को मान्यता प्रदान करे और च्यांग काइ शेक को अपना समर्थन देना बंद करे।

जापानी सैन्य अधिकारी इस बात से सहमत थे कि अंततः अमेरिका के साथ युद्ध होना अपरिहार्य था और इस दिशा में अब योजना बनाई जाए। युद्ध को अपरिहार्य मानकर अक्तूबर 1941 में तोजो हिदेकी को जापान का प्रधान मंत्री बनाया गया। जापान ने चीन को छोड़ने के स्थान पर युद्ध के विकल्प को अपनाना बेहतर समझा। अब युद्ध जापान के लिए मात्र शक्ति प्रदर्शन का स्रोत ही नहीं बल्कि आर्थिक अनिवार्यता भी बन चुका था।

इस समय तक जापान ने संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया को एक बृहत् पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र में परिवर्तित करने की योजना भी तैयार कर ली। इस योजना में दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया दोनों को शामिल किया गया। धुरी राष्ट्रों में शामिल होने के बाद जापान अपनी योजना को लागू करने के लिए पूरा उत्सुक था।

25.6.5 द्वितीय विश्व युद्ध

युद्ध को टालने के लिए अंतिम प्रयास किए गए। जापान ने अपने आक्रमण को रोकने के लिए अमेरिका से यह मांग की कि वह चीन से हट जाए और उसे विशाल आर्थिक छूटें प्रदान करें। अमेरिका ने उसकी मांगों को मानने से इंकार कर दिया और। दिसम्बर, 1941 को नागरिक एवं सेवाओं के नेताओं के जापानी साम्राज्यिक सम्मेलन ने अमेरिका पर युद्ध की घोषणा कर दी। 7 दिसम्बर, 1941 को जापान ने पर्ल हार्बर में आश्चर्यचकित आक्रमण कर उस पर विजय प्राप्त कर ली। जापान ने फिलीपीन्स को रौंद डाला और हांगकांग, सिंगापुर तथा इंडोनेशिया पर अधिकार कर लिया। जापानी सेनाएं बर्मा पहुंची और इस पर अधिकार कर लिया तथा जापान भारत पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। 1942 के मध्य तक जापान ने रंगून से प्रशांत महासागर के बीच तक तथा तिमोर से मंगोलिया की मरुभूमि को अपने नियंत्रण में ले लिया था।

इस प्रशांत महासागर के युद्ध में 1945 तक जापान को माल, जान तथा धन का अपार नुकसान हुआ। पर्ल हार्बर की पराजय के बाद अमेरिका ने जापान को कुचल देने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

जनवरी 1943 में मित्र राष्ट्रों के नेतागणों ने कासा ब्लांका में बैठक की और जापान के विरुद्ध अपने प्रयासों को और अधिक मजबूत करने का निर्णय किया। जापान ने शीघ्र ही गिलबर्ट एवं मार्शल द्वीपों में कई सामरिक महत्व के बिंदुओं को खो दिया। मित्र राष्ट्रों ने जापान के विरुद्ध दो शक्तिशाली सैनिक कमानों को लगाया और एक ने जून में मैरियाना में सैयान पर अधिकार कर लिया और मार्च, 1945 में जिमा पर। दूसरी ने फरवरी 1945 में फिलीपीन्स पर अधिकार किया। यहां से दोनों कमानों ने संयुक्त तौर पर जापान के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की और अब उनका लक्ष्य ओकीनावा था, जिस पर उन्होंने जून, 1945 में नियंत्रण कर लिया।

मित्र सेनाओं ने जापान के दरवाजे पर दस्तक दी और वे ऐसे क्षेत्र में पहुंच गए जहां से जापान पर बमबारी की जा सकती थी। 1944 से मित्र सेनाएं लगातार जापान पर बमबारी कर रही थी और जिनके कारण अनेक जापानी नगरों पर बमबारी की गई और हजारों नागरिक मारे गए तथा अरबों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ।

26 जुलाई, 1945 की पौट्सडेम घोषणा के अनुसार जापान को बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण करने की घोषणा की गई और इसके उपरांत उसकी सेना पर अधिकार, उसका असैन्यीकरण और उसको अपने क्षेत्र को खाली करने का प्रावधान था। 6 और 9 अगस्त को नागासाकी तथा हिरोशिमा पर एटम बमों को गिरा दिया गया और जापान ने अपनी हार को स्वीकार करते हुए 15 अगस्त, 1945 को आत्मसमर्पण कर दिया।

बोध प्रश्न 2

1) प्रसार की विभिन्न विचारधाराओं की लगभग 15 पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) औपनिवेशिक नीति के ''एकीकरण संबंधी विचार'' की व्याख्या लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) मंचूको की स्थापना पर लगभग पांच पंक्तियों में एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

....

25.7 सारांश

जापानी साम्राज्यवाद का उत्थान पश्चिमी प्रसार एवं संघर्ष के दौर में हुआ। जापान को पश्चिमी देशों के समक्ष समानता के आधार को स्थापित करने के लिए दोहरे कार्यों को पूरा करना पड़ा। प्रथम उसने असमान संधि व्यवस्था को समाप्त किया और ठीक उसी समय उसने अपने नियंत्रण एवं प्रभुत्व का प्रसार कर इस कार्य को कार्यान्वित किया। पश्चिमी राष्ट्रों ने जापान के सम्मुख चुनौती प्रस्तुत की थी, जापानी नेतृत्व उसके प्रति भलीभांति सजग था और इसके बदले में उसका यह विश्वास था कि जापान की संपन्नता के लिए उसका चीन के बाजारों एवं संसाधनों पर नियंत्रण करना अपरिहार्य था। जापान के चीन में जो हित थे उनके कारण उसका ब्रिटेन एवं अमेरिका के साथ संघर्ष हुआ लेकिन जापान ने भी इन दोनों देशों के साथ अपने व्यापारिक एवं सामाजिक संबंधों को बनाए रखा। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जापान एवं रूस के हित भी एक समान थे परंतु उनमें इनके लिए संघर्ष हुआ। जापानी नीति निर्माता समय-समय पर अपनी नीतियों की मूलभूत भावना

के विषय में भिन्न-भिन्न मत रखते थे। जापान ने प्रारंभ में ब्रिटेन के साथ गठबंधन किया और वह मुक्त द्वार (Open Door) की नीति में शामिल हो गया। लेकिन 1905 के बाद उसने मंचूरिया में अपने स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र की स्थापना के लिए प्रयास करने शुरू कर दिए। इसके औचित्य को कोरिया की सुरक्षा के नाम पर उचित ठहराया गया तथा कोरिया के अधिग्रहण को जापान की सुरक्षा की आवश्यकताओं के लिए सही बताया गया। तब जापान ने चीन में अपने विशेषाधिकारों में वृद्धि एवं प्रसार किया। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी विचारक थे जिन्होंने पश्चिम की घुसपैठ के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए चीन तथा जापान के सहयोग की बात की। ऐसा करने के लिए जापान को चीन के बाजारों एवं संसाधनों की आवश्यकता थी।

इस तरह से जापानी साम्राज्यवाद किसी एक लक्ष्य से प्रेरित न होकर दो तत्वों पर आधारित था :

i) जापान के उपनिवेशों का एक ऐसा औपचारिक साम्राज्य था, जिनसे उसको खाद्य संसाधन एवं सामरिक लाभ प्राप्त होता था।

ii) जापान उस अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का एक सदस्य था, जिसने उसको चीन में संधि करने के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को प्रदान किया। इन विशेषाधिकारों का प्रसार उसकी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की प्रगति के साथ हुआ। ये लाभ जापान के आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थान एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण थे।

1929 की आर्थिक मंदी के कारण व्यापार में हुए पतन से इस व्यवस्था में गंभीर व्यवधान आ गया और जापान को अपने हितों की सुरक्षा के लिए गतिशील होना पड़ा। इसके द्वारा न केवल सामरिक हितों की रक्षा करना आवश्यक समझा गया बल्कि उन बाजारों एवं क्षेत्रों की सुरक्षा करनी आवश्यक थी जहां से जापान को कच्चा माल एवं संसाधन उपलब्ध होते थे। इस नीति को कार्य रूप देने की जरूरत के कारणवश अंततः वृहत् पूर्वी एशिया सह-संपन्न क्षेत्र का निर्माण हुआ। इस क्षेत्र में जापान, कोरिया, मंचूको, उत्तरी चीन तथा ताइवान आंतरिक औद्योगिक क्षेत्र का निर्माण करते थे जबकि दक्षिण पूर्वी एशिया तथा प्रशांत महासागर के द्वीप समूह एवं चीन का शेष भाग संसाधनों की आपूर्ति के लक्ष्य को पूरा करने वाले थे। जापानी साम्राज्यवाद ने जापान के लिए एक प्रभाव क्षेत्र की स्थापना की।

जापानियों ने पश्चिमीवाद के विरोध की भावना का उपयोग किया और सावधानीपूर्वक औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों की एशिया मे सहायता की। जापानियों ने फ्रांसीसियों, डचों तथा अंग्रेजों को इस क्षेत्र से बाहर करने में मदद की। चीन में जापान की कार्यवाहियों के कारण चीनी साम्यवादियों की स्थिति मजबूत हुई। युद्ध की समाप्ति पर ताइवान एवं मंचूरिया का चीन में विलय कर दिया गया जबकि 1950 के युद्ध द्वारा कोरिया का विभाजन हो गया। जापानियों का ''सभ्य करने का लक्ष्य'' संक्षिप्त एवं असफल साबित हुआ। जापान और इस क्षेत्र के देशों के बीच स्थापित कड़वाहट अब भी इस तथ्य का जीवित दृष्टांत है। यह भी एक वास्तविकता है कि दक्षिण कोरिया एवं ताइवान एक समय में जापान के उपनिवेश थे और आज वे सफलतम औद्योगिक देश हैं। और मंचूरिया चीन के भारी उद्योगों का एक बड़ा केंद्र है।

25.8 शब्दावली

सह-संपन्न क्षेत्र : इस शब्द का प्रयोग जापान के द्वारा पश्चिमी शक्तियों के आर्थिक हितों के विरुद्ध एशियाई देशों को जोड़ने के लिए किया गया। यद्यपि बाद में इसका प्रयोग जापान ने स्वयं अपने हितों के लिए किया।

शोवा पुनर्स्थापना : 1926 में शोवा जापान के सम्राट हो गए। उग्र राष्ट्रवादियों तथा सेना के नौजवान अधिकारियों ने अपने विचारों को कार्यरूप देने के लिए शोवा पुनर्स्थापना की वकालत की।

माइक्रोनेशिया : प्रशांत महासागर के द्वीप।

अंतर्राष्ट्रीय बैंकिंग सहयोग : बहुत से बैंकों का गठबंधन।

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) जापान के औपचारिक साम्राज्य में ताइवान, कोरिया, सखालिन, क्वांगतुंग के क्षेत्र तथा प्रशांत महासागर के द्वीप शामिल थे। आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 25.3.2 को बनाएं।

2) औपनिवेशि के प्रशासन एक उपनिवेश से दूसरे में भिन्न था किंतु कोरिया को सर्वोच्च दर्जा प्राप्त था। आप अपने उत्तर में गृह मंत्रालय से जुड़े ब्यूरो की भूमिका को भी शामिल करें। देखें उपभाग 25.3.3

3) देखें उपभाग 25.3.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 25.4

2) आप अपने उत्तर का आधार भाग 25.5 को बनाएं।

3) आपका उत्तर उपभाग 25.6.1 पर आधारित होना चाहिए।

इकाई 26 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् का जापान

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 पृष्ठभूमि
26.3 मित्र राष्ट्रों का कब्जा
   26.3.1 राजनीतिक निहितार्थ
   26.3.2 आर्थिक निहितार्थ
   26.3.3 कब्जे पर जापान की प्रतिक्रियाएं
26.4 उच्च वृद्धि का काल (1552-73)
   26.4.1 राजनीतिक घटनाक्रम
   26.4.2 आर्थिक वृद्धि
26.5 तेल आघात और उसके पश्चात् की स्थितियां
26.6 सारांश
26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान में होने वाले आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रम के विषय में चर्चा की गयी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न बातों को समझ सकेंगे:

- युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों के जापान पर कब्जे का स्वरूप,
- जापान के तेज आर्थिक विकास के कारण,
- युद्ध पश्चात् की राजनीतिक व्यवस्था और उदारवादी प्रजातांत्रिक दल (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी) का प्रभुत्व, और
- जापान के विदेश संबंधों का आधार और अमेरिकी गठबंधन का महत्व।

26.1 प्रस्तावना

जापान ने 14 अगस्त, 1943 को मित्र शक्तियों के आगे घुटने टेक दिये और दो सप्ताहों में मित्र सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति (जिसे स्कैप के नाम से जाना जाता था। SCAP से अभिप्राय था Supreme Commandar of the Allied Porces) जनरल डगलस मैक आर्थर, ने जापान पहुंच कर उसके कब्जे का काम शुरू कर दिया। यह कब्जे की कार्यवाही अप्रैल 1952 में सान फ्रांसिस्को संधि के प्रभावी होने तक चली। लेकिन कब्जा करने वाली प्रभुत्वशाली शक्ति अमेरिका ही रहा। उसी ने जापान की राजनीतिक और आर्थिक नीतियों का निर्धारण किया। जनरल आर्थर के माध्यम से जापान को सुधारने और उसे फिर एक प्रसारवादी ताकत बनने से रोकने के लिये कुछ उपाय किये गये। इस इकाई में न केवल जापान के समर्पण, बल्कि इस पर मित्र सेनाओं के कब्जे से संबंधी विभिन्न मसलों पर भी गौर किया गया है। जापान की प्रतिक्रिया का भी विवेचन किया गया है। जापान के आर्थिक

विकास का आकलन करने के लिये हमने अपने विषय से आगे के काल को भी ले लिया है। ऐसा हमने इस उद्देश्य से किया है जिससे उच्च आर्थिक वृद्धि के काल (1952-73) पर हमारे विषय के काल के प्रभाव को और उसके बाद उठने वाली समस्याओं को समझा जा सके। दरअसल, यह जापानी इतिहास पर हमारे पाठ्यक्रम की अंतिम इकाई है। जिसमें अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य में जापान की भावी भूमिका पर भी टिप्पणी की गयी है। 1945 में जापान युद्ध के हाथों ध्वस्त हो गया था और उसकी अर्थव्यवस्था और उसका समाज जर्जर हो गये थे। भविष्य अंधकारमय और निराशाजनक दिखायी देता था। फिर भी, 1971 तक स्थिति यह थी कि रिचर्ड हैलोरन न्यू यार्क टाइम्स में यह लिख रहा था कि जापान "एशिया का सबसे बढ़िया वस्त्र पहनने वाला, सबसे लंबी आयु वाला, और सबसे संपन्न राष्ट्र" था।

26.2 पृष्ठभूमि

यह बदलाव कैसे आया और किन शक्तियों ने इसमें मदद की, यह एक ऐसा सवाल है जिस पर न केवल शैक्षिक पत्रिकाओं में, बल्कि लोकप्रिय कृतियों, पत्रिकाओं और अखबारों में भी बहस चली है। जापान की बढ़ती औद्योगिक शक्ति का आभास पूरी दुनिया ही करती रही है, इसलिये लोग एक एशियाई देश की सफलता को लेकर असमंजस में रहे और उन्होंने इसकी अनेक ढंग से व्याख्या करने का प्रयास किया है:

- कुछ का तर्क है कि यह जापान की कन्फ्यूशसी विरासत और "पारंपरिक" मूल्यों पर उसका जोर था जिसके चलते उसकी सामाजिक व्यवस्था सुरक्षित रही और उसके लिये राष्ट्रीय वृद्धि के लिये आवश्यक नीतियां अपनाना संभव हुआ।
- कुछ लोग युद्ध के पश्चात् जापान के पुनर्निर्माण के लिये अमेरिका की भारी सहायता और कोरियाई युद्ध और वियतनामी युद्ध को जापानी अर्थव्यवस्था को उछाल देने वाला और उसकी वृद्धि को बढ़ाने वाला मानते हैं।
- कुछ समीक्षकों के अनुसार आर्थिक चमत्कार संभव होने का कारण जापान की वे भीतरी प्रतिबंधकारी नीतियां थीं जिन्होंने सामाजिक सुविधाओं को नीचे स्तरों पर रखा।
- यह भी कहा जाता है कि जापान ने एक आक्रामक आर्थिक नीति अपनायी। अपने बाजार को अत्यधित सुरक्षित रखते हुए और अपने उद्योग को आर्थिक सहायता देते हुए, उसके लिये एक नियोजित ढंग से होड़ करना संभव हुआ।
- कुछ विद्वान जापान को एक उन्नत विकसित देश के स्तर पर लाने की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं उद्योग मंत्रालय (एम आई टी आई) की भूमिका को निर्णायक मानते हैं।

जापान के विकास का श्रेय किसी एक कारक को देना गलत होगा। और, जापान की सफलता के रहस्यों को खोलने के लिये किसी एक "कुंजी" की तलाश निरर्थक है। क्योंकि ऐसा करते समय हम इस सच्चाई को नजरअंदाज कर जाते हैं कि जापानी वृद्धि कुछ "अप्रत्याशित" और "अचानक" के अर्थ में "चमत्कार" नहीं था जैसा कि हम इससे पहले की इकाइयों में देख चुके हैं, जापानी सफलता का मूल इसके इतिहास में कम से कम सत्रहवीं शताब्दी तक जाता है। दूसरे शब्दों में जापान ने एक लंबे अरसे में अपनी संस्थाओं और कौशलों का विकास किया है। युद्ध के कौशलों के बाहरी परिणामों—कारखानों और इमारतों—को नष्ट कर दिया, और उसकी कीमती जिंदगियां खत्म हो गयी। लेकिन, प्रयासों और असरकारी नीतियों के जरिये जापान ने उन्हीं कौशलों के बूते पर पुनर्निर्माण कर लिया जो उसके पास बचे रह गये थे। जापानी लोग कोई नयी शुरुआत नहीं कर रहे थे, बल्कि पुनर्निर्माण कर रहे थे।

युद्ध पश्चात् के काल को बहुत स्वाभाविक तौर पर मित्र राष्ट्रों के कब्जे के साढ़े छह वर्षों (1845-1952) में, और फिर 1952-1973 के उस काल में बांटा जा सकता है जब जापान ने अपनी अर्थव्यवस्था और समाज के पुनर्निर्माण का काम किया और वह एक समृद्ध और स्थिर राष्ट्र के रूप में उभरा। इस दौर का समापन उस तेल संकट के साथ होता है जिसके चलते जापान समायोजन करने को बाध्य हो गया। 1973 से आज तक की स्थिति यह है कि जापान न केवल एक शक्तिशाली आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है, बल्कि उसने एक राजनीतिक भूमिका भी निभानी शुरू कर दी है। यह और बात है कि वह यह काम बहुत सीमित तौर पर और संकोच के साथ कर रहा है।

जापान की विदेश नीति का आधार अमेरिकी गठबंधन रहा है जिसके कारण जापान की सुरक्षा सुनिश्चित होती है। इसी के कारण जापान के लिये यह संभव हुआ है कि वह अपनी शक्ति को आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में लगा सके। आज इन में से कुछ मान्यताओं पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा रहा है। क्योंकि जापान की इच्छा विश्व के मामलों में कहीं अधिक सक्रिय और स्वतंत्र भूमिका निभाने की है, और अमेरिका भी, आर्थिक कारणों से यह चाहता है कि जापान प्रतिरक्षा के व्यय का अधिकांश भार स्वयं वहन करे।

26.3 मित्र राष्ट्रों का कब्ज़ा

जापान पर मित्र राष्ट्रों का कब्ज़ा 28 जुलाई 1945 की पौट्सडेम घोषणा के प्रावधानों के तहत हुआ। फिर भी, वास्तव में कब्जे का काम अमेरिका ने किया। अंग्रेज़ी और अन्य राष्ट्र कुल देशों की सेनाओं की एक छोटी सी टुकड़ी ही इसमें शामिल थी। जनरल डगलस मेक आर्थर को अमेरिकी राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन ने मित्र राष्ट्रों का सर्वोच्च सेनापति (स्कैप) नियुक्त किया था। लेकिन, वास्तविकता यह थी कि मैक आर्थर जापान का शासक बन गया था। वैसे यह जापानी सरकार के जरिये ही हुआ था जो भंग नहीं हुई थी। जापानी विदेश मंत्रालय ने एक केंद्रीय संपर्क कार्यालय की स्थापना की जिसका काम स्कैप के निदेशों को निपटाना और संसाधन करना था। इसके कारण जापानियों के लिये स्कैप की नीति को संशोधित करना, या बदलना, यहां तक कि उसके क्रियान्वयन में विलम्ब करना भी संभव हो गया।

इस नीति के बुनियादी प्रारूप का निर्धारण जापान के लिये अमेरिका की शुरुआती आत्म-समर्पण पश्चात् की नीति में हो गया था, जिसकी घोषणा 29 अगस्त, 1945 को की गयी। इस नीति के दो प्रमुख उद्देश्य थे:

एक, उसकी इच्छा वह सुनिश्चित करने की थी कि जापान फिर कभी अमेरिका या विश्व की सुरक्षा के लिये खतरा न बन सके।

दो, एक जनतांत्रिक और जिम्मेदार सरकार की स्थापना करना।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के वास्ते अमेरिका सैन्यवाद और विस्तारवाद के उस ढांचे को नष्ट करना चाहता था जिसके कारण जापान ने अपने आपको युद्ध में झोंका और अपनी जनता का ही दमन किया। अमेरिका यह महसूस करता था कि बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों और सेना का व्यवस्था पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण था, और उन्होंने सरकार के नियंत्रण के जरिये एक ऐसी सम्राट आधारित विचारधारा का प्रसार कर दिया था जिससे देश की जनता भीरू और दब्बू बन गयी थी। इसलिये यह आवश्यक था कि इस नीति का पालन करने वाले लोगों को शुद्ध किया जाये, और व्यवस्था को मुक्त और अधिक जनतांत्रिक और कम केंद्रित बनाया जाये।

बदलाव का आधार बनाने के लिये कब्ज़ा करने वाली (या, अधिपत्य) सेनाओं ने सफाई करना शुरू किया और उन्होंने पहले की सरकार के अधिकारियों को शुद्ध किया और कई कार्यालयों को समाप्त कर दिया। बृहत्तर पूर्व एशियाई मामलों के मंत्रालय जैसे मंत्रालयों

को समाप्त कर दिया गया। स्कैप के पहले निर्देश में यह आदेश दिया गया कि तमाम जापानी सेनाओं की लामबंदी समाप्त की जाये।

अक्टूबर, 1945 तक विशेष राजनीतिक पुलिस और सार्वजनिक शांति रख-रखाव कानून को समाप्त कर दिया गया। न्यूरेनबर्ग की तरह युद्ध अपराधियों पर मुकद्मा चलाने के लिये गठित, सुदूर पूर्व के अंतर्राष्ट्रीय सैनिक ट्रिब्यूनल (अदालत) ने लगभग छह हजार पर मुकद्मा चलाया और 920 को सजा सुनायी। 200,000 से अधिक को, पिछली सरकार के अपराधों में उसका साथी होने के कारण, शुद्ध किया गया। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि चोटी के जिन 28 नेताओं पर मुकद्मा चलाया गया उन पर अभियोग लगाने के लिये हिरोहितों के जन्मदिन 29 अप्रैल 1946 को चुना गया, और उनके मृत्यु दंड को पूरा करने के लिये उसके पुत्र (आज के सम्राट) अकीहितो के जन्मदिन 23 दिसम्बर को चुना गया।

26.3.1 राजनीतिक निहितार्थ

पहली समस्या सम्राट की स्थिति की थी। इस बात पर विवाद था कि उसे युद्ध के लिये उत्तरदायी ठहराया जाये या नहीं। अनेक जापानी नेताओं पर तो मुकद्मा चलाया गया और उन्हें मृत्यु दंड भी दिया गया, लेकिन सम्राट पर कभी मुकद्मा नहीं चला। मित्र राष्ट्रों के अनेक संगठन चाहते थे कि सम्राट हिरोहितों पर मुकद्मा चले। वे सम्राट को मित्र राष्ट्रों के हजारों सैनिकों की मृत्यु और उनके साथ हुए दुर्व्यवहार के लिये जिम्मेवार मानते थे। जापान के वामपंथी भी यह चाहते थे कि जापान को फासीवाद की ओर ले जाने वाली सम्राट व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये।

जापान के रूढ़िवादी और जनरल मैक आर्थर भी, यह चाहते थे कि सम्राट को बनाये रखा जाये। उनका मानना था कि उसके खिलाफ कोई कार्यवाही करने से सामाजिक अव्यवस्था की स्थिति बन सकती थी। फिर भी, सम्राट को अपनी दिव्यता त्याग देने के लिये बाध्य कर दिया गया। जापान से सम्राट को सूर्य देवी का सीधा वंशज होने के मिथक को शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से प्रसारित किया गया था और उसे जापान के अनूठे होने का आधार बनाया गया था। हिरोहितों ने, 1946 के नव वर्ष दिवस पर एक रेडियो प्रसारण में, यह कहकर अपनी दिव्यता का त्याग किया कि जिन बंधनों ने उसे उसकी जनता के साथ जोड़ा हुआ था उनका आधार "आपसी भरोसा प्रेम और आदर था। वे केवल दंत कथाओं या अंधविश्वास पर नहीं टिके थे।"

अधिपत्य (या कब्जा करने वाले) अधिकारियों ने जो अगला कदम उठाया, वह था नये संविधान का प्रारूप तैयार करना। इस प्रक्रिया में अनेक प्रारूपों का निर्माण शामिल था। पहला प्रारूप एक राजनायिक शिदेहारा किजुटो, की अध्यक्षता वाली जापानी सरकार की एक समिति ने तैयार किया। लेकिन मैक आर्थर के विचार में प्रारूप में अत्यधिक सतर्कता बरती गयी थी। उसने अपने सदस्यों से ही एक प्रारूप तैयार करवाया जिसमें एक जनतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना करने के लिये आवश्यक स्थितियों की मांग को पूरा करने का प्रयास किया गया। जनरल मुख्यालय के सरकारी अनुभाग ने 1946 के प्रारंभ में जो प्रारूप तैयार करके दिया उसे नवम्बर 1946 में लागू किया गया।

नये संविधान ने सम्राट के हाथों से प्रभुसत्ता लेकर जनता के हाथों में सौंप दी। सम्राट "जनता की एकता और राज्य का प्रतीक" बन गया। मेजी संविधान के सिद्धांतों से यह बहुत दूरगामी बदलाव था। डायट में दो सदन ही बने रहे, लेकिन पहले की अभिजात सभा को एक निर्वाचित पार्षद सभा में बदल दिया गया। मुख्य विधायी अधिकार निम्न प्रतिनिधि सभा के पास थे। संसद सामूहिक रूप से डायट के प्रति उत्तरदायी थी। न्यायपालिका संवैधानिक दृष्टि से स्वाधीन हो गयी। मेजी संविधान से भिन्न जिन अन्य प्रमुख बातों को लिया गया, वे थीं:

i) महिलाओं को मतदान का अधिकार और पुरुषों के साथ कानूनी समानता दी गयी।

ii) स्थानीय स्वायत्तता के सिद्धांत को भी संविधान में लिखा गया।

iii) सबसे मौलिक या क्रांतिकारी परिवर्तन अनुच्छेद 9 के रूप में था जिसमें जापान के युद्ध छेड़ने के अधिकार को त्याग दिया गया।

इस अनुच्छेद में लिखा है कि "जापानी लोग एक प्रभुसत्तात्मक अधिकार के रूप में युद्ध का और अंतर्राष्ट्रीय झगड़े निपटाने के साधन के रूप में बल प्रयोग या बल प्रयोग की धमकी का हमेशा के लिये त्याग करते हैं"। इसमें आगे लिखा है कि थल, नौ और वायु सेनाओं को कभी नहीं रखा जायेगा और राज्य के झगड़े के अधिकार को मान्यता नहीं दी जायेगी। इस अनुच्छेद के दूरगामी प्रभाव हुए। वैसे इसमें संशोधन भी किया गया, क्योंकि अमेरिका की नीति के कारण जापान को अपनी सैनिक क्षमता का विकास करना पड़ा।

नये राजनीतिक ढांचे में, जनता पर निकट का नियंत्रण रखने वाले गृह मंत्रालय और पुलिस को छोटी-छोटी इकाइयों में बांट दिया गया और उनके अधिकारों में कमी कर दी गयी। श्रम कानूनों में मजदूरों के संगठित होने और सामूहिक कार्यवाही करने के अधिकार को सुनिश्चित किया गया, और जिन साम्यवादियों या अन्य प्रगतिशील तत्वों को सरकार की नीतियों का विरोध करने के कारण जेल में डाल दिया गया था, उन्हें रिहा कर दिया गया। युद्ध के पश्चात् का पहला आम चुनाव अप्रैल 1946 में संपन्न हुआ। उस समय तक मंत्रिमंडलों का गठन चुनावों के आधार पर नहीं, बल्कि नियुक्ति के आधार पर हुआ था। आम चुनावों ने जनता द्वारा नये संविधान की स्वीकृति का काम किया। फिर भी, कोई एक दल स्पष्ट बहुमत लेकर नहीं निकला, और प्रधानमंत्री बनने वाला योशिदा शिगेरु एक अस्थिर सरकार का नेता रहा।

जिस कुलीनवादी शिक्षा व्यवस्था को अधिपत्य शक्तियों ने अधिकारियों के प्रति अंध-आज्ञाकारिता और समर्पण का भाव पैदा करने वाली व्यवस्था के रूप में देखा था, उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करने की मांग हुई। यह तर्क दिया गया कि सम्राट के प्रति श्रद्धा और जापानियों के अनूठे होने के विचारों को अत्यधिक नियंत्रित शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से फैलाया गया था। अधिपत्य (या, कब्जा करने वाली) शक्तियों ने शिक्षा मंत्रालय के अधिकारों को कम कर दिया और अमेरिकी व्यवस्था पर आधारित एक व्यवस्था को अपनाया गया। इस व्यवस्था में छह वर्ष की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और उसके बाद क्रमशः तीन वर्ष की माध्यमिक शिक्षा और तीन वर्ष की उच्च शिक्षा और फिर चार वर्ष की विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा का प्रावधान रखा गया। सह-शिक्षा को लागू किया गया। शिक्षा का विकेंद्रीकरण और स्थानीय परिषदों का गठन व्यवस्था के जनतंत्रीकरण में निर्णायक रहे।

26.3.2 आर्थिक निहितार्थ

अधिपत्य शक्तियों ने अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। जिस समय जापान ने आत्म-समर्पण किया, उस समय तक उसे लगभग 20 प्रतिशत संसाधनों की क्षति हो चुकी थी। औद्योगिक उपकरणों की तो भारी क्षति हुई और कई कारखाने भी नष्ट कर दिये गये, लेकिन भारी और रासायनिक उद्योग की काफी उत्पादन क्षमता बरकरार रही। युद्ध सामग्री के उत्पादन की ओर अर्थव्यवस्था को मोड़ दिये जाने के कारण नागरिक (या, गैर-सैनिक) उपयोग के सामान की भारी कमी हो गयी। शहरों में खाद्य सामग्री की कमी और मुद्रास्फीति के कारण लोगों के लिये जीना कठिन हो गया, वैसे भुखमरी उस तरह की नहीं थी जैसी कि जापानी शासन के अधीन फिलीपीन या फिर चीन ने देखी थी।

प्रारंभ में स्कैप ने दंड देने वाले की भूमिका अदा की। यह माना गया कि जापान की औद्योगिक क्षमता इसकी आक्रामकता के लिये जिम्मेवार थी, इसलिये उसे एशिया का प्रमुख औद्योगिक देश बनाने वाली इस क्षमता को कम किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य से, **जैबात्सू** को भंग कर दिया गया और विकेंद्रीकरण और जनतंत्र लागू करने के उद्देश्य से व्यापक भूमि सुधार किये गये।

जैबात्सू ऐसे बड़े-बड़े गुट थे जो पिन से लेकर विमान तक से संबंधित विविध प्रकार के व्यापारों से जुड़े थे। प्रमुख गुट थे:—**मित्सुई मित्सुबिशी, सुमितोमो** और **यासुदा** प्रत्येक गुट के संगठन का केन्द्र एक नियंत्रक कंपनी होती थी और अधिकांश नियंत्रण अब भी परिवार के सदस्यों के हाथों में होता था। स्कैप ने उनकी संपत्ति को जब्त कर लिया और नियंत्रक

कंपनियों को भंग कर दिया। भूमि सुधार ने जापान के गांवों में संकट की स्थिति टालने में मदद की, जहां लौटने वाले सिपाहियों के कारण आबादी बढ़ गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप उन छोटे किसानों को मुश्किलों का सामना करना पड़ गया जिनकी संख्या ग्रामीण आबादी का सत्तर प्रतिशत थी। भूमि परिसीमन और बड़े भूस्वामियों से भूमि जब्त किये जाने और कृषि सहकारिताओं के गठन ने ग्रामीण क्षेत्रों को स्थिरता प्रदान करने में मदद की।

स्कैप की नीति में बदलाव आना तब शुरू हुआ जब 1946 में जापान को खाद्य सहायता दी गयी। 1948 के मध्य तक लक्ष्य स्पष्ट तौर पर एक मजबूत और आत्मनिर्भर जापान के पुनर्निर्माण का हो गया था। युद्ध समाप्त होने से भी पहले, कई अमेरिकी नियोजक यह देख चुके थे कि चीन में साम्यवाद की उभरती शक्ति के विरुद्ध जापान को एक मित्र देश के रूप में लिया जा सकता था। उन्हें डर था कि चीन सोवियत संघ के साथ गठबंधन कर सकता था। जापान में भी कई नेताओं को इस बात का डर था कि युद्ध में हार के कारण सामाजिक क्रांति हो सकती थी, और उन्होंने जिस तेजी के साथ आत्म-समर्पण किया उसके पीछे एक कारण यह भी था।

इस दिशा में परिवर्तन को अक्सर "उल्टा मार्ग" कहा जाता है, और 1953 में कोरियाई युद्ध छिड़ने के बाद यह स्पष्ट भी हो गया। अगस्त 1950 में, एक राष्ट्रीय पुलिस आरक्षी का गठन किया गया और 1954 तक एक आत्म-रक्षा अभिकरण और आत्म रक्षा बलों का गठन कर लिया गया था। सितम्बर 1951 की सान फ्रांसिस्को संधि में एक द्विपक्षीय आपसी सुरक्षा संधि संपन्न हुई जिसमें यह स्पष्ट कर दिया गया कि जापान अपनी प्रतिरक्षा की अधिकाधिक जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगा। इसी तरह आधिपत्य शक्तियों, और जापान के स्वाधीन हो जाने के बाद नयी सरकार दोनों ने कई और परिवर्तन किये। इस तरह "उल्टे मार्ग" का काल क्षेत्र आधिपत्य काल और नयी सरकार के शासन के प्रारंभिक वर्षों तक जाता है। बदले हुए उद्देश्यों के कारण जापान को अमेरिकी पूंजी, प्रौद्योगिकी और बाजार तक पहुंच का फायदा मिला।

26.3.3 कब्ज़े पर जापान की प्रतिक्रियाएं

कब्ज़े को लेकर जापान की प्रतिक्रियाएं वैचारिक न होकर व्यावहारिक आवश्यकता से प्रेरित थीं। जापान में प्रवेश के समय अमेरिका सेनाओं ने प्रतिरोध की अपेक्षा की थी, लेकिन अपना आम स्वागत देखकर वे चकित रह गये। इसका कारण यह था कि अधिकांश जापानी युद्ध से तंग आ चुके थे। इसके अतिरिक्त, जन संचार माध्यमों पर स्कैप का नियंत्रण था जो बिना किसी विवाद के अपने दृष्टिकोणों और विचारों का प्रसार कर सकती थीं। अंतिम बात यह कि, स्कैप ने जो सुधार किये उससे जापानी समाज के व्यापक वर्गों को फायदा पहुंचा। उन्हें ऐसे अधिकार दिये गये जिनसे उन्हें अब तक वंचित रखा गया था। उदाहरण के लिये, महिलाओं को जो नये अधिकार दिये गये वे किसी आंदोलन की देन नहीं थे। वस्तुतः सर्वेक्षणों के अनुसार, अधिकांश महिलाओं की इन अधिकारों में दिलचस्पी नहीं थी।

इसलिये, कुछ विद्वानों ने अमेरिकी आधिपत्य को जापान में जनतंत्र की शुरुआत माना है। उन्हें इसमें जापानी इतिहास के प्रवाह में एक तोड़ दिखायी देता है, जब अत्यधिक नये विचारों और प्रथाओं को जबरन जापानी समाज में लागू किया गया। आज, अनेक जापानी विद्वान युद्ध पूर्व के घटनाक्रमों का पुनरावलोकन कर यह तर्क दे रहे हैं कि आधिपत्य सुधारों के लिये आधार पहले ही तैयार किया जा रहा था, और जापानी जनतंत्र के मूल की तलाश के लिये हमें मेजी काल के लोकप्रिय आंदोलनों तक लौटना चाहिये। इन भिन्न विचारों के बावजूद आधिपत्य काल एक ऐसे महत्वपूर्ण अंतराल का द्योतक है जिसके दौरान आंतरिक बदलावों की शुरुआत की गयी। जापान का घनिष्ठ संबंध अमेरिकी विदेश नीति के उद्देश्यों से था। अंत में, यह उल्लेख करना होगा कि आधिपत्य के दौरान जापान के आंतरिक बदलावों की शुरुआत की गयी।

राजनीतिक परिदृश्य में दो अत्यधिक शक्तिशाली विभूतियां उभर कर सामने आयीं। एक था—जनरल डगलस मैं आर्थर जिसने आधिपत्य नीतियों को गढ़ने और निर्देशित करने में निर्णायक भूमिका निभायी, और दूसरा योशिदा शिगेरु जो युद्ध पश्चात् के जापान में नये

संविधान के तहत चुना जाने वाला पहला प्रधानमंत्री बना। उसने युद्धोत्तर जापान के ढांचे के लिये आधार तैयार किया। प्रधानमंत्री बनने के समय योशिदा साठ वर्ष का था। वह 1930 के दशक में इंग्लैंड में जापान का राजदूत रह चुका था। वैसे तो उसने चीन में जापान की कार्यवाहियों का समर्थन किया था, लेकिन जर्मनी के साथ गठबंधन का उसने विरोध किया था। रूढ़िवादी योशिदा ने देख लिया था कि जापान का भविष्य अमेरिका के साथ गठबंधन और आर्थिक विकास पर ध्यान केंद्रित करने में निहित था। ये वे दो स्तंभ थे जिन पर जापान के विकास का ढांचा खड़ा किया गया।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग 15 पंक्तियों में आधिपत्य करने वाले अमेरिकी अधिकारियों के लक्ष्यों का वर्णन कीजिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) लगभग 10 पंक्तियों में आधिपत्य के आर्थिक निहितार्थ की रूपरेखा स्पष्ट कीजिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) लगभग 10 पंक्तियों में आधिपत्य पर जापान की प्रतिक्रिया पर टिप्पणी लिखिये।

....
....
....

....

....

....

....

....

....

....

26.4 उच्च वृद्धि का काल (1952-1973)

जैसा कि हमने प्रस्तावना में कहा था, जापान के विकास को पूरी तौर पर समझने के लिये, हम इस भाग में प्रमुख आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रमों की चर्चा करेंगे।

26.4.1 राजनीतिक घटनाक्रम

जिस काल में जापान ने अपनी राजनीतिक स्वाधीनता को फिर से हासिल किया, उसमें आर्थिक वृद्धि के एकाकी प्रयास देखने में आये। शुरू के वर्ष वास्तव में पहले के दौर का ही विस्तार थे, लेकिन 1955 तक युद्ध पश्चात् की व्यवस्था की बुनियादी रूपरेखा तैयार हो गयी थी। 1955 में समाजवादी पार्टी की दोनों शाखाओं का अक्टूबर में विलय होकर जापान समाजवादी पार्टी बन गयी और नवम्बर में दो रूढ़िवादी दलों का विलय होकर उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी का गठन हो गया। आगे चलकर, युद्ध पश्चात् के जापान की राजनीति में इसी उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी का बोलबाला रहा। ये दोनों पार्टियां उस व्यवस्था का अंग बन गयीं जिसे डेढ़ पार्टी की व्यवस्था कहा जाता था, क्योंकि समाजवादी सबसे बड़ा प्रतिपक्ष होते हुए भी इतना बड़ा पक्ष नहीं था कि राज्यतंत्र को प्रभावित कर सकता था।

उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी चुनावी प्रक्रिया पर हावी रही और छठवें प्रतिनिधि सभा आम चुनावों में जीत कर वह सत्ता में आ गयी। समाजवादी विपक्ष में आये, और जो दक्षिण और वाम गुट एक हुए थे उनमें प्रायः असहमति रहती थी। 1955 में उनमें विभाजन हो गया, जिसमें दक्षिणपंथी गुट ने जनतांत्रिक समाजवादी पार्टी बना ली।

युद्ध समाप्त होने के बाद के वर्षों में नये धार्मिक पंथों का उदय हुआ। इनमें से अनेक की स्थापना युद्ध से पहले के वर्षों में हुई थी, लेकिन वे लोकप्रिय युद्ध पश्चात् के उन कठिनाइयों वाले वर्षों में ही हुए जब लोगों ने उसके उपदेश में सांत्वना और शांति ढूंढनी चाही। इनमें से **सोक्कागक्काई** या मूल्य सर्जक समाज अपनी व्युत्पत्ति तेहरवीं शताब्दी के बौद्ध पुरोहित निचीरेन से बताता था। निचीरेन ने एक राष्ट्रवादी बौद्ध पंथ की स्थापना की थी और वह इस बात के लिये विख्यात था कि उसने अपनी प्रार्थना के बल पर तूफान उठा कर आक्रमणकारी मंगोल बेड़े को नष्ट कर दिया था। इस दैवीय हवा या **कामीकाज़े** शब्द का उपयोग युद्ध के दौरान आत्मघाती बमवर्षकों के लिये भी किया गया था। बौद्ध संगठन **सोक्कागक्काई** बहुत प्रभावशाली हो गया और 1964 में उसकी सहायता से एक राजनीतिक दल का गठन हुआ। कोमेतो अथवा स्वच्छ शासन पार्टी कुछ समय के लिये एक बड़ी शक्ति बन गयी। वैसे इसकी शक्ति शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित थी। जापान साम्यवादी पार्टी पर युद्ध के पहले वाली सरकार ने पाबंदी लगा दी थी, लेकिन अमेरिकी आधिपत्य ने उसे सक्रिय होने की अनुमति दे दी, और इस पूरे दौर में इसे डायट में अल्पमत का स्तर मिला रहा। लेकिन इसका दैनिक पार्टी अखबार **अकाहाता** (लाल ध्वज) खूब बिकता था।

विशेषकर इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि शुरुआती दौर में गठबंधन बदलते रहे और विवाद खड़े होते रहे, जिनका प्रायः यह परिणाम हुआ कि डायट के अंदर अव्यवस्था

हो गयी और बाहर प्रदर्शन हुए। सरकार ने अपनी शक्ति बढ़ाने और अपने नियंत्रण का विस्तार करने का प्रयास किया। शिक्षा मंत्रालय ने स्कूल अध्यापकों और पाठ्य-पुस्तकों पर अपने निरीक्षण के अधिकारों को और बढ़ा लिया। पुलिस के अधिकार बढ़ा दिये गये और आत्म-रक्षा बलों में भी लगातार वृद्धि हो रही थी। विवाद का एक प्रमुख मुद्दा 1951 की अमेरिका-जापान परस्पर सुरक्षा संधि थी। इस संधि की 1960 में समीक्षा होनी थी, और इसके संशोधन को लेकर एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया।

इस संधि पर 1951 में योशिदा ने हस्ताक्षर किये थे, जिसमें उसने अमेरिका को जापान में व्यापक विशेषाधिकार दे दिये थे। अमेरिका ने जापान में अड्डे बना लिये और ओकिनावा पर आधिपत्य कर लिया था। समाजवादियों और दूसरे गुटों ने इसे "असमान संधि" बताते हुए इसका विरोध किया। समाजवादी पार्टी में दोफाड़ इस संधि का समर्थन करने के सवाल पर हुआ। समाजवादियों का तर्क था कि इस संधि के चलते जापानियों को अग्रिम पंक्ति की सेनाओं के रूप में काम करना पड़ेगा और अगर अमेरिका ने कोई दूसरी जंग लड़ी तो उसमें जापान को भी घसीटा जायेगा। अमेरिका कोरिया में यह कर ही चुका था।

इस संधि के संशोधन से पहले व्यापक प्रदर्शन हुए। 19 मई 1960 को डायट के विपक्षी सदस्यों ने सदन के अध्यक्ष (स्पीकर) को पकड़ लिया और उसे डायट में भवन के तलघट में बंद रखा। इससे झगड़े हो गये और संशोधन का काम विपक्षी सदस्यों की अनुपस्थिति में ही कर दिया गया। इससे जनता भड़क गयी और कुछ और प्रदर्शन हुए जिनका नेतृत्व छात्र संघों के परिसंघ **जेंगाकुरेन** जैसे उग्र छात्र संगठनों ने किया। सबसे बड़ा प्रदर्शन 15 जून को हुआ जिसमें डायट को घेर लिया गया और झड़प में टोक्यो विश्वविद्यालय की एक युवा छात्रा मारी गयी। संधि 23 जून को प्रभावी हुई और प्रधानमंत्री किशी नोबुसुके ने अगले महीने जुलाई में त्यागपत्र दे दिया।

सुरक्षा संधि विरोधी प्रदर्शन और उनकी विफलता युद्धोत्तर काल की महत्वपूर्ण घटना थी। अनेक विद्वान इन्हें भागीदारी जनतंत्र का प्रमाण मानते हैं। प्रदर्शन होने का कारण संधि का मसौदा ही नहीं थी, बल्कि किशी का इस स्थिति से निपटने का तरीका भी रहा। अनेक लोगों का यह मानना था कि सत्तारूढ़ एल डी पी ने जो ज़ोर ज़ुल्म किये उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। लाखों लोगों ने इसलिये आम चुनावों की मांग करने वाली याचिका पर हस्ताक्षर किये। लेकिन, यह भी याद रखना चाहिये कि 1962 में एस डी एफ ने जमीन से हवा में मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र हासिल कर लिये थे, और जब अमेरिका ने यह वक्तव्य दिया कि एक नाभिकीय जलपोत जापान भेजा जायेगा तो, इसे लेकर कोई प्रदर्शन नहीं हुआ। जापान उच्च वृद्धि के काल में अपने पांव जमा रहा था और अपनी शक्तियों को विकास के कार्यों में लगा रहा था।

26.4.2 आर्थिक वृद्धि

सन् 1854 से लेकर 1971 तक जापान ने दस प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि की, जिसे "चमत्कार" बताया गया। इस दौरान औद्योगिक सुविधाएं कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 36 प्रतिशत तक बढ़ गयीं, और जापान का वैसे ही तेजी से रूपांतरण हुआ जैसे मेजी पुनरुत्थान के बाद के वर्षों में हुआ था। बहुत से लोगों के मन में जो सबसे पहला सवाल उठता है वह यह है कि जापान ने यह सब हासिल कैसे किया। क्या यह चमत्कारी वृद्धि सुविचारित और सुनिष्पादित नीतियों का ही एक अंग थी? अनेक विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि जापान को ये परिणाम उसकी सोच-विचार कर अपनायी गयी नीतियों के कारण हासिल हुए। उदाहरण के लिये इतिहासकार चामर्स जॉनसन ने जापान के आर्थिक विकास को दिशा और नेतृत्व देने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले शक्तिशाली संगठन (MITI) की भूमिका के विषय में लिखा है। अनेक कृतियों अथवा लेखों में ध्यान का केन्द्र सरकार-व्यापार-उद्योग के बीच के घनिष्ठ संबंध रहे हैं, और तर्क यह दिया गया है कि इसी घनिष्ठता के साथ काम करने के कारण आर्थिक लक्ष्यों पर और इन आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक नीतियों पर सहमति अथवा एकमत बनाना संभव हुआ।

युद्ध पश्चात् के जापान में आर्थिक उछाल प्रधानमंत्री इकेदा के "आय दुगुनी करने" की योजना शुरू करने से पहले ही शुरू हो चुकी थी। यह योजना समृद्धि के अस्तित्व में आने

का प्रतीक बनी। 1960 तक जापान का कुल राष्ट्रीय उत्पाद दुनिया में पांचवें स्थान पर आ गया था, और 1968 तक उसका स्थान अमेरिका के बाद दूसरा हो गया था। जापानी अर्थव्यवस्था को सरकारी नियंत्रणों और नेतृत्व में रखा गया, लेकिन प्रतिस्पर्धा को हतोत्साहित नहीं किया गया, बल्कि वह जबरदस्त थी और सरकार के दृष्टिकोण में भी लोच रही।

इस्पात उद्योग की ओर 1950 के दशक में विशेष ध्यान दिया गया। उसका विस्तार करने के लिये ऋणों और कोष की व्यवस्था की गयी। इसके परिणामस्वरूप 1970 के दशक के मध्य तक जापान उत्पादन के मामलों में पश्चिम की इस्पात फर्मों से आगे निकल चुका था। MITI ने प्रारंभ में तो कड़ा नियंत्रण रखा और लक्ष्य निर्धारित किये, लेकिन जब इस्पात फर्मों की वृद्धि हो चली तो, उसने उनके नियोजन का काम उन्हीं पर छोड़ दिया। लेकिन "प्रशासनिक नेतृत्व" का काम उसने अपने पास ही रखा। इस नेतृत्व को कानूनी समर्थन नहीं था, लेकिन कंपनियों के लिये भी इस नेतृत्व को नहीं मानना असंभव नहीं तो अत्यधिक कठिन तो था ही। ऐसे ही कदम पोत-निर्माण जैसे उद्योगों में भी उठाये गये।

जापान की प्रारंभिक सफलता ने इसके व्यापारी सहभागियों के लिये समस्याएं खड़ी कर दीं। इन व्यापारियों को सीमित बाजारों और सस्ते निर्यातों को लेकर शिकायत हो गयी। जापानी वस्त्र, जूते आदि यूरोपीय और अमेरिकी बाजारों में अपनी पैठ कर रहे थे। जापान ने विदेशी फर्मों को प्रवेश की कुछ अनुमति तो दी, लेकिन जापानी कंपनियों के विदेशी स्वामित्व को 25 प्रतिशत तक सीमित कर दिया। बुनियादी तौर पर यह नीति अत्यधिक प्रतिबंध लगाने वाली रही, और 1980 के दशक में भी विदेशी स्वामित्व 2 प्रतिशत से नीचे ही रहा।

अनेक जापानी विद्वानों ने जिस आम विचार पर तर्क किया वह यह था कि जापान की वृद्धि का श्रेय सीमित बाजारों को नहीं, जापानी व्यवस्था को जाता है। इस व्यवस्था का केन्द्र आजीवन रोजगार, वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति और उद्यम संघ थे। जापानी कंपनियों में मजदूरों की नियुक्ति उनके कार्यजीवन के लिये होती थी, और कंपनी उनकी आवास, चिकित्सा और अवकाश जैसी अनेक आवश्यकताओं को पूरा करती थी। कर्मचारी को इस आधार पर वेतन दिया जाता था कि उसने कितने वर्ष काम किया और उसी के अनुसार उसे पदोन्नति दी जाती थी। इसका अर्थ यह होता था कि कर्मचारी को नौकरी बदलने की आवश्यकता नहीं होती थी। "योग्यता" से अधिक जोर निष्ठा और समर्पण की भावना पर रहता था। संघों का गठन विभिन्न उद्योगों के बीच नहीं; बल्कि फर्म या उद्यम के स्तर पर होता था। इसका अर्थ यह था कि बाहरी हस्तक्षेप के लिये कोई गुंजाइश नहीं थी और कंपनी और श्रमिक संघ साथ-साथ मिल कर उत्पादकता बढ़ा सकते थे।

लेकिन यह आदर्श व्यवस्था व्यापक तौर पर बड़ी फर्मों में ही लागू थी, जबकि अधिकांश मजदूर छोटी फर्मों में थे। जापान में एक दुसरा ढांचा था। कुछ ऐसी बड़ी कंपनियां थीं जो मुनाफ़े की सुनिश्चितता देती थीं और उनका उत्पादन भी अधिक था। लेकिन 53 प्रतिशत मजदूर ऐसी फर्मों में काम करते थे जिनमें, 1965 में, सौ से कम लोग काम करते थे। इन मजदूरों के बीच का अंतर उनके वेतन में और काम की दशाओं में दिखायी देता था। वैसे, 1970 के दशक में यह अंतर कम होने लगा। इसके अतिरिक्त, छोटी फर्मों के मजदूर बहुत कम संगठित होते थे। अंतिम बात यह कि, वेतन और काम की किस्म को लेकर महिला मजदूरों के साथ भेदभाव किया जाता था। इसके परिणामस्वरूप आजीवन व्यवस्था के तहत स्थायी महिला कर्मचारियों की संख्या न के बराबर थी। स्त्रियों और पुरुषों के वेतनों के बीच का अंतर 1970 के दशक में कुछ कम हुआ, लेकिन न्यूनतम वेतन पाने वालों में महिलाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी।

उन्नीस सौ साठ के दशक की आर्थिक वृद्धि ने सामाजिक परिदृश्य को बदल कर रख दिया। गांवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ गया और शहरी केंद्रों में आबादी का जमाव अधिक हो गया। ऐसा विशेषकर ओसाका-टोक्यो पट्टी में हुआ। उद्योग और आबादी का जमाव इस क्षेत्र में होने के कारण घिचपिच आवास और औद्योगिक प्रदूषण की स्थिति बन गयी। नागरिक संगठनों और निवासी संघों ने पर्यावरण को खराब करने का विरोध और बेहतर रहन-सहन की मांग शुरू कर दी। आर्थिक वृद्धि के मुनाफों से देश तो संपन्न हो रहा था, लेकिन जापानी जनता को पश्चिमी देशों की जनता की तरह सामाजिक लाभों का फायदा

नहीं मिल रहा था। टेलीविजन, वाशिंग मशीन और रेफ्रिजरेटर ने लोगों के जीवन को बदल डाला और सफलता के ये प्रतीक तेजी से पूरे जापान में फैल गये।

सन् 1953 में **मिनामाता** रोग पहली बार प्रकाश में आया। इस रोग का प्रभाव यह होता था कि इसके रोगी अपनी शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण खो बैठते थे। इस रोग का कारण औद्योगिक प्रदूषण था, जिसका पता 1959 में चला। लेकिन, 1973 में जाकर इसके रोगियों को अदालती हर्जाना मिल पाया। दूसरे रोगों में निर्बाध औद्योगिक विकास के खतरों को समझ पाने की कमी दिखायी दी। 1967 में प्रदूषण पर रोक लगाने के लिये एक कानून पारित किया गया, और 1970 के दशक में सरकार ने प्रदूषण रोकने के लिये गंभीर उपाय किये।

26.5 तेल आघात और उसके पश्चात् की स्थिति

सन् 1973 में ओपेक (तेल उत्पादक) देशों ने यह धमकी दी कि जो देश उनके प्रति मैत्री भाव नहीं रखते, वे उन्हें तेल देना बंद दर देंगे। यह "तेल आघात" की स्थिति थी। इस धमकी से जापान भयभीत हो गया। जापान तेल के आयात पर आश्रित था, और उसमें कटौती होने से उसकी अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो जाती। लेकिन जो उपाय किए गए, उनसे अर्थव्यवस्था के लचीलेपन और उसकी मजबूती का पता चलता है। जापान में ऊर्जा की मांग का सत्तर प्रतिशत तेल पर आधारित था, और उसके नीति-निर्माताओं ने ऊर्जा के उपभोग में कटौती का लक्ष्य सामने रखा। उन्हें इसमें इतनी सफलता मिली कि जहां अन्य उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में 1973 से 1980 तक 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई, वहीं जापान की अर्थव्यवस्था में 1975 में 3.2 प्रतिशत की, 1976 में 5.3 प्रतिशत की और फिर 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अर्थव्यवस्था, प्रधान मंत्री फुकुदा ताकेओ के शब्दों में, "इतनी ऊंचाइयां" छूने लगी जितनी कि "फ्यूजी पर्वत"।

सन् 1972 में सातो इसाकू के बाद प्रधानमंत्री बनने वाले तनाका काकुए ने जापान की राजनीतिक रीतियों को बदलने का राजनीतिक काम शुरू किया। उससे पहले भ्रष्टाचार रहा था और ऐसे बदनामी वाले प्रकरण उभर आए थे जिनके कारण राजनीतिक नेताओं को लज्जित होना पड़ा और कई राजनीतिक जीवन चौपट हो गए। अधिकांश जापानी प्रधान मंत्रियों और राजनीतिकों की तरह तनाका कभी टोक्यो विश्वविद्यालय में नहीं पढ़े थे, न ही शक्तिशाली लोक सेवक रहे थे, वह तो अपने बूते पर इस स्थिति पर तक पहुंचे थे। तनाका ने किनकेन सेजी अथवा धन की राजनीति की स्थापना की। तनाका ने मित्र और चुनाव क्षेत्र बनाए और व्यापक संरक्षण के माध्यम से एक शक्तिशाली राजनीतिक तंत्र खड़ा कर लिया।

सत्तारूढ़ उदारवादी जनतांत्रिक पार्टी कुछ गुटों का मिश्रण था। ये गुट चंदा इकट्ठा करने और चुनाव लड़ने में स्वाधीन होकर काम करते थे। इसलिए उनमें निरंतर प्रतिस्पर्धा बनी रहती थी लेकिन उनके व्यवहार रीति और सहयोग से भी प्रभावित थे। वे एक स्वीकृत ढांचे के अंदर काम करते थे। तनाका के समर्थन और विवादास्पद सौदे प्राप्त करने की आदत का भंडाफोड़ एक पत्रिका में छपे लेख में हुआ। इससे जो विवाद खड़ा हुआ उसके कारण तनाका की सरकार गिर गई। तनाका ने भ्रष्ट आदतों के अतिरिक्त पार्टी के अधिकार को भी नौकरशाही पर हावी रखा।

नौकरशाही ने राजनीतिक दलों से उन्नित स्वाधीनता बनाए रखकर काम किया था और प्रायः ही राजनीतिकों को विशिष्ट राय उपलब्ध कराई थी। लेकिन, तनाका ने अपने विशेषज्ञ तैयार किए और अपनी विशेष समितियां गठित कीं। तनाका के बाद मिकी ताकेओ आया जिसकी ईमानदार प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठा थी। लेकिन, मिकी ताकेओ राजनीति में धन की भूमिका को कम करने और गुटबंदी को समाप्त करने के अपने घोषित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाया।

सन् 1976 में, जापान लॉकहीड कांड (Lockheed Scandal) में डूब गया। लॉकहीड कंपनी ने अपने विमान बेचने के लिए कुछ जापानियों को धन दिया था। इनमें तत्कालीन प्रधान मंत्री तनाका काकुए भी शामिल था। 1976 में तनाका को गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में उस पर लंबा मुकदमा चला। लेकिन,इन अभियोगों के बावजूद तनाका पर्दे के पीछे से अपनी शक्ति का इस्तेमाल करता रहा, और अपनी गुट शक्ति के कारण वह जापानी राजनीति में राजा बनाने वाला असली कर्णधार रहा। तनाका का डायट के दोनों सदनों के 400 सदस्यों में से 120 पर नियंत्रण था और मंत्रिमंडल का गठन उसकी इस "सेना" के हाथ में होता था। नीतियों के निर्माण पर भी उसकी "सेना" का नियंत्रण था और वह महत्वपूर्ण मंत्री पदों पर हावी रहती थी। 1983 में तनाका को दोषी पाया गया। उसने अपील की। लेकिन अभी तक यह मामला सुलझा नहीं है।

सन् 1971 में MITI ने नव अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं औद्योगिक नीति की आधारभूत दिशा नाम की एक योजना का प्रकाशन किया। यह योजना 1970 के दशक के लिए एक दृष्टि के रूप में रख गई थी जिसका यह तर्क था कि जापान को औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन से हटकर ज्ञान आधारित उद्योगों की ओर आ जाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने अनेक उपाय किए। जापान ने टी वी ट्यूबों और वी सी आर के अपने उत्पादन को आधुनिक बनाया। और 1978 में उसने अपने कंप्यूटर उद्योग को अमेरिका की बराबरी पर लाने का प्रयास किया। ज्ञान आधारित उद्योग पर जोर के संदर्भ में पहले उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स पर जोर दिया गया और रोबोट तक उसका विस्तार किया गया। वाहन उद्योग के क्षेत्र में, जहां 1950 में जापान ने कुल 1,600 कारें बनाई थीं, वहीं 1980 तक वह अमेरिका से एक करोड़ 10 लाख अधिक कारों का निर्माण कर रहा था।

जापान ने चुनिंदा सुरक्षा और आर्थिक सहायता की मदद से इस वृद्धि को प्राप्त किया। प्रारंभ में विदेशी कारों के लिए शुल्क दरें हुआ करती थीं। जब इस पर आपत्ति की गई तो, उसने उन बड़ी कारों और तिपहिया वाहनों की अनुमति दे दी जिनकी मांग नहीं थी। साथ ही साथ, उसने "छोटी कार" की परिभाषा को विस्तृत कर 2,000 सी.सी. तक की कारों को उसमें शामिल कर लिया। शुल्क दरों को 1970 के दशक में ही हटाया गया, और 1980 तक बाजार में विदेशी कारों का अंश केवल 1 प्रतिशत था।

सन् 1982 में नाकासोने यासुहिरो प्रधान मंत्री बना, और आने वाले वर्षों में उसने एक नयी कार्य शैली बनाई। नाकासोने की राजनीति का मूलभूत आधार युद्ध पश्चात् के हिसाबों को चुकता करना था जापान ने प्रधान मंत्री सातो के नेतृत्व में ओकीनावा पर फिर से नियंत्रण कर लिया था, और तनाका के शासन काल में चीन के साथ संबंध शुरू कर दिए थे। नाकासोने जापान को पश्चिमी गठबंधन का एक मजबूत और सक्रिय सदस्य बनाना चाहता था। उसकी सक्रिय कूटनीति इसी आकांक्षा का एक अंग थी उसने दक्षिण कोरिया को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराके और उसके साथ व्यापारिक अनुबंध करके उसके साथ और भी मजबूत संबंध बना लिये। उसने अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रेगन के साथ व्यक्तिगत मित्रता भी कर ली।

जापान के अंदर नाकासोने ने प्रशासनिक सुधार लागू करने का काम किया। नीति निर्माण के लिए उसने कुछ विशेषज्ञ समितियां गठित कीं, जिनके विषय में आलोचकों ने यह कहा कि इन समितियों ने डायट की अवहेलना करके जनतांत्रिक प्रक्रिया को नष्ट किया। नाकासोने ने जो कदम उठाए; उनमें से 1985 में उसकी यासुकुनी स्थल की सरकारी यात्रा ने जापान के अंदर भी और चीन जैसे बाहरी देशों में भी विवाद खड़ा कर दिया। यासुकुनी स्थल वह स्थल था जहां 1894-95 के चीन-जापान युद्ध से युद्ध में मृत लोगों को समाधिस्थ किया जाता था। नाकासोने की इस यात्रा को सैन्यवाद की वापसी के रूप में देखा गया क्योंकि इससे राज्य और धर्म की पृथकता का उल्लंघन होता था। लेकिन अनेक गुटों ने इसे एक अत्यधिक स्वाभाविक राष्ट्रभक्ति की अभिव्यक्ति भी माना।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नाकासोने का जोर केवल रचनात्मकता बनाने पर नहीं, बल्कि राष्ट्रभक्ति की भावना का निर्माण करने पर भी रहा। राष्ट्रभक्ति पर इस जोर का उदारवादियों ने विरोध किया; क्योंकि वे उसे युद्ध-पूर्व के उन राष्ट्रीय उद्देश्यों की वापसी मानते थे, जिसने जापान को युद्ध और विस्तारवाद में झोंका था।

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में, जापान के उसके व्यापारी सहभागियों के साथ बढ़ते असंतुलनों ने जापान को कड़ी आलोचना का केंद्र बना दिया। 1986 में माएकावा प्रतिवेदन में अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के उपाय निश्चित किए गए। इस समिति का अध्यक्ष जापानी बैंक का एक भूतपूर्व गवर्नर था। इस प्रतिवेदन में यह भी सुझाव दिया गया कि अधिक जोर लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारने के लिए सामाजिक पूंजी बनाने पर दिया जाए। जापान का व्यापार अधिशेष एक समस्या बनता जा रहा था। 1987 में येन के बढ़े मूल्य के कारण व्यापार अधिशेष 96 अरब डालर तक पहुंच गया, जिस पर अमेरिका की प्रतिक्रिया हुई।

अमेरिकी प्रतिक्रिया इस तर्क पर आधारित थी कि जापान ने "उन्मुक्त व्यापार" अपना लिया था। दूसरे शब्दों में, जापान ने अपनी सुरक्षा के लिए कोई धन खर्च नहीं किया था, और इस बचत को आर्थिक वृद्धि और व्यापार की दिशा में लगा दिया था। अमेरिकी आलोचकों का तर्क था कि जापान को अपने बाजारों को मुक्त कर देना चाहिए और रूढ़ वितरण व्यवस्था जैसे गैर शुल्क दर बंधनों को हटा देना चाहिए जिनके चलते विदेशी कंपनियों के लिए जापान में बिक्री करना कठिन हो रहा था। इन आलोचकों के अनुसार जापान को अपने प्रतिरक्षा व्यय का एक बड़ा अंश स्वयं वहन करना चाहिए था।

नाकासोने ने दूर संचार और जापान राष्ट्रीय रेल मार्ग जैसी सरकारी एकाधिकार संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण समाप्त करने के लिए भी कदम उठाए। रेल मार्ग को छह क्षेत्रीय समूहों में बांट दिया गया, और स्वदेशी टेलीफोन कंपनी, एन टी टी का निजीकरण कर दिया गया। नाकासोने का प्रभाव जबरदस्त था। उसी के बूते पर उसने 1986 में अपने एल डी पी की अध्यक्षता की दो अवधियां समाप्त होने के बाद एक अतिरिक्त वर्ष ले लिया। लेकिन उसके अंतिम वर्ष में पार्टी की लोकप्रियता में गिरावट आई जिसका कारण अलोकप्रिय कर संबंधी क़दम थे। लेकिन, नाकासोने के अपने उत्तराधिकारी ताकोशिता नोबोरू के चयन में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

नाकासोने मंत्रिमंडल का दौर, वह दौर था जब जापान ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों में कहीं अधिक स्पष्ट भूमिका निभानी शुरू की। जापान के अंदर नाकासोने ने जो मुद्दे खोले और कार्यक्रम रखे वे आज भी राजनीतिक कार्यक्रमों का अंग हैं। लेकिन, चुनाव प्रक्रिया में सुधार और राजनीतिक कोषों को विनियमन के मामले में बहुत सफलता नहीं मिली, और ये समस्याएं जापानी राजनीति के लिए आज भी बनी हुई हैं।

जापान के विदेशी संबंधों का संचालन उसकी सुरक्षा की सुनिश्चितता देने वाले अमेरिका के साथ गठबंधन के ढांचे के अंदर हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि 1970 के दशक तक जापान ने अपने पड़ोसी देशों के साथ फिर से संबंध बनाने की दिशा में लगभग कोई भी क़दम नहीं उठाए। युद्ध की समाप्ति पर जापान के हाथों नुकसान उठाने वाले देशों को क्षतिपूर्ति का मामला सुलझा लिया गया था, लेकिन सोवियत संघ के साथ कोई शांति समझौता नहीं किया गया। चीन के साथ भी जापान ने अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन की चीन यात्रा के बाद ही संबंध सामान्य किए।

जापान ने अपनी युद्ध काल की विरासत से मुक्ति पा ली और 1965 में दक्षिणी कोरिया के साथ अपने संबंध सामान्य कर लिए, लेकिन जो कोरियाई जबरन जापान से आए थे उनकी समस्या जैसी की तैसी बनी रही। अमेरिका के साथ गठबंधन के कारण होकैडो के उत्तर में स्थित द्वीपों के आधिपत्य को लेकर जापान के सोवियत संघ के साथ संबंध गड़बड़ रहे।

जापान की विदेश नीति अब और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का प्रयास कर रही है, क्योंकि जापान ने आर्थिक शक्ति अर्जित कर ली है, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह विकासशील देशों को अपनी आर्थिक सहायता में वृद्धि कर रहा है। जापान और अमेरिका तथा यूरोपीय समुदाय के बीच व्यापारिक और आर्थिक तनाव भी बढ़ रहे हैं, और इसकी सीमित बाजार और अनुचित ढंग से विदेशी प्रतिद्वंद्वियों को बाहर रखने की नीति की जो आलोचना हुई है, उसके कारण जापान ने इस डर से विकासशील देशों में पूंजी निवेश शुरू कर दिया है कि कहीं उनके बाजारों से उसे बाहर न रखा जाए।

बोध प्रश्न 2

1) जापान ने तेज आर्थिक वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए क्या कदम उठाए? 15 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

2) जापान की "तेल आघात" पर क्या प्रतिक्रिया रही? 5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

3) आज की दुनिया में आप जापान की भूमिका को किस रूप में लेते हैं? 10 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

26.6 सारांश

द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की हार हुई और मित्र शक्तियों ने उस पर आधिपत्य कर लिया, लेकिन वास्तव में आधिपत्य करने वाली प्रमुख शक्ति अमेरिका थी। अमेरिका ने स्कैप के माध्यम से जापान को सुधारने और उसे एक विस्तारवादी ताकत न बनने देने के लिए उपाय किए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने जापान की राजनीति और समाज को जनतांत्रिक बनाने के लिए कदम उठाए और संविधान को फिर से लिखा।

लेकिन, कोरियाई युद्ध छिड़ने और अमेरिका के नीतिगत उद्देश्यों के कारण अमेरिका ने जापान को एशिया में अपना एक मजबूत मित्र बनाने की दिशा में काम किया। इसलिए, उसने सुधार कार्यों को वापस लेना शुरू कर दिया और रूढ़िवादियों के साथ काम करके एक मजबूत और स्थिर समाज और एक प्रबल मित्र बनाना सुनिश्चित किया।

सान फ्रांसिस्को की शांति संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद जापान ने अपनी अर्थव्यवस्था को फिर से बनाने का काम शुरू किया और विश्व के मामलों में कोई भूमिका नहीं निभाई। आर्थिक वृद्धि पर पूरा ध्यान देना इसलिए संभव हुआ क्योंकि अमेरिका ने जापान की सुरक्षा की व्यवस्था की। प्रतिरक्षा और सेना पर तो कोई धन व्यय होना नहीं था, इसलिए स्वाभाविक था कि प्रतिरक्षा पर भारी व्यय करने वाले अन्य राष्ट्रों के मुकाबले जापान में आर्थिक विकास कहीं तेजी से होता, जिन नीतियों को अपनाया गया उनके अनुसार एक सुरक्षित किंतु प्रतिस्पर्धा पूर्ण बाजार का निर्माण हुआ, और सरकार ने उद्योग के साथ मिलकर उन उद्योगों का पता लगाया जो जापान को एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभारने के लिए आवश्यक थे, उन्होंने इन उद्योगों को पनपाया भी। कुछ जगह विफलता भी मिली। लेकिन, व्यवस्था लचीली और समायोजक थी जिसके चलते प्रौद्योगिकी का शुद्ध आयातक जापान 1980 के दशक तक उन्नत प्रौद्योगिकी का निर्यात कर रहा था।

जापानी राजनीति की विशेषता एक ही पार्टी एल डी पी का वर्चस्व रहा, जिसकी शक्ति और लंबा काल ठोस ग्रामीण समर्थन और व्यापारियों और नौकरशाही के साथ घनिष्ठ संबंधों की देन रहा। इन गुटों के साथ मिलकर उसने जापान को उच्च वृद्धि की ओर पहुंचाया और कोई भी इस व्यवस्था के लिए खतरा खड़ा नहीं करना चाहता था। समाजवादी और क्रांतिकारी गुट सक्रिय रहते हुए भी राजनीतिक दृष्टि से हाशिये पर ही रहे।

जापान में इस समय बहस चल रही है और वह अपनी भावी प्राथमिकताएं तय करने का प्रयास कर रहा है। वह दुनिया के मामलों में कोई भूमिका निभाने के लिए विकसित कर रहा है। इसका प्रभाव इस पर भी पड़ेगा कि वह किस प्रकार के समाज का निर्माण करता है। क्या जापानी समाज और भी मुक्त होगा और एक बेहतर सामाजिक वातावरण बनाने पर जोर देगा या अधिक आरामदेह जीवन शैली उच्च उत्पादकता और आर्थिक मजबूती को खतरे में डाल देगी? ये वे सवाल हैं जिन पर बहस चल रही है। जापान की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका के संबंध में भी यही स्थित है। क्या जापान अमेरिकी गठबंधन को अपनी विदेश नीति का आधार बनाकर काम करता रह सकता है या उसके लिए दुनिया के मामलों में कहीं अधिक स्वाधीन भूमिका अपनाने की आवश्यकता है? यह भूमिका क्या होगी? क्या अपने विशाल आर्थिक संसाधनों के साथ जापान तीसरी दुनिया के देशों के विकास कार्यक्रम में कोई भूमिका निभा सकता है या उसकी रुचि केवल एकीकृत बाजार बनाकर अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अपनी शक्ति सुनिश्चित करने में है? शेष विश्व के साथ जापान का भविष्य घनिष्ठता से जुड़ा है और जापान ने तोकुगावा काल के उन वर्षों से एक लंबी यात्रा तय की है, जब वह दुनिया से बिल्कुल कटा हुआ था।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अमेरिकी आधिपत्य अधिकारी चाहते थे :

   क) अमेरिका में जापान की पैठ को रोकना ।

   ख) जापान में एक जनतांत्रिक और जिम्मेदार सरकार की स्थापना करना।

   ग) सैन्यवाद के ढांचे को समाप्त करना, देखिए 26.3 ।

2) अपने उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल कीजिए:

   क) जापान की औद्योगिक क्षमता को कम करने के लिए स्कैप के विभिन्न प्रयास।

   ख) जैबात्सू को भंग करना।

   ग) व्यापक भूमि सुधार आदि, देखिए 26.3.2।

3) देखिए 26.3.3

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 26.4.1 और 26.4.2

2) अपने उत्तर के लिए 26.5 को आधार बनाइए और जापान की ऊर्जा के उपभोग में कटौती की नीतियों को उसमें शामिल कीजिए।

3) देखिए 26.5 का अंतिम अंश।

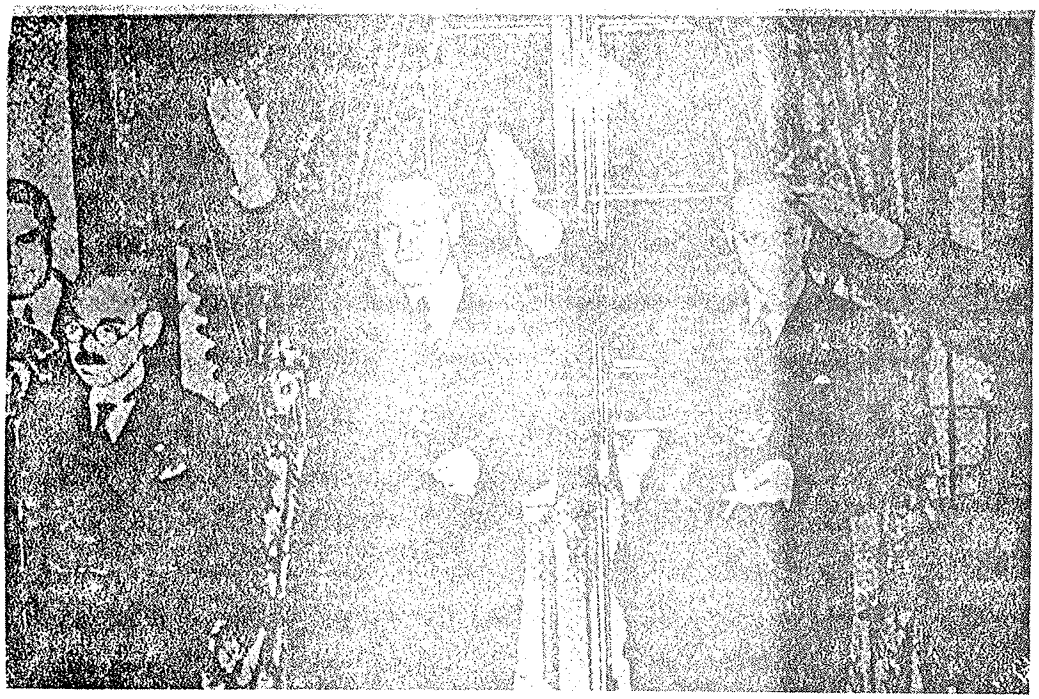

1. **जापान एक्सिस शिविर** में शामिल। विदेश मंत्री मातसुओके द्वारा त्रिपक्षीय संधि **पर हस्ताक्षर किए जाने का ऐलान।** उनके बाँये ओर चश्मा पहने खड़े हैं जनरल यूजेन ओट।

2. प्रधानमंत्री जनरल हिदेकी तोजो

3. गुआडाल नहर पर हुए युद्ध में पच्चीस हजार जापानियों की मौत

4. गुआडाल नहर पर स्थापित दुश्मन के अड्डे पर बम-वर्षा का निर्देश देते हुए जनरल यामा मोटो

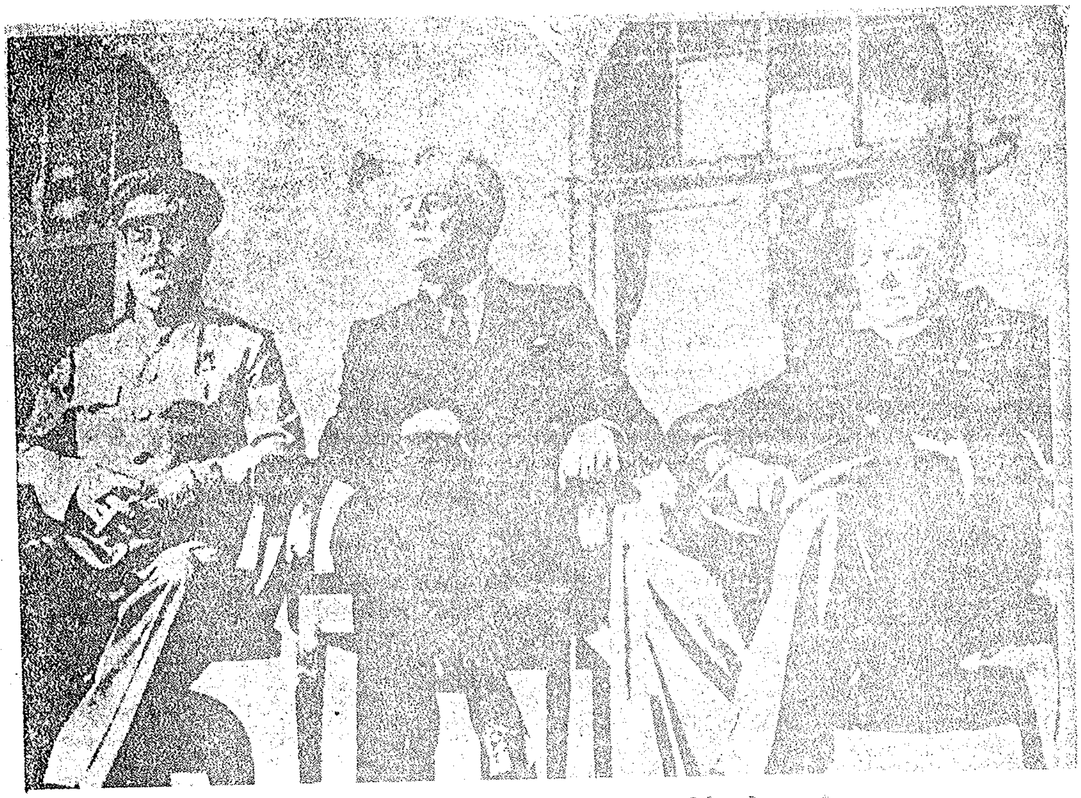

5. तहरान में तीन महारथियों स्तालिन, रूज़वेल्ट और चर्चिल की प्रथम बैठक

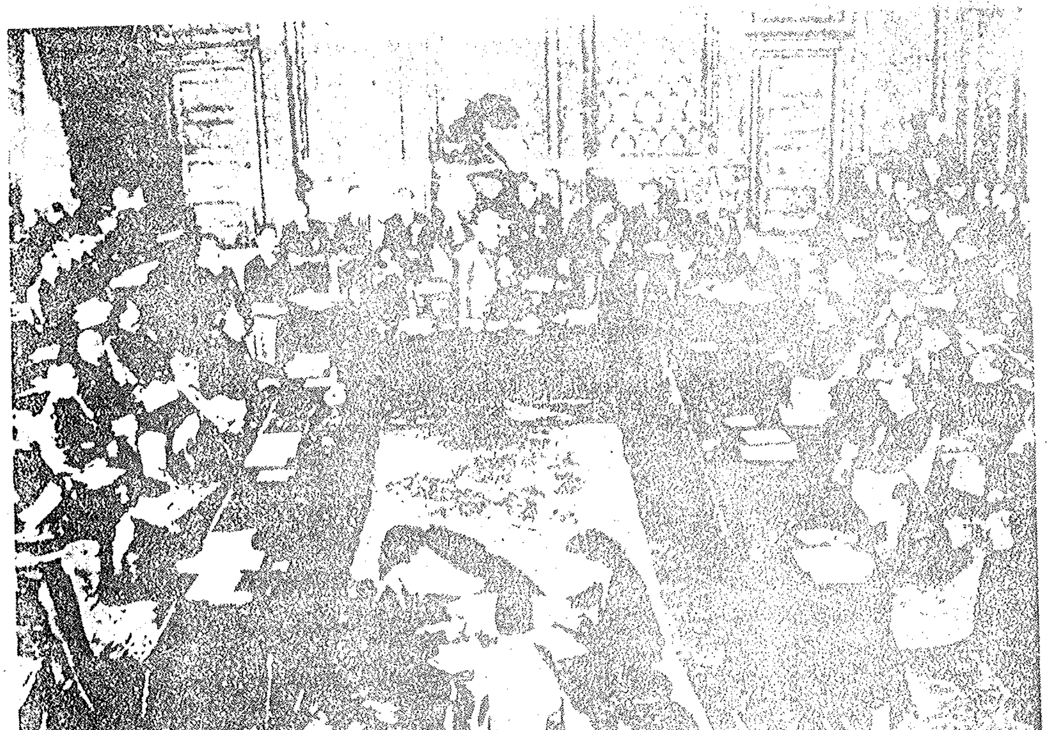

6. महान् पूर्वी एशियाई सम्मेलन टोकियो में सम्पन्न हुआ। तोजो ने इसकी अध्यक्षता की।

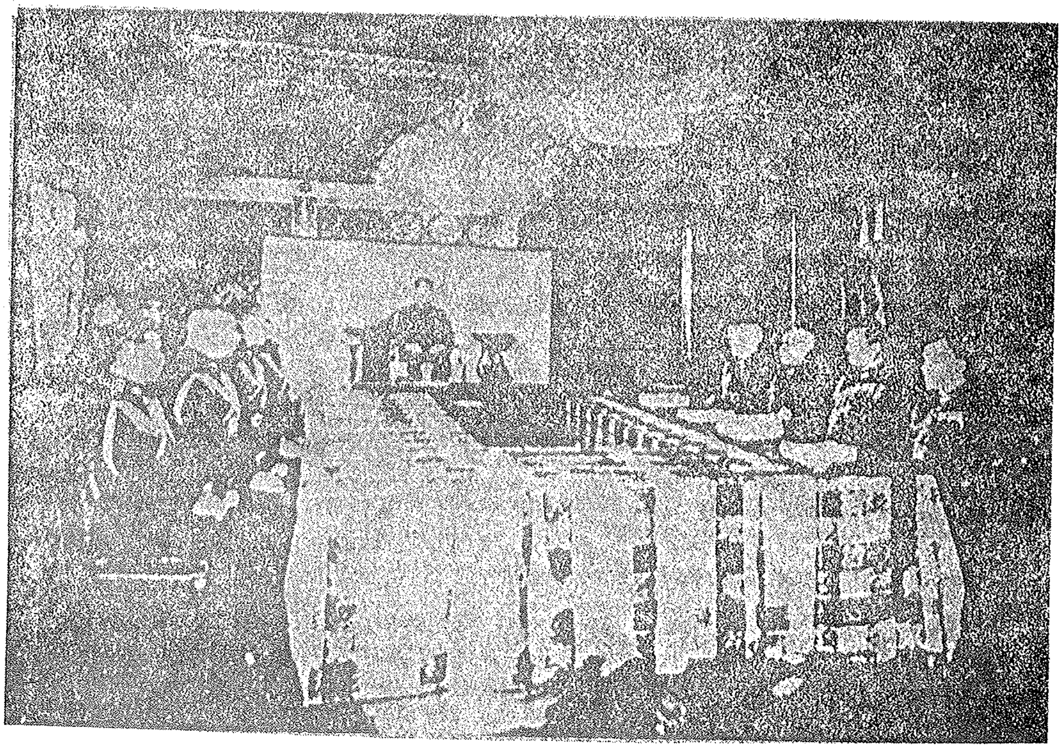

7. सर्वोच्च कमान राजमहल में सम्राट से मुलाकात करते हुए

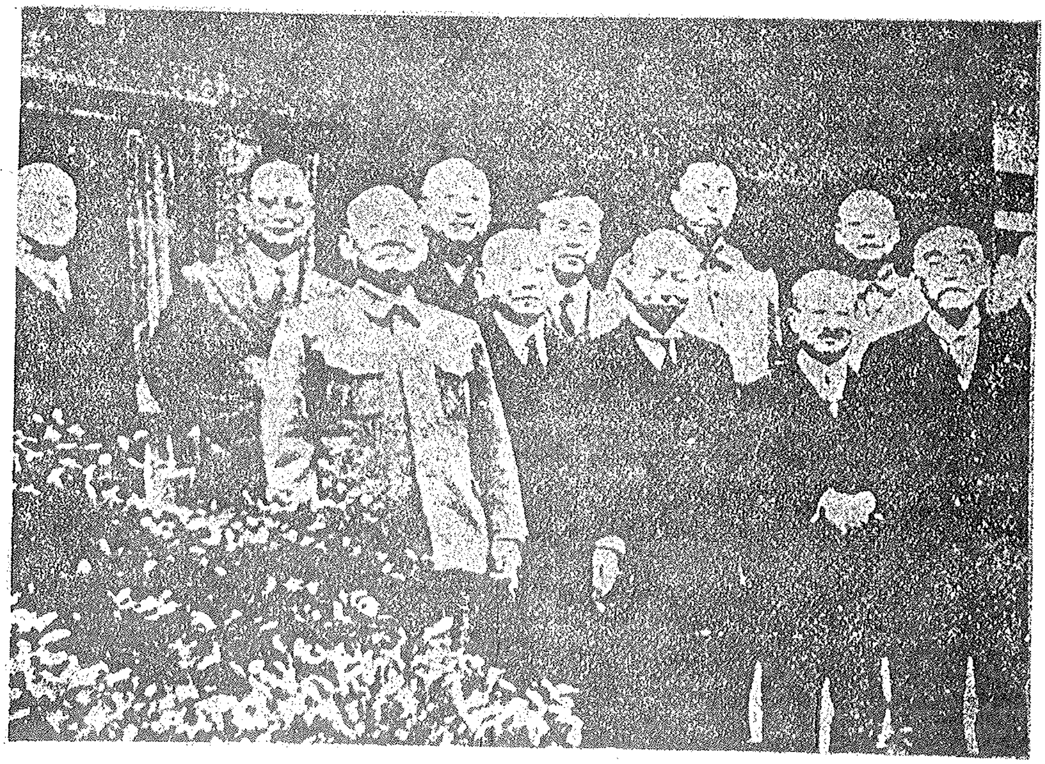

8. सुशी पार्टी के सदस्य शीघ्र शांति स्थापना का प्रयत्न करते हुए

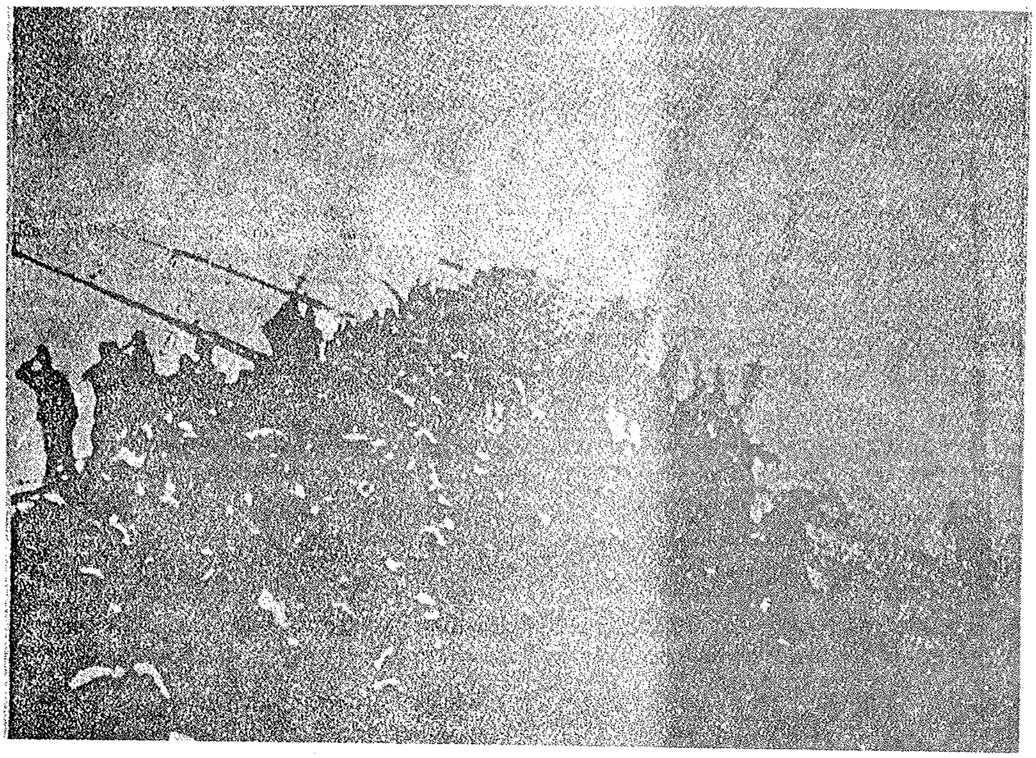

ड्बता जापानी जहाज

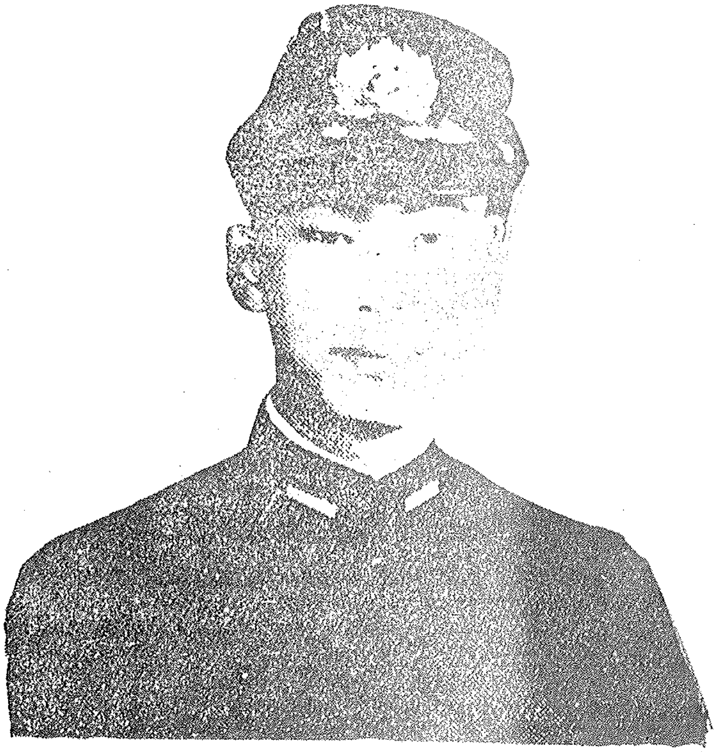

10. युद्ध में बचा मात्र एक व्यक्ति, औसाइ तोशिहिको **ओहनो**

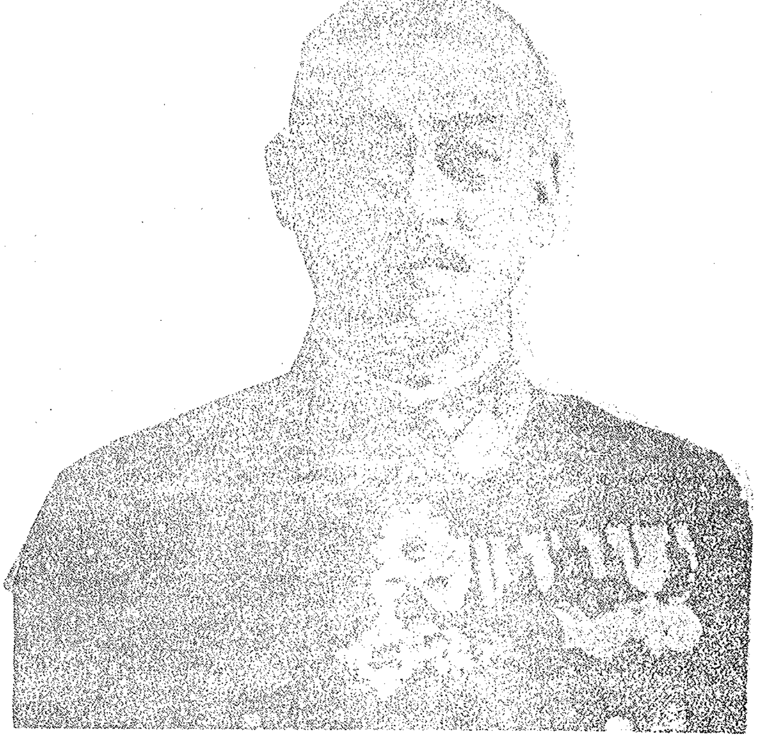

11. ओकिनावा का सेनाध्यक्ष जनरल मित्सुरू उशिजिमा

12. नौसैनिक कामिकाजे इकाइयों का अध्यक्ष एडमिरल मातोमे उगाकी, जो आत्मसमर्पण के दिन गायब हो गया था।

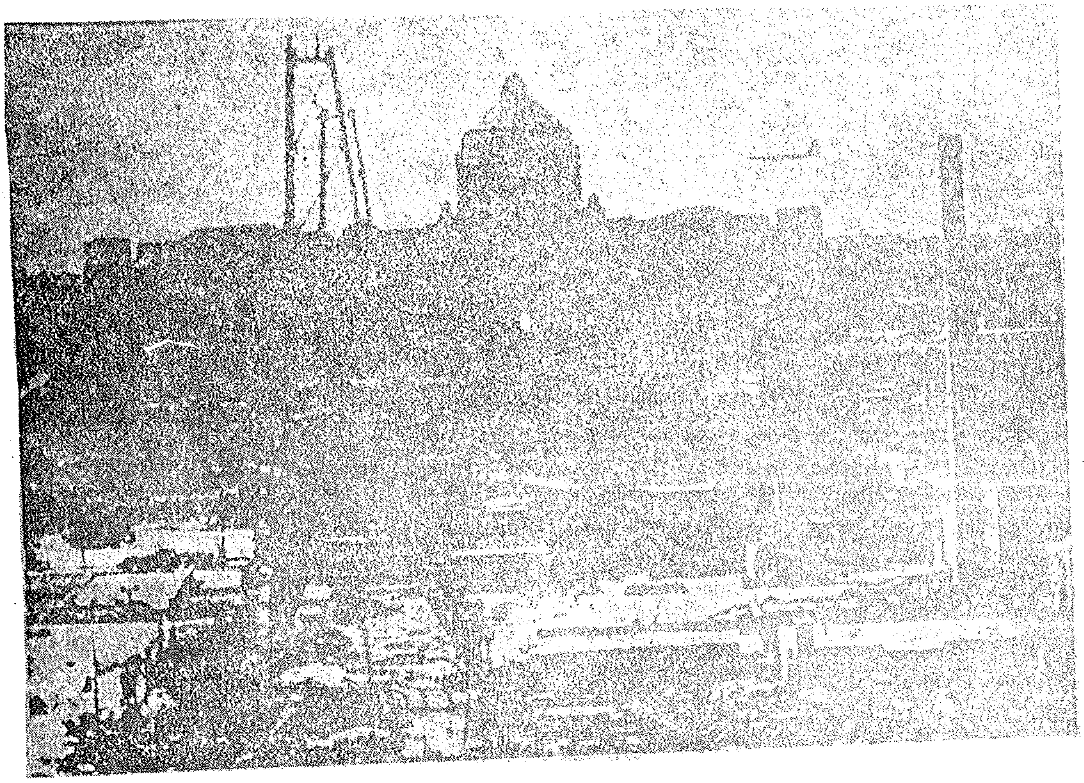

13. डायट भवन के ऊपर उड़ता एयरक्राफ्ट डिफेंसलेस टोकियो, बी-29

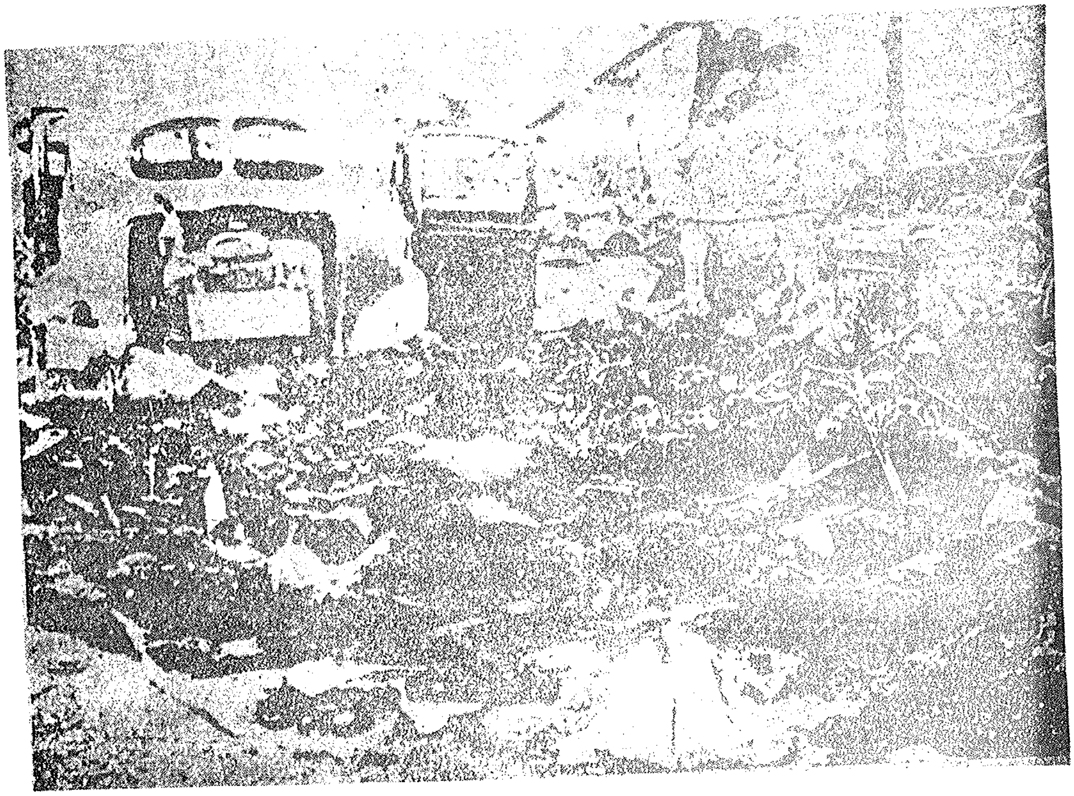

14. 10 मार्च 1945, को टोकियो में हुई बम-वर्षा के परिणामस्वरूप बिखरा मलबा

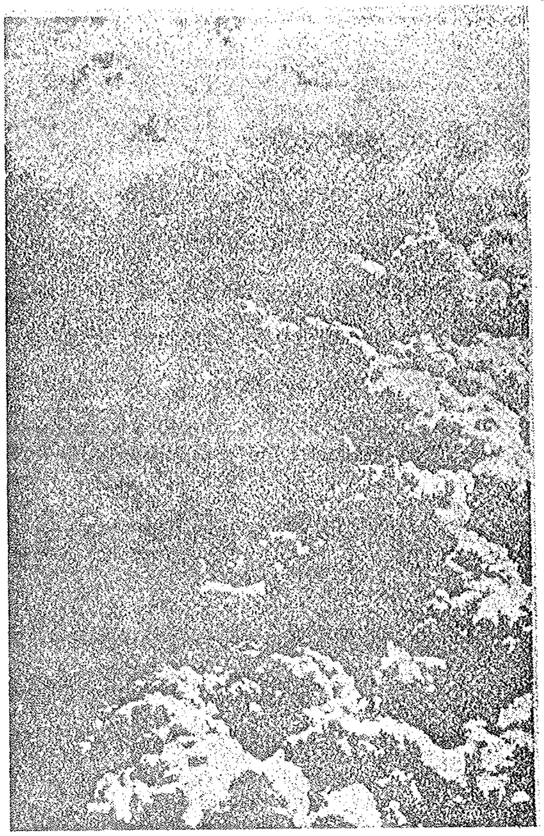

15. हिरोशिमा में बम विस्फोट का ज़मीन के दो मील ऊपर से लिया गया चित्र

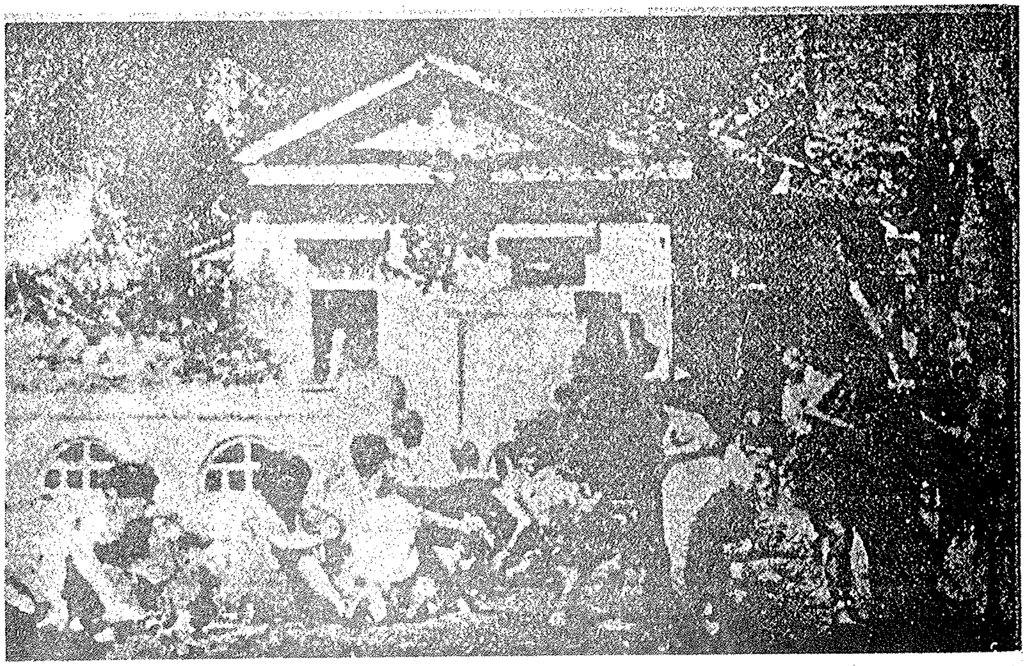

16. हिरोशिमा में एक हज़ार व्यक्तियों की जानें गयीं।

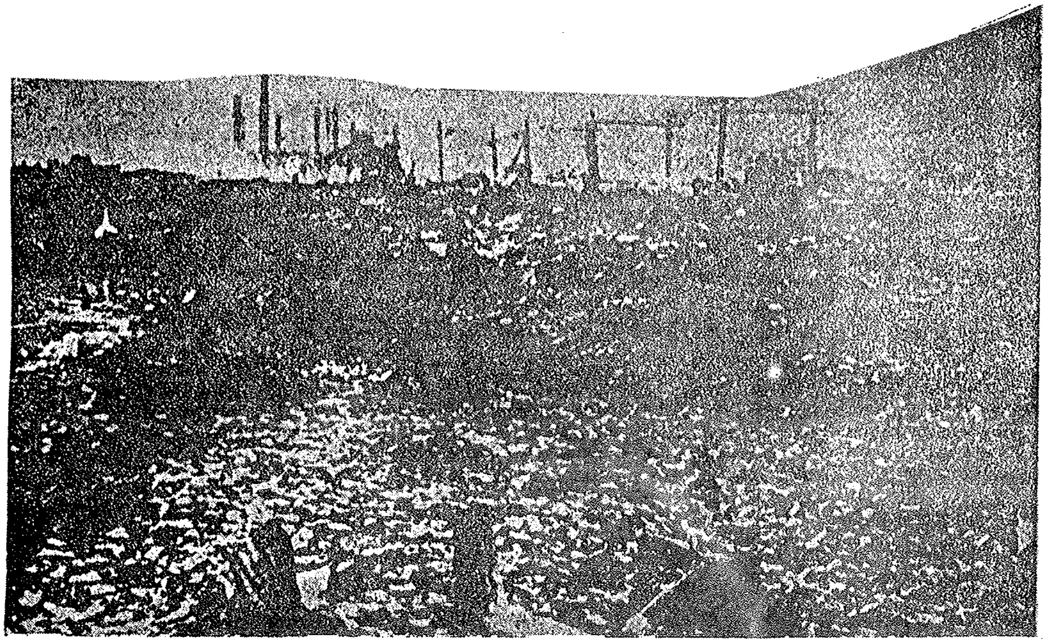

17. युद्ध की मार से बरबाद नागासाकी; बरबादी का हृदयविदारक दृश्य

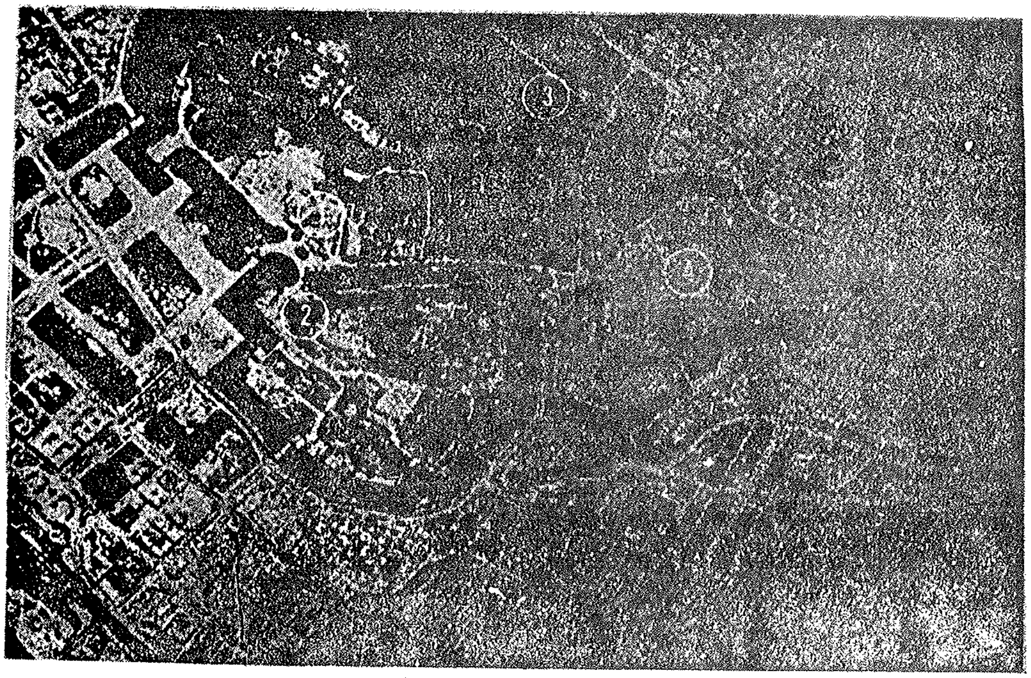

18. ध्वस्त राजमहल। राजमहल के विभिन्न भागों को अंको के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है।

19. थल सेनाध्यक्ष, जनरल योशिजीरो उमेज़ू

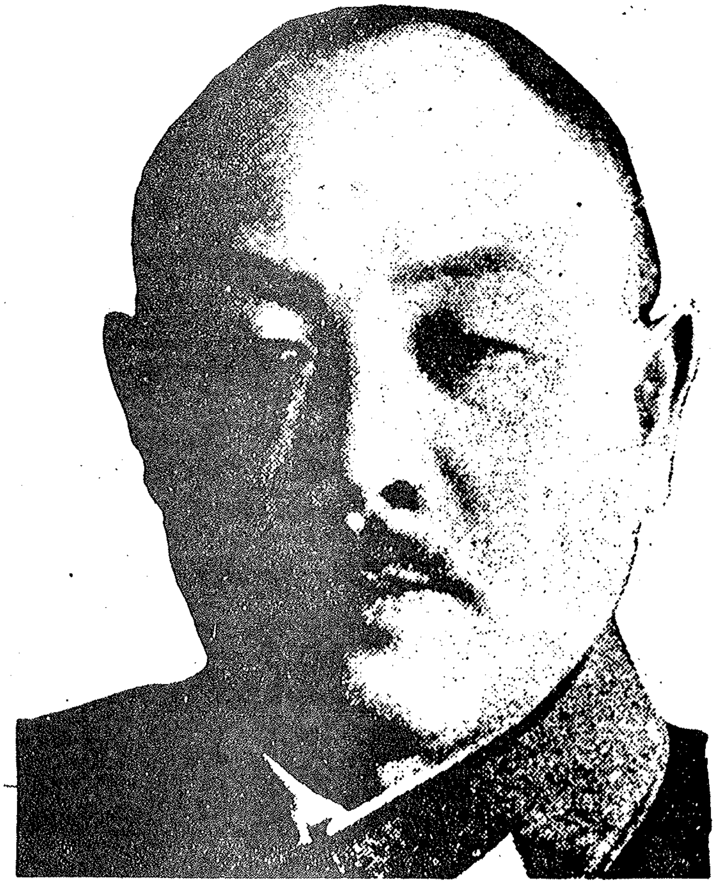

20. युद्ध मंत्री जनरल कोरेशिका अनामी

21. विद्रोह का नेता मेजर केन्ज़ी हातानाका

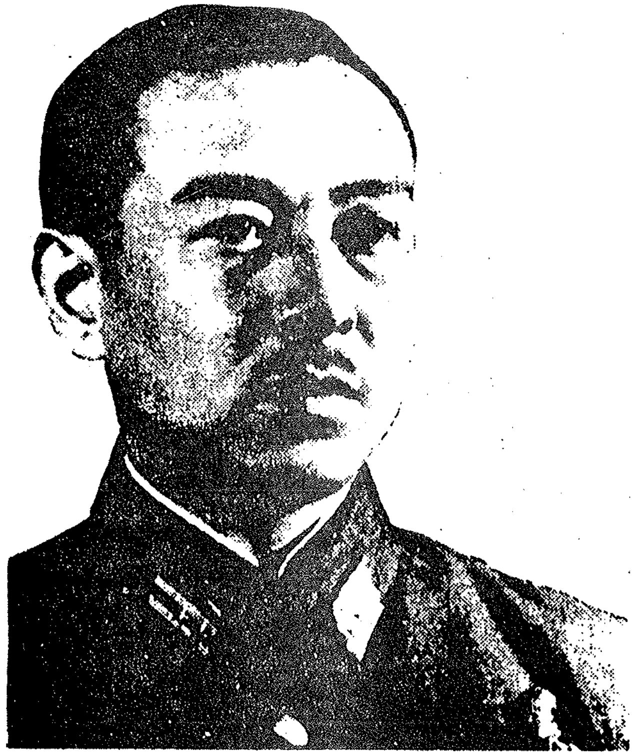

22. विद्रोह का प्रमुख पदाधिकारी कर्नल मासाहिको ताकेशिता

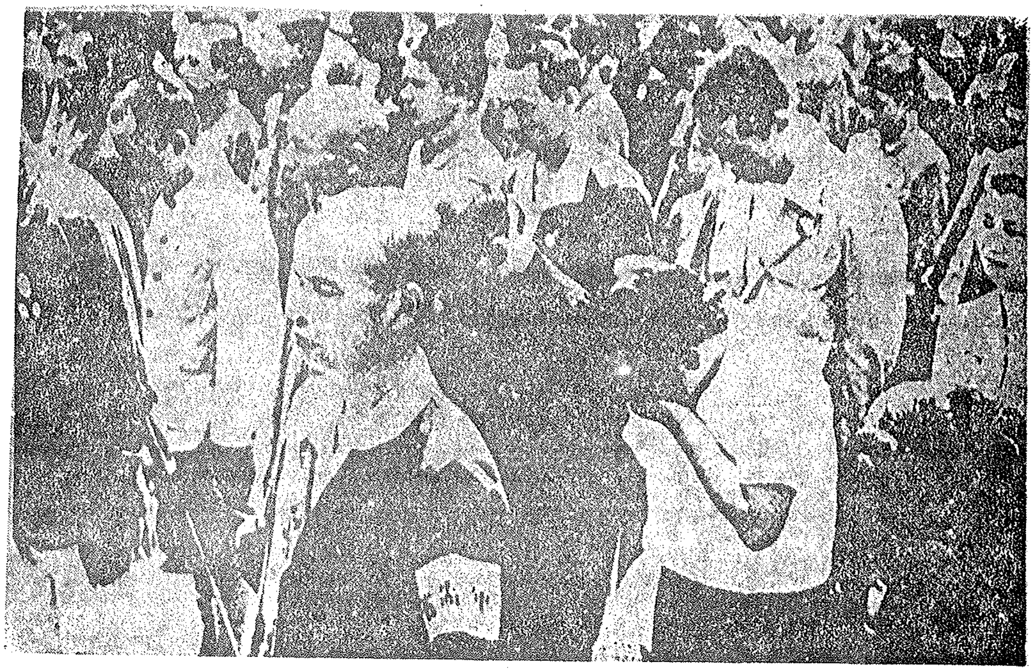

23. 15 अगस्त, 1945 को आत्मसमर्पण की उद्घोषणा को क्रन्दन और खामोशी के साथ सुनते हुए जापानी।

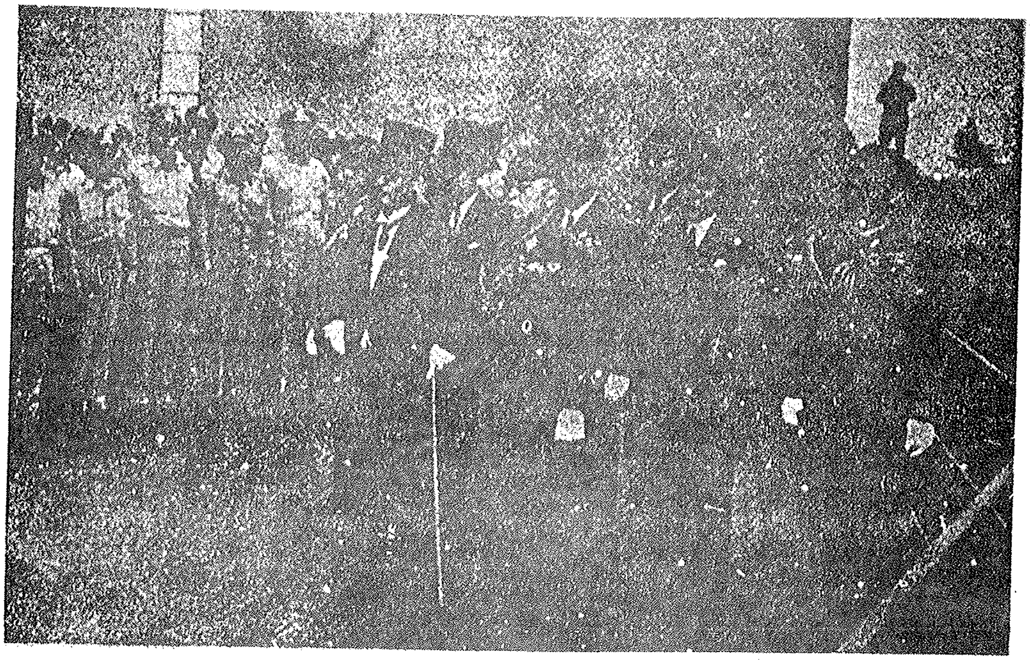

24. मिसौरी में आत्मसमर्पण। विदेश मंत्री शिगेओमित्सु और सेनाध्यक्ष उमेज़ु जापानी प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करते हुए।

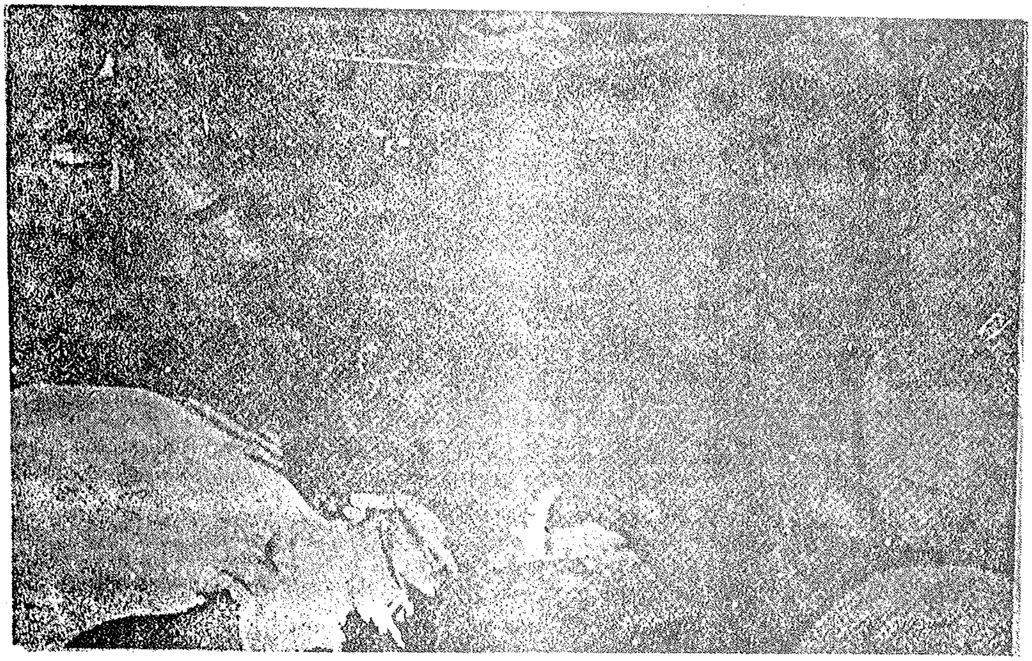

25. हिरासत में लिए जाने के पूर्व भूतपूर्व प्रधानमंत्री हिदेकी तोजो द्वारा आत्महत्या का असफल प्रयास।

26. पश्चिम पर एशिया की श्रेष्ठता को दर्शाता हुआ 1943 का एक जापानी विज्ञापन

Notes

Notes

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-06
इतिहास
चीन और जापान का इतिहास (1840-1949)

खंड

7

क्रांति के बाद का चीन

इकाई 27

क्रांति पश्चात् के घटनाक्रम, 1911-1917 5

इकाई 28

सांस्कृतिक आंदोलन 22

इकाई 29

विदेशी पूंजी निवेश और नव वर्ग का उदय 36

इकाई 30

राष्ट्रवाद का उदय 49

चित्र 59

खंड 7 क्रांति के बाद का चीन, 1911-21

1911 में मांचू शासन के तख्ता पलट ने न सिर्फ एक साम्राज्य को समाप्त किया, बल्कि राज्य तंत्र की समूची व्यवस्था का अंत कर दिया। इस घटना को 1911 की क्रांति के नाम से जाना जाता है। लेकिन 1911 के बाद के घटना क्रम से यह स्पष्ट हो गया कि राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन मात्र से समूचे समाज में वास्तविक परिवर्तन नहीं हो जाता। राजनीतिक परिवर्तन सम्पूर्ण परिवर्तन के लिये एक कारण मात्र हो सकता है। मांचू सत्ता से हट गये थे, परंतु नये सत्ताधारी भी उतने ही भ्रष्ट तथा असक्षम थे। चेहरे बदल गये थे लेकिन विचारधारा वही पुरानी थी और सत्ता के सामाजिक-राजनीतिक ढांचे अभी भी उसी पुरानी चुकी हुई विचारधारा पर आधारित थे। उसी पुरानी विचारधारा और ढांचे के तहत कोई अर्थ-पूर्ण परिवर्तन संभव ही नहीं था।

इस काल में राजनीतिक अस्थिरता, झगड़े और हिंसा का बोलबाला रहा। 1911 की क्रांति से सत्ता में एक शून्य पैदा हुआ और इस शून्य को सैन्यवादियों ने भरा क्योंकि इस राजनीतिक शून्य का लाभ उठाने के लिये उस समय चीन में जनाधार वाले राजनीतिक संगठन तथा एक सशक्त विचारधारा का अभाव था। चिंग साम्राज्य का विरोध या तो गुप्त संस्थाओं ने किया था या फिर अपने अनुयायियों के साथ सैन्यवादियों ने। इसलिये स्वाभाविक ही था कि क्रांति के बाद इनमें से सबसे अधिक संगठित गुट-सेना के हाथों में सत्ता पहुँचे।

युआन शिकाइ ने 1912 से 1916 तक अपने कुशासन में नवोदित सभी प्रतिनिधि संस्थाओं को नष्ट कर दिया। अपने शासन काल में उसे हमेशा चीन के किसी हिस्से में वैकल्पिक प्रतिद्वन्द्वी सरकार बनने का खतरा बना रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् चीन में सत्ता के कई केन्द्र उभरे और अगले एक दशक तक चीन कई शक्तियों के नियंत्रण में रहा। 1916 के बाद का समय युद्ध सामंतवाद का समय था और इसने न सिर्फ चीन की राजनीति का ह्रास किया बल्कि उसके आर्थिक, सामाजिक तथा अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर भी प्रतिकूल असर डाला। 1927 में युद्ध सामंतों का सफाया तो हो गया लेकिन आने वाले समय में चीन की राजनीति में सेना एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में उभर कर सामने आई। इसके परिणामस्वरूप चीन संवैधानिक लोकतंत्र या किसी भी प्रकार की प्रतिनिधि सरकार से वंचित रहा। सारे "राजनीतिक समाधान" बुनियादी तौर पर "सैन्य समाधान" ही रहे। इसलिये 1911 के विप्लव को "असफल क्रांति" का नाम भी दिया गया है।

1911 के बाद दो महत्वपूर्ण किन्तु विरोधी प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। ये प्रवृत्तियाँ थीं— जापानी साम्राज्यवाद की नई ऊँचाइयों तक पहुँच तथा उससे निपटने के लिये चीनी राष्ट्रवाद का उदय, और कुछ अन्य प्रकार के साम्राज्यवाद का उदय, जिनका चीन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने के तुरंत बाद जापान ने चीन पर "इक्कीस मांगे" थोप दीं। चीन के जागरूक जनमत ने इसका जोर-शोर से विरोध किया। चीन के तानाशाह और निरंकुश सत्ताधारी चीन के भविष्य के बारे में चीनी जनता के डर और असुरक्षा को दूर करने में असमर्थ थे। चीन विश्व युद्ध के विजेताओं के खेमे में था, फिर भी युद्ध के बाद जापान ने शांतुंग पर जर्मनी के अधिकारों के हस्तांतरण की मांग की। अन्य यूरोपीय शक्तियों तथा अमेरीका ने इस मांग का समर्थन किया जिसे चीन ने अपने साथ विश्वासघात माना। इस कारण ने युवा, बुद्धिजीवी, मजदूर, व्यवसायी तथा व्यापारियों को एक साम्राज्यवाद विरोधी संगठित मोर्चे के रूप में एकत्रित किया। ये सभी साम्राज्यवाद से अंत तक लड़ने के लिये दृढ़ संकल्प थे। इस दृढ़ संकल्प की नाटकीय और हिंसक अभिव्यक्ति हुई चार मई 1919 की घटनाओं में जिनमें पीकिंग के छात्रों ने वर्साय की संधि के विरोध में सामूहिक प्रदर्शन किये। इस समय के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी चीन की यह मांग कि सभी राष्ट्रों के समूह में चीन को भी एक सम्पूर्ण राष्ट्र का दर्जा मिले और उसके साथ समानता का व्यवहार किया जाये। इसी कारण से इस काल को आधुनिक राष्ट्रवाद के उदय का काल भी कहा जा सकता है।

उदित होते राष्ट्रवाद के साथ-साथ चीनी बुद्धिजीवियों की इच्छा कन्फ्यूशियसवाद से अधिक बेहतर सांस्कृतिक परिवर्तन की भी थी। नये विचारों, धारणाओं, तथा विचारधाराओं को भी धीरे-धीरे स्वीकार किया गया। समाज के शिक्षित वर्ग ने इस क्षेत्र में पहल की।

बहस और गोष्ठियों के द्वारा बुद्धिजीवियों ने युवाओं का ध्यान चीन में सांस्कृतिक परिवर्तन की आवश्यकता की ओर आकर्षित कराया। इसमें "न्यू यूथ" नामक पत्रिका तथा पीकिंग विश्वविद्यालय के शिक्षकों और छात्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस सांस्कृतिक परिवर्तन के कार्यक्रम में एक ओर नारी उत्थान तथा युवा शक्ति की स्थापना जैसे मुद्दे शामिल थे, तो दूसरी ओर साक्षरता के प्रसार, सामाजिक रूप से उत्तरदायी साहित्य और शिक्षा में सुधार पर भी बल दिया गया था। सामाजिक परिवर्तन की अभिलाषा, राष्ट्रवादी भावनाओं तथा चार मई के आंदोलन ने मिलकर चीन में एक नये युग का सूत्रपात किया। सांस्कृतिक परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा था कन्फ्यूशियसवाद पर सीधा और जोरदार प्रहार। 1911 के बाद शुरू हुई सांस्कृतिक क्रांति के प्रमुख स्तम्भ थे लोकतंत्र और विज्ञान। इसकी परिणति हुई एक नये तरह के बुद्धिजीवी वर्ग के उदय में जिनका रुझान बाहर की विचारधाराओं के प्रति भी था। इसने चीन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सूत्रपात किया जिससे अन्ततः चीनी साम्यवाद का जन्म हुआ।

1911-1919 का समय एक और मायने में भी महत्वपूर्ण था। इस काल में एक छोटे किन्तु आर्थिक और राजनीतिक रूप से सशक्त "बूर्जुआ" वर्ग का उदय हुआ। चीन में व्यापारी वर्ग तो पहले से ही था, लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप विदेशी प्रतिस्पर्धा की वापसी हुई जिससे स्थानीय चीनी व्यवसायों को बढ़ावा मिला। छोटे उद्योग और व्यापार चीनियों के हाथ में आ गये और उन्होंने कुशल व्यावसायिक प्रबन्धक के रूप में अपनी क्षमता का परिचय दिया। इस नये वर्ग ने अपनी आर्थिक क्षमता के कारण तथा व्यापार पर नियंत्रण के द्वारा राजनीति में अपना एक आधार बनाया। फिर भी, इस "बूर्जुआ" वर्ग के उदय के बावजूद चीन में औद्योगिक क्रांति नहीं आ सकी। इसका मुख्य कारण था चीनी अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशिक और सामंती दबाव, जो चीन में बड़े उद्योगों के विकास में बाधक थे। "बूर्जुआ" वर्ग की उपस्थिति के कारण श्रमिक वर्ग का भी उदय हुआ। इसी के साथ एक मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग भी सामने आया। इस प्रकार के समाज में राष्ट्रवाद तथा सांस्कृतिक परिवर्तन की अभिलाषा का जन्म हुआ।

यह साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद, रूढ़िवाद और उदारवाद, पिछड़ेपन और प्रगति का अर्थात् परस्पर विरोधी शक्तियों के सतत टकराव का काल था। इस टकराव और संघर्ष तथा विनाश और विकास के दौर से 1920 के दशक में एक नये चीन का जन्म हुआ।

इन सभी पहलुओं पर इस खंड की चार इकाइयों में चर्चा की गई है। इकाई 27 क्रांति के बाद की राजनीति से संबंधित है, तथा इसमें गणराज्य की स्थापना, सन यात सेन की भूमिका, कुओ मिंतांग, युआन शिकाइ तथा युद्ध सामंतवाद पर चर्चा की गई है। इकाई 28 नये सांस्कृतिक आंदोलन पर एक दृष्टिपात करती है। इकाई 29 नवोदित "बूर्जुआ" वर्ग तथा आर्थिक स्थितियों पर बहस करती है और इकाई 30 चीन में आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास पर चर्चा करती है।

आभार : इस खंड में चित्रों के लिये हम सांस्कृतिक केंद्र, चीनी दूतावास के आभारी हैं।

इकाई 27 क्रांति के पश्चात् के घटनाक्रम, 1911-1919

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य
27.1 प्रस्तावना
27.2 राजनीतिक अस्थिरता
27.3 युआन काल के पश्चात् की घटनाएँ
27.4 युद्ध सामंत और युद्ध सामंतवाद
27.4.1 सेनाएँ, गुट और राज्यतंत्र
27.4.2 युद्ध
27.4.3 युद्ध सामंत और विदेशी ताकतें
27.4.4 पीकिंग का दृष्टिकोण
27.5 युद्ध सामंतवाद और चीनी समाज
27.6 क्वोमिंतांग का उदय
27.7 चार मई की घटना
27.8 सारांश
27.9 शब्दावली
27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह समझा सकेंगे कि क्यों 1911 की क्रांति चीन में एक बेहतर राजनीतिक व्यवस्था कायम करने में विफल रही,
- चीन में सैन्यवाद के उदय के लिए उत्तरदायी कारणों को जान सकेंगे,
- क्वोमिंतांग के एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरने के बारे में, और इसके एक जनाधार वाली पार्टी न बन पाने के बारे में जान सकेंगे, और
- चार मई के आंदोलन की व्युत्पत्ति और इसके क्रांतिकारी चरित्र को समझ सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

चीन में 1911 में वंशीय शासन का अंत हो गया। इतिहासकारों ने इस घटना को क्रांति कहा है। राजनीति के क्षेत्र में, राजतंत्र का अंत एक महत्वपूर्ण घटना ही थी, लेकिन जहां तक समूची चीनी जनता का सवाल है, 1911 की क्रांति का कोई विशेष अंतर नहीं पड़ा। फिर भी, 1911-1919 के दौर में अनेक ऐसी घटनाएँ और घटनाक्रम हुए जिनका दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा। यह दौर राजनीतिक कलह, अस्थिरता और फूट का दौर रहा जिसकी परिणति युद्ध सामंतों के उदय में हुई। इन युद्ध सामंतों के उदय से चीनी राष्ट्र की एकता के लिए खतरा पैदा हो गया। तथाकथित गणतंत्र के प्रारंभिक वर्षों में संवैधानिक जनतंत्र की दिशा में कुछ प्रयास भी हुए, लेकिन वे सफल नहीं हुए। जिस क्वोमिंतांग ने अपनी गुप्त संगठन वाली विशेषताओं को त्याग दिया था और मांचू शासन का तख्ता पलटने में सक्रिय भागीदारी की थी, उसे अनेक परीक्षाओं और कठिनाइयों से गुजरना पड़ा। आने वाले वर्षों में वह एक मजबूत राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरी। जो भी हो, 1911-1919 के दौर की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत (इस पर इकाई 28 में विस्तार से चर्चा की गयी है)। बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में चलने वाले इस आंदोलन की शुरुआत 1915 के आसपास हुई और यह मई चार के आंदोलन तक अपने चरम पर पहुँच गया। इसके परिणामस्वरूप चीनी साम्यवादी पार्टी का

(1921 में) जन्म हुआ। इन आंतरिक घटनाक्रमों के अलावा, चीन की सीमा के बाहर की दो घटनाओं ने उस पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला :

1) पहला यूरोप में प्रथम विश्व युद्ध का छिड़ना, जिसमें जर्मनी की हार हुई और जापान ने चीन में जर्मनी के पहले के अधिपत्य पर अपना दावा कर दिया। (हम इकाई 21 में इक्कीस मांगों का विवेचन कर ही चुके हैं।)

2) दूसरा, रूस में अक्टूबर क्रांति का सफल होना। बोल्शेविक क्रांति ने चीन को काफी प्रेरणा दी। सोवियत राज्य ने पहले की कुछ असमान संधियों को स्वेच्छा से त्याग दिया। इसके फलस्वरूप सोवियत लोग तुरंत ही चीनियों के चहेते हो गये, और इस तरह सोवियत-चीनी सहयोग के एक लंबे दौर की शुरुआत हुई। सामान्य तौर पर कहा जाए तो, 1911-19 के दौर ने चीनी ज़नता के साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ने के निश्चय को दृढ़ कर दिया। इसके फलस्वरूप एक दृढ़निश्चयी और लोचदार राष्ट्रवाद का उदय हुआ।

इस इकाई में चीन के युद्ध सामंतवाद के दौर की भी चर्चा की गयी है, और क्वोमिंतांग के उदय और विस्तार और चार मई की घटना का भी विवेचन किया गया है।

27.2 राजनीतिक अस्थिरता

जनवरी 1, 1912 को नानकिंग में चीनी गणतंत्र की नयी सरकार कायम हुई। सन यात सेन इसका अंतरिम राष्ट्रपति बना। दूसरी ओर मांचू सेनाओं का भूतपूर्व सेनापति युआन शिकाइ था। युआन शिकाइ ने नव सेना का गठन किया था, लेकिन 1808 में वह मांचू दरबार की कृपापात्रों की सूची से बाहर कर दिया गया था। वह चीन का शासक बनने की महत्वाकांक्षा पाल रहा था। मांचू दरबार ने अभी औपचारिक तौर पर त्यागपत्र तो दिया नहीं था, इसलिए पर्याप्त सैनिक समर्थन रखने वाले युआन ने नानकिंग सरकार के साथ सौदेबाजी और युक्ति की। 12 फरवरी को मांचू दरबार ने गद्दी छोड़ दी और सन यात सेन ने युआन के पक्ष में त्याग पत्र दे दिया। गणतंत्र सरकार पीकिंग आ गयी और युआन शिकाइ को इसका अंतरिम राष्ट्रपति चुन लिया गया।

सन यात सेन ने अपना पद छोड़ने से पहले एक नया अंतरिम संविधान पारित करवा लिया। इस संविधान में अधिकार विधेयक और मंत्रिमंड़लीय सरकार का प्रावधान रखा गया। इसका अभिप्राय यह था कि राष्ट्रपति युआन को एक मंत्रिमंडल का गठन करना होगा जो विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगा। सन यात सेन के साथी क्रांतिकारी इस सभा में बहुमत में थे। इसके पीछे विचार यह था कि मंत्रिमंडल युआन की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं पर रोक का काम करे। इस तरह, पीकिंग के गणतंत्रीय शासन ने। अप्रैल, 1912 को काम करना शुरू कर दिया। सिद्धांत में, यह शासन 1928 तक चला। लेकिन वास्तव में देखा जाये तो, यह गणतंत्रीय व्यवस्था का उपहास था।

युआन शिकाइ ने पद संभालने के तुरंत बाद तांग शाओं यी का नाम नये-नये लागू हुए अंतरिम संविधान के अनुसार मंत्रिमंडल के नेता, अर्थात् प्रधानमंत्री पद के लिए प्रस्तावित कर दिया। तांग युआन का एक पुराना साथी भी था और क्वोमिंतांग क्रांतिकारियों के निकट भी था। तांग ने मंत्रिमंडल के लिए जिन मंत्रियों के नाम का प्रस्ताव रखा उन्हें सभा ने सहमति दे दी। यह एक अच्छी शुरुआत दिखायी दी और यह आशा बनी कि सन यात सेन के क्रांतिकारियों और उत्तर के (सेना समेत) पुराने तत्वों, इन दोनों गुटों के बीच कारगर एकता कायम हो जाएगी। लेकिन हमें यह याद रखना होगा कि युआन शिकाइ की महत्वाकांक्षाओं का सीधा टकराव संवैधानिक शक्ति के साथ था जहां शक्ति या सत्ता कई व्यक्तियों में बंटी होती है।

युआन के समर्थकों में मांचू दरबार के उच्चाधिकारी, पूर्ववर्ती दौर के सुधारवादी और उसकी अपनी सेना और नागरिक अनुचर शामिल थे। उसने जिस नव सेना का गठन किया था, उसके सेनापतियों का भी पूरा समर्थन उसे प्राप्त था। उसकी तुलना में तांग शाओं यी के समर्थन का आधार कहीं कमजोर था। मंत्रिमंडल के गठन के लगभग तुरंत बाद, युआन ने नियुक्तियों और नीतियों के मामलों पर तांग शाओं यी के साथ असहमति जतानी शुरू कर दी। युआन का असहयोगी रवैया इतना असहनीय हो चला कि तांग ने क्षुब्ध होकर तीन महीने के अंदर ही मंत्रिमंडल छोड़ दिया। उसके बाद जो मंत्रिमंडल बने उनमें अधिकतर

युआन के अनुयायी और नौकरशाहों को लिया गया। विधान सभा तुरंत युआन के साथ कोई शक्ति परीक्षण नहीं चाहती थी इसलिए वह न चाहते हुए भी मंत्रिमंडल को अपना समर्थन देती रही।

सन् 1912-13 की सर्दियों में संसद के चुनाव हुए। क्वोमिंतांग के रूप में पुनर्गठित क्रांतिकारियों के लिए यह एक अवसर था शांतिपूर्ण ढंग से युआन के प्रभाव को समाप्त कर देने का। जैसी कि अपेक्षा थी, वे संसद के दोनों सदनों में बहुमत लेकर विजयी हुए। और, उनका संसदीय नेता, सुंग चियाओजेन, मंत्रिमंडल के नेतृत्व के लिए पूरी तौर पर तैयार था। 10 मार्च, 1913 को शंघाई रेलवे स्टेशन पर पीकिंग के लिए रेलगाड़ी पर सवार होते समय उसकी हत्या कर दी गयी। पूरा देश सकते में आ गया। युआन ने सामान्य ढंग से हत्या की जांच के आदेश दे दिये। उसी समय युआन विदेशी बैंकरों से ऋण लेने का प्रयास कर रहा था, जो चीन की ढहती अर्थव्यवस्था के लिए निर्णायक था। जांच में राष्ट्रपति युआन का हत्या में सीधे शामिल होना पाया गया। जिस दिन जांच के निष्कर्ष सार्वजनिक किये गये, उसी दिन युआन ने यह ऐलान किया कि विदेशी बैंकर अति वांछित ऋण देने को सहमत थे। इससे कुछ लोगों का ध्यान तो जरूर उधर से हट गया, लेकिन इसके कारण क्वोमिंतांग और युआन शिकाइ के रास्ते हमेशा-हमेशा के लिए अलग हो गये। युआन ने मनमानी करनी शुरू कर दी। वह अक्सर संसद की भी अवहेलना कर देता। यहां तक कि पुनर्गठन ऋण कहलाने वाले विदेशी ऋण के लिए बातचीत भी संसद की सहमति के बिना कर ली गयी। जो भी हो, युआन के लिए तो ऋण की मंजूरी का यही मतलब निकला कि उसकी सरकार को विदेशी ताकतों की अंतिम मान्यता प्राप्त हो गयी। उसके अपराध का उसे कोई दंड नहीं मिला। साम्राज्यवादी ताकतें भी, स्पष्ट कारणों से किसी लोकप्रिय नेता की तुलना में एक तानाशाह और चालबाज को अधिक पसंद करती थीं।

सुंग की हत्या से पहले, क्वोमिंतांग के नेताओं में युआन के प्रति रवैये को लेकर एकता नहीं थी। लेकिन, इस जघन्य अपराध ने उन सबको युआन की निंदा के लिए एक सूत्र में बांध दिया। जुलाई 1913 में, कुछ दक्षिणी प्रांतों में शासन कर रहे क्वोमिंतांग गवर्नरों ने विद्रोह कर दिया। विदेशी मान्यता से साहस लेकर युआन ने क्वोमिंतांग का विरोध कर दिया, इससे जुड़े सैनिक गवर्नरों को हटा दिया, उनके विद्रोह को दबा दिया, राजनीतिक संगठन के रूप में क्वोमिंतांग को भंग कर दिया, संसद को निलंबित कर दिया और फिर प्रांतीय सभाओं और मुख्य परिषदों को समाप्त कर दिया। उसने अपने आपको आजीवन राष्ट्रपति घोषित कर दिया और यह भी ऐलान कर दिया कि वह राजतंत्र की बहाली करेगा और अपने खुद के वंश का सूत्रपात करेगा। युआन ने 1914 में एक नया अंतरिम संविधान लागू करवा लिया। इस संविधान के तहत उसका शासन सर्वोच्च और कानून के दायरे से मुक्त हो गया। इस संविधान का अंतिम लक्ष्य चीन में राजतंत्र की बहाली और युआन को नया सम्राट बनाना था। जिस समय चीन में यह सब कुछ हो रहा था, जापान ने उसके सामने अपनी कुख्यात इक्कीस मांगें रख दीं। इसीलिए, यह माना जाता है कि युआन ने जो चालें चलीं थीं उनमें जापान के साथ उसकी सांठगांठ थी (देखिए इकाई-21)।

जो भी हो, युआन की योजनाओं ने (लयांग ची चाओ के नेतृत्व में) नरमपंथी प्रगतिशीलों और क्रांतिकारियों को एक कर दिया। पूरे देश में युआन के खिलाफ एक अभियान छेड़ दिया गया। इस अभियान का नारा था "गणतंत्र बचाओ"। प्रांतों ने पीकिंग शासन से अपनी स्वाधीनता की घोषणा करनी शुरू कर दी, और क्वोमिंतांग के सेनापतियों और प्रगतिशीलों के नेतृत्व में राजतंत्र विरोधी अभियान शुरू हो गये। आंदोलन इतना प्रचंड था कि युआन शिकाइ को मार्च 1916 तक अपनी तमाम राजाज्ञाओं को वापस लेना पड़ा। वह अपने राष्ट्रपति पद के कामों को इस तरह करता रहा मानो कुछ हुआ ही न हो। चीनी इतिहास का युआन शिकाइ अध्याय जून 1916 में उसकी स्वाभाविक मृत्यु के साथ समाप्त हो गया।

27.3 युआन काल के पश्चात् की घटनाएँ

युआन की मृत्यु होने पर, उप राष्ट्रपति ली युआन हांग को राष्ट्रपति बना दिया गया और 1912 के अंतरिम संविधान को फिर से लागू करने के प्रयास किये गये। 1916 और 1917 के वर्षों में संविधान में जबरदस्त फूट पड़ी। एक ओर तो वे लोग थे जिनका क्वोमिंतांग के साथ गठबंधन था, और वे और प्रगतिशील एक-दूसरे के विरोधी थे। दूसरी ओर राष्ट्रपति

ली और प्रधानमंत्री तुआन ची जुई के बीच गंभीर मतभेद थे। उनके बीच इन मुद्दों को लेकर मतभेद थे कि चीन किस तरह का संविधान अपनाये और उसे जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा करने में मित्र ताकतों के साथ शामिल होना चाहिए या नहीं। विवाद उस बिंदु पर पहुँच गया कि राष्ट्रपति ली ने प्रधानमंत्री तुआन को निकाल दिया क्योंकि संसद में बहुमत उसके खिलाफ था। तुआन भी नव सेना की देन और उत्तरी सेना का एक शीर्ष नेता था। अपने निकाले जाने के विरुद्ध, बदले की कार्यवाही के तौर पर उसने उत्तरी सैन्यवादियों को इस बात के लिए उकसाया कि वे राष्ट्रपति और संसद की निंदा करें। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार सचमुच ठप्प हो गयी। ली युआन हांग उस मांचू वंश का सैनिक था जिसका तख्ता पलटा जा चुका था। वह इस स्थिति से निपटने में असमर्थ था, इसलिए उसने दखल के लिए चांग शुन को बुलाया। चांग की सेनाओं ने पीकिंग में प्रवेश किया। ली यानहांग को सलाह दी गयी कि वह संसद को भंग कर दे। 1 जुलाई, 1917 को चांग ने तख्ता पलट करके मांचू वंश की बहाली कर दी। लेकिन वह सैनिक दृष्टि से मजबूत नहीं था, और तुआन ची जुई ने गणतंत्र का झंडा उठाकर उसका सामना किया। पीकिंग और उसके आसपास के सैनिक बलों के भारी समर्थन के बूते पर तुआन बहाल मांचू वंश समाप्त करने में सफल रहा। उसने विजयी होकर पीकिंग में प्रवेश किया और राष्ट्रपति ली के पास उसे दुबारा प्रधानमंत्री नियुक्त करने के अलावा कोई चारा नहीं रह गया। तुआन ने ली को राष्ट्रपति नहीं रहने दिया और उसकी जगह उप राष्ट्रपति फेंग क्वो-चांग ने ले ली। पूर्ववर्ती नव सेना में, तुआन और फेंग का स्थान केवल युआन शिकाइ से नीचे था और वे कट्टर शत्रु थे। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के रूप में उनका टकराव और भी गंभीर हो गया। इस तरह चीनी इतिहास की सबसे दुर्भाग्यशाली घटना की शुरुआत हुई। यह घटना थी युद्ध सामंतवाद। उत्तरी सैन्यवादियों के बीच आपसी मारामारी का यह दौर कई वर्षों तक चलता रहा जिसमें चीन का भारी नुकसान हुआ और उसकी एकता को खतरा पैदा हो गया।

27.4 युद्ध सामंत और युद्ध सामंतवाद

पीकिंग में, तुआन और फेंग की गणतंत्रीय सरकार ने नये कानूनों के तहत एक नयी संसद का चुनाव कराया जिसकी बैठक अगस्त 1918 में हुई। इसे आगे चल कर किराये के राजनीतिक गुट आनफू के कारण, आनफू संसद के नाम से जाना गया। आनफू संसद ने, संविधान के प्रति प्रतिबद्धता दिखाते हुए, अपने एक वर्ष के काल, 1918-1919 में कुछ उपाय किये। उसने एक संवैधानिक आयोग की नियुक्ति की जिसने 12 अगस्त, 1919 को एक नये संविधान प्रारूप को अपनाया।

कैंटन, अर्थात् दक्षिण चीन में एक अलग सरकार चल रही थी, क्योंकि दक्षिण ने युआन शिकाइ के खिलाफ विद्रोह कर दिया था। यह सरकार भी अस्थिर थी। कभी वह सन यात सेन के नियंत्रण में रही तो कभी सैनिक नेताओं के अधीन। कुल मिलाकर उत्तर और दक्षिण दोनों जगहों में मनमुटाव और कलह और भयंकर अव्यवस्था समान थी। राजनीतिक स्थिति से क्षुब्ध होकर सन यात सेन के कैंटन छोड़ देने के बाद उत्तर और दक्षिण के बीच 1919 के अंतिम महीनों में, शांति के लिए बातचीत का दौर शुरू हुआ। यह दौर काफी समय तक चला, लेकिन 1928 तक न तो शांति ही कायम हुई और न ही एकता। उस वर्ष च्यांग काई शेक की क्वोमिंतांग सेना ने सैनिक दृष्टि से चीन में एकता कायम कर दी। लेकिन विभिन्न युद्ध सामंती गुटों में राजनीतिक संघर्ष और विभिन्न सैनिक सत्ता केन्द्रों के बीच आपसी मारामारी लगातार चलती रही। ऊपर जिन नामों का उल्लेख किया गया है, उनके अलावा कुछ प्रमुख युद्ध सामंत थे : त्साओ कुम और वू पे फू, शिसी चांग और चांग त्सोलिन।

इस दौर के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि युआन शिकाइ और दूसरे सैनिक नेताओं में मौलिक कल्पना की कमी थी। छद्म गणतंत्र कायम करने के प्रयास बार-बार विफल हुए और चीनी जनता के लिए उसका कोई अर्थ नहीं निकला। उनके लिए न तो इसमें राजनीतिक स्थिरता ही मिली और न ही भौतिक सुख-समृद्धि। चरित्रहीन सैनिक राजनीतिज्ञों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए केवल अपने व्यक्तिगत हितों को ही साधा, जो कि राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल थे।

युद्ध सामंतवाद का असली संस्थापक, युआन शिकाइ, 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में शक्तिशाली होकर उभरा था। वह यह समय था जब मांचू सरकार के लिए सेना को एक

करने की जिम्मेवारी उसके ऊपर थी। पहले भी, कमजोर होते साम्राज्य ने अपने शत्रुओं से लड़ने के लिए निजी सेनाएँ संगठित करने की छूट दी हुई थी। अंत में साम्राज्य के लिए यह आत्मघाती सिद्ध हुआ, क्योंकि युआन की नवसेना उसके खिलाफ हो गयी। इसका परिणाम यह भी हुआ कि सेना चीनी राजनीति में गहराई से शामिल हो गयी और यह प्रवृत्ति बाद के दौर में भी बरकरार रही। क्वोमिंतांग और साम्यवादी पार्टी दोनों के लिए एक मजबूत सैनिक समर्थन के अभाव में राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना असंभव था।

जो भी हो कुछ युद्ध सामंतों ने सत्ता हथियाने के बाद सुधारक बनने का प्रयास किया। उन्होंने जनता को कुछ आर्थिक लाभ दिलाने के प्रयास किये। लेकिन, इससे पहले कि वे कुछ कर पाते, वे सत्ता संघर्ष के पचड़े में फंस गये। बड़े युद्ध सामंतों का वर्णन करते हुए, जॉन फेयर बैंक ने टिप्पणी की है कि:

> "एक अर्थ में बड़े युद्ध सामंत राजनीतिक शक्ति के गंभीर विघटन के प्रतीक थे। उन्होंने एक ऐसे नितांत खंडित समाज के शीर्ष पर बैठने का प्रयास किया जिसमें स्थानीय गुंडे, डाकू, सरदार और छोटे युद्ध सामंत सभी एक बदतर होती राजनीतिक अव्यवस्था के प्रतीक थे।"

युद्ध नेतागीरी की दुर्भाग्यशाली घटना और उसकी राजनीति को दो कोणों से देखा जा सकता है:

i) प्रांतों के दृष्टिकोण से यह प्रादेशिक सेनाओं का अध्ययन है और

ii) केंद्र के कोण से देखने पर पीकिंग के वर्तमान राजनीतिक और सैनिक संघर्षों का परीक्षण आवश्यक हो जाता है।

इन दो दृष्टिकोणों से हमें चीनी इतिहास में युद्ध सामंतवाद के स्थान का मूल्यांकन करने में मदद मिलती है।

आसान शब्दों में कहें तो, युद्ध सामंत वह व्यक्ति होता था जिसके पास एक निजी सेना होती थी, जिसका किसी क्षेत्र पर कब्जा या कब्जे का प्रयास होता था, और वह कमोबेश स्वाधीन रहकर कार्य करता था। युद्ध सामंत के लिए प्रचलित चीनी शब्द **"चुन-फा"** का अर्थ होता है कि एक ऐसा स्वार्थी सेनापति जिसमें सामाजिक चेतना अथवा राष्ट्रीय भावना नहीं के बराबर होती है। कुछ लोगों का यह तर्क है कि उस समय के सैनिक नेताओं में जो विविध व्यक्तित्व पाये जाते थे, उनके लिए "प्रादेशिक अथवा क्षेत्रीय सैन्यवादी" शब्द कहीं अधिक तटस्थ है। अन्य लोगों का तर्क यह है कि "युद्ध सामंत" कहीं अधिक उपयुक्त शब्द है क्योंकि इसमें हिंसा और नागरिक प्राधिकार हड़प लेने के अर्थ निहित हैं। जो भी हो, युद्ध सामंत की पहचान उसके लक्ष्यों से नहीं, इस बात से होती थी कि वह किस प्रकार का अधिकार चलाता था। उनके युद्ध सामंत क्योंकि किसी प्रांत के सैनिक गवर्नर थे, इसलिए **"फू-चुन"** शब्द का इस्तेमाल युद्ध सामंत अथवा प्रादेशिक सैन्यवादी के पर्याय के रूप में किया जाता है।

युद्ध सामंतों में विविधता थी और उनके चरित्र और नीतियों का जो सामान्यीकरण किया जाता है, उनमें से अधिकांश की अपनी सीमाएँ हैं. युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद के पहले दो या तीन वर्षों में जो युद्ध सामंत प्रमुख थे, वे चिंग सैनिक स्थापनाओं में वरिष्ठ अधिकारी रह चुके थे। इन सामंतों का चिंतन और उनके मूल्य कन्फ्यूशियसी सांचे में ढले थे। तुआन ची जुई, फेंग क्वो-चुंग और फांग शू इसी श्रेणी के युद्ध सामंत थे। 1920 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक, युद्ध सामंतों की एक दूसरी पीढ़ी उभर कर सामने आने लगी थी। इनमें से अनेक अत्यंत साधारण पृष्ठभूमि से थे। सैकड़ों युद्ध सामंतों में से, बहुत कम के विषय में ही हमारे पास जानकारी है, जिसके बल पर ही हम उनकी विशेषताओं के बारे में कोई गहन अध्ययन कर सकते हैं। लेकिन, उन सबके पास निजी सेनाएँ थीं और उनका किसी क्षेत्र पर कब्जा या कब्जे का प्रयास था।

27.4.1 सेनाएँ, गुट और राज्यतंत्र

युद्ध सामंतों की सेनाओं के पास संगठन की स्वायत्तता होती थी जिसके कारण दूसरे सेनापतियों को वे विरासत में अक्षुण्ण मिल जाती थी। वे किसी एक व्यक्ति के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा से बंधी नहीं थीं। वास्तव में तो, राजनीतिक लाभ के लिए किसी सेनापति के निकटतम समर्थक भी उसे किसी भी समय छोड़ सकते थे। फिर भी, "निजी सेना" का जुमला एक दो संबंधित कारणों से उपयुक्त है:

i) पहला, सेना के उपयोग के विषय में निर्णय खुद सेनापति का चलता था, उसके वरिष्ठ अधिकारियों का नहीं। वाहिनी (ब्रिगेड) का ऐसा सेनापति सामान्य तौर पर युद्ध सामंत नहीं होता था जो अपनी वाहिनी को कर्तव्यपूर्वक वहां ले जाता था जहां उसके वरिष्ठ अधिकारी आदेश देते थे। युद्ध सामंत वह होता था जो अपने स्तर पर इस बात का निर्णय लेता था कि वह अपनी वाहिनी के साथ क्या करेगा, या क्या नहीं करेगा। दिशा हमेशा स्पष्ट नहीं थी, लेकिन अंतर वास्तविक थे। इस तरह, सेना इसलिए निजी सेना होती थी क्योंकि सैनिकों की नियुक्ति उनका सेनापति स्वाधीन होकर करता था और उन्हें उसके निजी आदेश पर चलना होता था, और उनका इस्तेमाल उसके वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ भी किया जा सकता था।

ii) दूसरा, कोई सेनापति उस स्थिति में इस तरह का स्वाधीन अधिकार अपने पास संभवतः अधिक रखता था जहां उसके और उसके कुछ महत्वपूर्ण अधिकारियों के बीच स्नेह, निष्ठा या कर्तव्य के निजी संबंध उनके सांगठनिक संबंधों से ऊपर निकल जाते थे।

शुरुआती दौर में सैनिक अनुशासन चीनी सेना की विशेषता तो रही, लेकिन बाद में दूसरे सैन्यवादियों के साथ टकराव के प्रत्येक जगह मौजूद खतरे के सामने और कमजोर सरकारी संस्थाओं और उनकी अपनी कार्यवाहियों की संदिग्ध वैधता के संदर्भ में युद्ध सामंतों ने अपनी सेनाओं पर अपने प्राधिकार को मजबूत करने का प्रयास किया। इस प्रयास में उन्होंने चीनी परंपरा में लंबे समय से पवित्र माने गये व्यक्तिगत संबंधों का लाभ उठाया। युद्ध सामंतों ने इस तरह के जिन संबंधों का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया उनमें शिक्षक-छात्र के पारिवारिक संबंध और एक ही विद्यालय से पढ़ाई पूरी करने वालों के बीच के संबंध, विशेषकर एक ही कक्षा में पढ़े छात्रों के बीच संबंध और व्यक्तियों के बीच स्थापित संबंध शामिल थे। युद्ध सामंतों ने तो इस प्रकार के व्यक्तिगत संबंधों का इस्तेमाल अपने अधिकारियों में निष्ठा का भाव पैदा करने के लिए किया और उनके मातहतों के अक्सर अपने खुद के मातहतों के साथ इसी प्रकार के संबंध होते थे। कुछ सेनापतियों ने इन द्वैतीयक (या दूसरे स्तर पर पायी जाने वाली) निष्ठाओं को कम से कम करने और तमाम स्वामिभक्ति को अपने पर केंद्रित करने का प्रयास किया। लेकिन इन निष्ठाओं को समाप्त करना कठिन काम था। इस दूसरे स्तर पर पायी जाने वाली निष्ठा ने सैनिक संगठन में कमजोरी का रूप ले लिया था। होता यह था कि जब कोई मातहत सेना से छूट कर अलग होता था तो वह अपने साथ अपने अनुयायियों और उनके आदमियों को भी ले जाता था। इसलिए, एक सेना से टूट कर दूसरी सेना में मिल जाने के निमंत्रण युद्ध सामंतों की राजनीति की एक अहम चाल बन गए।

इन सामंतों की सेनाओं के सैनिक अधिकांश वे किसान थे जिन्होंने घोर गरीबी भोगी थी। 1916 में, इन सेनाओं में लगभग पांच लाख लोग थे और 1928 तक इनकी संख्या बढ़ कर 20 लाख से भी ऊपर हो गयी। अनेक लोगों के लिए सेना एक ऐसा शरणस्थल था जहां वे जिंदा रह सकते थे। दूसरे लोग इसे एक गरीब अनपढ़ आदमी के लिए ऊँचा उठने का अवसर मानते थे। कुछ स्थितियों में, जहां सेनापति अपनी सेना को नियमित वेतन नहीं दे पाते थे, वहां सैनिक आशा रखते थे कि वे लूटपाट के जरिए अपना मेहनताना निकाल लेंगे। लड़ाई एक तरह की भर्ती भी होती थी, क्योंकि अक्सर जीतने वाला युद्ध नेता पराजित सेना को अपनी सेना में मिला लेता था। इन सेनाओं ने चीनी सेना को बहुत बदनामी दिलवायी। उन्हें प्लेग, दुष्ट, विनाशकारी, निर्दयी के रूप में देखा जाता था।

क्षेत्रीय कब्जे के बिना एक स्वाधीन सेना बनाये रखना कठिन काम था। क्षेत्र पर कब्जा होने से युद्ध सामंत को एक सुरक्षित अड्डा और राजस्व सामग्री और आदमी मिल जाते थे। बिना क्षेत्रीय अधिकार वाला सेनापति किसी और के अधिकार क्षेत्र में एक असुरक्षित अतिथि होता था। उसे एक अधीनस्थ परिस्थिति के साथ नियंत्रण अथवा क्षेत्र पर अधिकार के लिए लड़ना होता था। क्षेत्रीय नियंत्रण होने से एक मनमाने से मनमाने युद्ध सामंत को भी वैधता मिल जाती थी। इसमें शासन और प्रशासन की जिम्मेदारी भी शामिल होती थी। युद्ध सामंत की सरकार के चरित्र और क्षमता में अत्यंत विविधता होती थी। कुछ सरकारों में प्रगतिशीलता देखने को मिलती थी तो दूसरी सरकारें कट्टर रूढ़िवादी होती थीं, सभी सरकारों में सेना का स्थान सबसे प्रमुख होता था, इसलिए नागरिक या गैर-सैनिक अधिकारी सैनिक गवर्नर के अधीन होते थे।

युद्ध सामंतों की सरकारों की गहन चिंता का विषय होता था युद्ध सामंत और उसके मुख्य मातहतों की निजी श्रीवृद्धि के लिए और सेना को हथियार, रसद और वेतन उपलब्ध कराने

के लिए कोष जुटाना। सरकार अक्सर सभी स्तरों पर युद्धों और सैनिकों के तेजी से बदलने से अव्यवस्थित रहती थी और अनेक युद्ध सामंत अपने क्षेत्रीय आधिपत्यों को अस्थायी मानते थे, इसलिए उनके लिए राजस्व जुटाने के स्थापित तरीकों पर हमेशा निर्भर करना संभव नहीं था। जिस तरह भी संभव होता था, वे आक्रामकता और कल्पना के सहारे धन और संसाधन जुटाने का प्रयास करते थे। राजस्व का बुनियादी स्रोत भूमि कर था जिसे तमाम प्रथाओं और रीतियों को ताक पर धर कर जमा किया जाता था। वे महत्वपूर्ण वस्तुओं पर सरकार का एकाधिकार भी जमाते थे। वे रेल मार्गों पर कब्जा करते और उन्हें खुद चलाते थे, नमक पर पूरक कर लगाते थे, और इधर से उधर ले जाये जाने वाली वस्तुओं पर कर लगाते थे। अफीम की बिक्री पर रोक लगाने के नाम पर, भारी कर वसूले जाते थे। व्यापारियों का आम करों के अलावा और भी तरीकों से दोहन किया जाता था। कोष जमा करने के इन प्रयासों के बावजूद प्रांतीय सरकारें अक्सर दिवालियेपन की कगार पर रहती थीं। सरकारी खर्चों के लिए बहुत ही कम धन रहता था। कारण आसान था: अधिकांश धन सैनिक सामंतों की निजी संपत्ति बनाने या सेना के रख-रखाव में इस्तेमाल हो जाता था।

प्रमुख युद्ध सामंत गुटों के सदस्य होते थे। ये गुट समान व्यक्तिगत हितों से आपस में उसी तरह बंधे होते थे जैसे राजनीतिक घटक एक-दूसरे से बंधे रहते हैं। लेकिन युद्ध सामंतों के गुटों का जुड़ाव ढीली-ढीली संबद्धता वाले गुटों से संबद्ध होने वाले लोग बुनियादी तौर पर अपना-अपना लाभ देखकर उनसे जुड़ते थे। लेकिन व्यक्तिगत साथ और बंधन की भी भूमिका होती थी, जो विशेषकर मजबूत एकता वाले गुटों में देखने को मिलती थी। महत्वपूर्ण संबंध प्रत्येक गुट के सदस्य और उसके नेता के बीच होता था। गुट के सदस्यों के बीच के व्यक्तिगत, स्वाभाविक संबंध कमजोर या अनुपस्थित हो सकते थे। गुट के सदस्यों और नेता के बीच के व्यक्तिगत संबंध ठीक वैसे ही होते थे जिनका उल्लेख पहले युद्ध सामंत की सेनाओं के पूरक संबंधों के रूप में किया जा चुका है, अर्थात्, पारिवारिक संबंध, शिक्षक-छात्र और संरक्षक-संरक्षित संबंध, समान प्रांतीय या स्थानीय मूल के संबंध, मित्रता, अकादमी या स्कूल के संबंध।

गुट युद्ध सामंतों के गुटों के अंदर भी बन जाते थे। उदाहरण के लिए, चीली गुट दो गुटों में बंट गया: एक वू पेई-फू के अधीन और दूसरा जाओ कुन के अधीन। जाओ गुट फिर से विघटित हो गया। इन गुटों में इस बात को लेकर तू-तू मैं-मैं होती रही कि कौन किस पद पर रहेगा और किसके पास कौन सा राजस्व रहेगा। गुट फेंगतीयुन गुटों में भी रहे, जो आगे चलकर "नये" और "पुराने" गुटों के नाम से जाने गये, क्योंकि इन गुटों में आधुनिक सैनिक प्रशिक्षण पाये युवा अधिकारियों और चिंग सेना की सेवा में रह चुके अधिकारियों के बीच स्पष्ट मतभेद थे।

27.4.2 युद्ध

स्थानीय प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तरों पर वास्तव में सैंकड़ों हथियार बंद छोटी और लंबे समय की, झड़पें हुईं। अनेक युद्ध तो प्रांत या गांव जैसे किसी प्रशासनिक क्षेत्र पर कब्जे के लिए छेड़े गये। दूसरे युद्ध प्रशासनिक क्षेत्रों के पार स्थानीय या प्रादेशिक आर्थिक तंत्रों के कब्जे के लिए लड़े गये। बड़े गुटों के बीच हुए युद्धों की ओर लोगों का ध्यान कहीं अधिक रहा क्योंकि ऐसे युद्ध ही इस बात का निर्धारण करते थे कि पीकिंग की राष्ट्रीय सरकार पर किसका प्रभुत्व रहेगा। होता यह था कि जब एक गुट एक वचन देता कि वह अपनी शक्ति बढ़ाकर दूसरे सैन्यवादियों को रोके रखेगा और एक शुद्ध केंद्र-केंद्रित नियंत्रण बनायेगा, तभी दूसरे प्रमुख युद्ध सामंत अस्थायी तौर पर अपनी ताकत संयुक्त करके उस गुट को गिरा देते। इस तरह, 1920 में चीली और फेंगतीयुन गुटों ने आपस में सहयोग करके पीकिंग सरकार में आनह्वे गुट की शक्ति को समाप्त कर दिया, और अधिकांश प्रांतों को विजेताओं के हवाले कर दिया।

वैसे तो प्रत्येक युद्ध में एक स्पष्ट विजेता उभर कर सामने आया, फिर भी अधिक गहन अर्थ में ये युद्ध अधूरे ही रहे, क्योंकि किसी भी गुट के पास सरकार की राजनीतिक शक्ति का विकास करने के लिए कोई लंबे समय की योजना नहीं थी। प्रत्येक युद्ध सामंत का प्रमुख लक्ष्य अपना अलग और व्यक्तिगत था: अर्थात् अपनी शक्ति को अधिक से अधिक करना। प्रत्येक व्यक्ति इसलिए किसी गुट का सदस्य नहीं था कि वह उस गुट के लक्ष्यों में अपना योगदान देना चाहता था, बल्कि इसलिए कि वह ऐसी स्थिति में अपना योगदान देना चाहता था, जिसमें उसका अपना व्यक्तिगत लाभ हो। किसी गुट के नेता के लिए यह तो

संभव था कि वह देश को एकता के सूत्र में बांधने की आशा करे, लेकिन वह एक दल पर अकेला खड़ा होता था। प्रत्येक गुट के नेता की एकता को लेकर न केवल एक सरल धारणा होती थी, बल्कि उसके लक्ष्य की प्राप्ति उसके शत्रुओं और समर्थकों दोनों के लिए खतरा भी बनी रहती थी। इसका कारण यह था कि उस युद्ध सामंत के सत्ता के सपनों के परा होने का अर्थ होता था उनके हाथ से स्वाधीनता का छिनना, जो कि युद्ध सामंतों के रूप में उनकी स्थिति का मूल था। युद्ध सामंतों के गुटों के लक्ष्यों का अस्थायी और कम समय का होना इस दौर की अत्यधिक अस्थिरता का एक प्रमुख कारण था। सैनिक मुठभेड़ों के रूप में कुछ बड़े युद्ध बहुत कम समय के थे, लेकिन युद्ध सामंतवाद के युग की आम प्रवृत्ति यह रही कि इस दौर में बड़ी-बड़ी सेनाएँ कहीं बड़े लंबे समय के और खून-खराबे वाले युद्धों में लगी रहीं।

27.4.3 युद्ध सामंत और विदेशी ताकतें

युद्ध सामतवाद से फैली अव्यवस्था और पीकिंग सरकार की स्थायी कमजोरी का परिणाम यह हुआ कि चीन विदेशी दबावों और अतिक्रमणों के प्रति विशेष रूप से असुरक्षित हो गया। लेकिन साथ ही साथ, इस व्यापक अव्यवस्था के कारण विदेशी गतिविधियाँ सीमित रहीं और विदेशी उद्यमों के हाथों चीन के आर्थिक शोषण में बाधा पड़ी। युद्ध सामंतों ने समय-समय पर विदेशी फर्मों पर कराधान को मनमाने ढंग से बढ़ा दिया। सिपाहियों और लुटेरों ने विदेशी जान-माल को नुकसान पहुंचाया। उदाहरण के लिए, सात वर्षों की अवधि में एक ही जिले में 153 अमेरिकी व्यक्तियों या फर्मों को लूट लिया गया। लूटमार और युद्ध ने सामान्य व्यापार और व्यापारिक गतिविधियों को छिन्न-भिन्न कर दिया।

विदेशियों ने इन स्थितियों का जवाब धमकी और कुंठा में दिया। विदेशी प्रतिनिधियों ने पीकिंग स्थित चीनी सरकार के आगे लगातार विरोध प्रकट किया। लेकिन केंद्रीय अधिकारी अपनी कमजोरी के कारण कोई प्रभावी कार्यवाही नहीं कर सके। विदेशी ताकतों को अक्सर विशिष्ट स्थानीय मामलों को लेकर स्थानीय या प्रादेशिक सैनिक नेताओं के साथ संपर्क करने को बाध्य होना पड़ता था।

विदेशी जिस व्यवस्था की शिकायत करते थे, अक्सर उस अव्यवस्था में उनका अपना भी योगदान होता था। संपन्न विदेशी सिपाहियों ने चीनी युद्धों में सचमुच भूमिका निभायी। उदाहरण के लिए, एक अंग्रेज एक युद्ध सामंत के शस्त्रागार का संचालन करता था। और एक और युद्ध सामंत के लिए तीन अमेरिकी विमान चालकों ने कुछ महीनों तक बमवर्षक विमान उड़ायें। कहीं अधिक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह था कि चीनियों की बंदूकों के लिए तृप्त न होने वाली मांग का जवाब विदेशियों ने कानूनी पाबंदियों के बावजूद चीन में हथियारों का आयात करके दिया। शस्त्र व्यापारियों ने हथियार खरीदने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के हाथों हथियार बेच डाले। उन्होंने यह भी चिंता नहीं की कि इसके राजनीतिक परिणाम क्या हो सकते थे। कुछ विदेशी सरकारों ने वास्तव में कुछ चुने हुए नेताओं को प्रायोजित किया। उदाहरण के लिए युद्ध सामंतवाद के इस पूरे दौर में जापान चीनी सैन्यवादियों के साथ स्पष्ट तौर पर शामिल रहा।

सन् 1916 में जापानी सरकार ने आनवे गुट के नेता तुआन जी हुई को पूरा समर्थन देने की नीति चलायी। इसका उद्देश्य चीन और जापान के बीच वित्तीय बंधन और राजनीतिक और आर्थिक सहयोग के निकट संबंध स्थापित करना था। आगामी दो वर्षों के दौरान जापान ने युआन को 15 करोड़ येन से भी अधिक दिए। यह राशि प्रकट तौर पर तो राष्ट्रीय विकास के लिए दी गयी थी, लेकिन युआन ने इसका इस्तेमाल व्यापक तौर पर अपने ही राजनीतिक और सैनिक उद्देश्यों के लिए किया। दोनों सरकारों के बीच एक सैनिक समझौता भी हुआ जिसके तहत जापान को चीन को सहायता और सलाहकार देने थे, जिससे चीन प्रथम विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की मदद के लिए युद्ध भागीदारी सेना का गठन करता। यह सेना कभी यूरोप नहीं गयी, बल्कि उसने युआन की सैनिक शक्ति का विस्तार करने का काम किया। इससे जापान को चीन का राजनीतिक और आर्थिक अतिक्रमण करने में बहुत मदद मिली।

27.4.4 पीकिंग का दृष्टिकोण

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पीकिंग स्थित राष्ट्रीय सरकार युद्ध सामंतवाद युग के 12 वर्षों में भयंकर रूप से अस्थिर रही। सात व्यक्तियों ने इस बीच राज्याध्यक्ष का पद संभाला। उनमें से एक तो दो बार इस पद पर रहा। इस तरह, वास्तव में आठ

शासनाध्यक्ष सत्तारूढ़ रहे। विद्वानों की गणना के अनुसार, चौबीस मंत्रिमंडल, पाँच संसदें या राष्ट्रीय सभाएँ और कम से कम चार योगदान या बुनियादी कानून इस बीच रहे। व्यक्तियों, अधिकारियों और कानूनी और राजनीतिक बदलावों की इस भरमार के कारण पीकिंग की राजनीति का कोई स्पष्ट तर्कसंगत विवरण देना कठिन हो जाता है। युआन की मृत्यु के बाद, तुआन सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में उभर कर सामने आया था। वह युआन की सरकार में भी प्रधानमंत्री रह चुका था। उसे गणतंत्रवादियों का कोई समर्थन प्राप्त नहीं था। गणतंत्रवादी तुआन का विरोध करने की गरज से दूसरे सैन्यवादियों के साथ हो लिए थे। तुआन ने अपनी ओर से अपने आपको एक मजबूत स्थिति में रखने के लिए अपने सैनिक आधार को और भी शक्तिशाली बना लिया। यह तनाव 1917 में विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से चीन की भागेदारी के मुद्दे को लेकर चरम पर पहुँच गया। 1917 और 1920 के बीच एक के बाद एक सैनिक गुट उभरे, जिससे चीनी समाज ध्वंस के कगार पर पहुँच गया।

बोध प्रश्न 1

1) लगभग 10 पंक्तियों में 1911-1916 के दौरान चीन में राजनीतिक अस्थिरता के कारणों का विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही (✓) है, और कौन-सा गलत (✗)? निशान लगाइए।

   i) चीनी गणतंत्र की स्थापना नानकिंग में 1 जनवरी, 1912 को हुई।
   ii) युआन शिकाइ का युद्ध सामंतवाद से कोई लेना-देना नहीं था।
   iii) जापान ने युआन शिकाइ का समर्थन किया।
   iv) युद्ध सामंत अपने हित साधने से ज्यादा जनता के कल्याण में रुचिशील थे।

3) लगभग 10 पंक्तियों में युद्ध सामंतों की सेनाओं के गठन में योगदान देने वाले कारकों का विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

27.5 युद्ध सामंतवाद और चीनी समाज

पिछले अनुच्छेद में हम देख चुके हैं कि अपने बीच चीन का बंटवारा कर लेने वाले युद्ध सामंत योग्यताओं और सामाजिक रवैयों के मामले में एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे। इसलिए जिन स्थितियों का पोषण उन्होंने किया वे भी विभिन्न स्थानों और अवधियों में भिन्न-भिन्न रहीं, क्योंकि एक के बाद दूसरा सेनापति स्थानीय या प्रादेशिक स्तर पर पदासीन होता रहा। युद्ध सामंतों के शोषण के विशिष्ट स्वरूपों के बारे में, या उसके हाथों बनी मिल्कियतों के बारे में, कोई भी वक्तव्य किसी एक अवधि में समचे चीन पर लागू नहीं होता। फिर भी यह कहना सही है कि युद्ध सामंत लाखों चीनियों के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आतंक और शोषण का कारण रहे। धन के लिए युद्ध सामंतों की लोलुपता तृप्त न होने वाली थी। तभी तो सैन्यवादियों ने जनता पर अतिशय व्यापक कर लगाये। उन्होंने बड़े पैमाने पर बेकार नोट भी छापे और लोगों को इन्हें स्वीकार करने को मजबूर किया, जिससे व्यापारिक लेन-देन केवल एक प्रकार का संपत्तिहरण होकर रह गये। सैनिक और दूसरे अनुत्पादक उद्देश्यों में अंधाधुंध धन निकल जाने से व्यवस्थित आर्थिक गतिविधि और नियोजन में बाधा पड़ी जिससे निश्चित तौर पर चीन का आर्थिक विकास अवरुद्ध हुआ।

युद्ध सामंतवाद अकाल का कारण भी बना। कुछ प्रांतों में इन सामंतों ने नकदी फसल के तौर पर अफीम की जबरन खेती करवायी जिससे खाद्य फसलें उगाने वाली भूमि कम पड़ गयी। उन्होंने सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण सुविधाओं के लिए आरक्षित सरकारी कोष को कम कर दिया जिसके कारण कुछ विनाशकारी बाढ़ें आयीं। सैनिकों ने बोझा ढोने वाले पशुओं को अपने कब्जे में कर लिया जिससे सीधा आर्थिक नुकसान तो हुआ ही, खेती की उत्पादकता भी कम हो गयी। युद्ध सामंतों के दौर में उत्तर चीन में पड़े भयंकर अकाल स्पष्ट तौर पर युद्ध नेताओं के कुशासन की देन थे। अनेक क्षेत्रों में, झुंड के झुंड अनियंत्रित और अनुशासनहीन सिपाही देहातों में घूमते और किसानों को अपना शिकार बनाते थे। ये वे क्षेत्र थे, जहां संगठित सेनाओं की कार्यवाहियाँ कम गंभीर थीं। हजारों लुटेरे और सैनिक देहात पर निर्भर करते थे। लूट, डकैती और हिंसा आम बात हो गयी थी। विजेता सैनिकों, और भागते सैनिकों को भी, जहां मौका मिलता, वे लूटमार करते थे। युद्धों में अक्सर नागरिकों के जान-माल की बर्बादी होती, सरकारी नौकरियां उपेक्षित या अनुपस्थित रहतीं, और भ्रष्टाचार अव्यवस्था और शोषण आम हो गये थे। उस दौर के विप्लव में हजारों व्यक्तियों को अपने घरबार छोड़ कर देश के दूसरे हिस्सों में चला जाना पड़ा। कहा जाता है कि युद्ध सामंतों के कारण चीन में "इस शताब्दी का एक सबसे बड़ा आंतरिक पलायन" हुआ।

युद्ध सामंतवाद ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के सबसे शक्तिशाली राजनीतिक आंदोलन, चीनी राष्ट्रवाद, के रूप को प्रभावित किया। राष्ट्रवाद आंशिक तौर पर युद्ध सामंतों द्वारा पोषित फूट और अंतर्राष्ट्रीय असुरक्षा का जवाब था। इसके अलावा, अनेक सामंतों ने अपनी कार्यवाहियों को वैधता देने की गरज से राष्ट्रभक्तिपूर्ण और राष्ट्रवादी नारों का उपयोग एक साधन के रूप में किया। युद्ध सामंतों का वास्तविक उद्देश्य जो भी रहा हो, इस तरह उन्होंने इस विचार का पोषण किया कि चीनियों को राष्ट्रीय स्थितियों, राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के प्रति चिंतित होना चाहिए।

लेकिन युद्ध सामंतों की गतिविधियों ने चीनी राष्ट्रवाद में एक मजबूत सैनिक आयाम बनाने में भी मदद की। युद्ध सामंत खुद तो एक राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति बना नहीं पाये, फिर भी उन्होंने गैर-सैनिक गुटों को तो ऐसा करने से रोका ही। इस तरह से उन्होंने चीनी राजनीति का और अधिक सैन्यीकरण नहीं होने दिया। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, क्वोमिंतांग को युद्ध सामंतों से होड़ करने के लिए एक शक्तिशाली सेना बनानी पड़ी थी, और इस प्रक्रिया में सेना पार्टी पर हावी हो गयी। साम्यवादियों ने भी अपने अस्तित्व में आने के कुछ वर्षों के भीतर ही, क्वोमिंतांग और दूसरे विपक्षियों से होड़ करने के लिए एक मजबूत सेना बनाने की आवश्यकता को महसूस कर लिया था।

जो भी हो अंतिम विश्लेषण में यही बात सामने आती है कि यह सैन्यीकरण न तो गहन था और न ही स्थायी। युद्ध सामंतवाद के दो प्रकट रूप से परस्पर विरोधी तथ्य सामने आये :

i) आधुनिक चीन में राजनीतिक शक्ति को सैनिक शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता, और

ii) सैनिक शक्ति अपने आप में राजनीतिक शक्ति के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, जैसा कि युद्ध सामंतों की विफलता दिखाती है।

राष्ट्रवाद पर भी सभी ने जोर दिया। किसी भी युद्ध सामंत ने कभी किसी नये राज्य की घोषणा नहीं की, न ही यह संकेत दिया कि उसकी पृथकता स्थायी थी। युद्ध सामंतों ने अपने सार्वजनिक वक्तव्यों में नागरिक या गैर-सैनिक शासन की मजबूत परंपरा को भी माना। साथ ही, उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि नागरिक शासन सैनिक शासन से श्रेष्ठ न हो। एक इतिहासकार, जेम्स शेरीडन, ने टिप्पणी दी है कि:

> .... युद्ध सामंतों के योगदान से चीनी राजनीति के अस्थायी सैन्यीकरण के बावजूद, चीन में सत्ता के संघर्ष में अंतिम विजेता साम्यवादी पार्टी इस बुनियादी सिद्धांत को लेकर चली कि पार्टी को बंदूक पर नियंत्रण रखना चाहिए।

इसी तरह युद्ध सामंतों की प्रादेशिक शक्ति ने चीन में प्रादेशिक विभाजन को मजबूत करने के लिए कुछ नहीं किया। प्रदेशों का एकताबद्ध चीन में एक सामान्य अस्तित्व था, इस तथ्य से यह अर्थ निकलता है कि युद्ध सामंतों का क्षेत्रवाद उतनी विनाशकारी शक्ति नहीं थी जितनी कि वह अन्यथा हो सकती थी। राष्ट्रीय एकता की बहाली के लिए क्षेत्रवाद को नहीं बल्कि क्षेत्रवाद पर पलने वाली स्वाधीन सैनिक शक्ति को नष्ट करना आवश्यक था।

अधिकांश युद्ध सामंत पारंपरिक मूल्यों से मजबूती से जुड़े रूढ़िवादी व्यक्ति थे। विरोधाभास यह रहा कि उन्होंने जिस फूट और अव्यवस्था का पोषण किया, उन्हीं के कारण बौद्धिक अनेकता को पनपने का सुअवसर मिला। विश्वविद्यालयों, पत्रिका प्रकाशन, उद्योगों और चीन के बौद्धिक जीवन के दूसरे अभिकरणों पर दक्षता के साथ नियंत्रण करने की क्षमता न तो केंद्र सरकार में थी, न ही प्रांतीय युद्ध सामंतों में। उन वर्षों में चीनी बुद्धिजीवी, आंशिक तौर पर युद्ध सामंतवाद के जवाब में, उस गहन विचार-विमर्श में लगे थे कि चीन को किन तरीकों से आधुनिक और मजबूत बनाया जा सकता था। 1921 में साम्यवादी पार्टी की स्थापना और 1924 में क्वोमिंतांग का पुनर्गठन आंशिक तौर पर इस बौद्धिक उत्कर्ष की देन थे। इस तरह, एक ओर तो युद्ध सामंतवाद के वर्ष बीसवीं शताब्दी में राजनीतिक एकता की कमजोर स्थिति के प्रतीक थे, और दूसरी ओर, वे बौद्धिक और साहित्यिक उपलब्धि के चरम का भी प्रतीक थे। उस विप्लव और खून खराबे वाले युग में से आंशिक तौर पर युद्ध सामंतों के जवाब में वे बौद्धिक और सामाजिक आंदोलन से प्रभावित हुए जिनकी परिणति चीन के पुनरेकीकरण और कायाकल्प में हुई।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से कौन-से कथन सही (✓) हैं, और कौन-से गलत (×)? **निशान** लगाइए।

   i) युद्ध सामंतवाद से बनी स्थितियाँ पूरे चीन में एक सी थीं।

   ii) युद्ध सामंतों ने अपने खुद के नोट छापे।

   iii) युद्ध सामंतों ने अपने खुद के हितों को साधने के लिए राष्ट्रभक्तिपूर्ण नारों का इस्तेमाल किया।

   iv) युद्ध सामंतों के दौर में राजनीतिक शक्ति को सैनिक शक्ति के बिना व्यक्त किया जा सकता था।

2) लगभग 15 पंक्तियों में चीनी समाज पर युद्ध सामंतवाद के प्रभाव का विवेचन करें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

27.6 क्वोमिंतांग का उदय

अपने जन्म से ही, क्वोमिंतांग का इतिहास उसके नेताओं के व्यक्तित्वों का परस्पर प्रभाव रहा है। पहले सन यात सेन और हवांग शिंग और फिर च्यांग काई शेक। यन यात सेन और हवांग शिंग ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत गुप्त संगठनों के नेताओं के रूप में की, जिनका 1905 में तुंग मेंग हुई में विलय हो गया। उसके बाद से सन यात सेन मृत्यु पर्यन्त उस संगठन का निर्विवाद नेता रहा। सन यात सेन की मृत्यु 1925 में हुई। तुंग मेंग हुई के नेतृत्व में मांचू विरोधी आंदोलन आगे बढ़ा तो अनेक अवसरवादी और स्वार्थी लोग इसमें शामिल हो गये। इसी तरह, यह महसूस करने वाले अनेक उच्चाधिकारियों और परंपरावादी विद्वानों ने भी विजेता पक्ष में शामिल हो जाने का निर्णय ले लिया कि मांचुओं के प्रति निष्ठावान रहने में कोई लाभ नहीं था। इस कारण तुंग मेंग हुई के लिए प्रगति और विकास की कोई एक समान नीति बनाना कठिन हो गया। सन यात सेन के युआन शिकाई के पक्ष में राष्ट्रपति पद छोड़ने और कुछ समय के लिए राजनीतिक रूप से सक्रिय न रहने का भी क्वोमिंतांग के संगठन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। हवांग शिंग भी निष्क्रिय रहा, उसने अपनी सेना को इस आशा से भंग कर दिया कि दूसरे सैनिक नेता भी ऐसा ही करेंगे। यह चीन का दुर्भाग्य रहा कि इस उदाहरणीय आचरण का अनुसरण नहीं किया गया।

सुंग जियाओरेन के राजनीतिक विचार सन और हवांग से भिन्न थे। सुंग चीन में मंत्रिमंडलीय ढंग की सरकार स्थापित करने और उसकी उपलब्धियों में क्वोमिंतांग को एक निर्णायक भूमिका देने को कृतसंकल्प था। सुंग स्वार्थी व्यक्ति नहीं, बल्कि उत्साही आदर्शवादी और प्रखर बुद्धि का था। उसकी आस्था संसदीय जनतंत्र, मंत्रिमंडलीय सरकार और दलीय प्रणाली में थी। उसकी आशा यह थी कि केवल इसी तरह की प्रणाली के माध्यम से चीन प्रगति कर सकता और स्थिर हो सकता था, और सैनिकों को नागरिक राजनीति से बाहर करने का यह सबसे अच्छा तरीका था। संवैधानिक व्यवस्था में पार्टी को एक प्रभावी माध्यम बनाने की गरज से सन ने अगस्त, 1912 में संगठन को फिर से दिशा दी। इस नये संगठन में तुंग मेंग हुई को केंद्र में रखा गया और दूसरी नवोदित छोटी पार्टियाँ उसमें शामिल हो गयीं। 1912-13 के चुनाव क्वोमिंतांग के लिए भी और व्यक्तिगत तौर पर सुंग जियाओरेन के लिए भी सफलदायी रहे। वह सरकार का गठन करने को तैयार था। युवान शिकाई ने सुंग की सफलता से भयभीत होकर संसद बुलाये जाने से पहले ही उसकी हत्या करवा दी।

क्वोमिंतांग के नेताओं ने समझ लिया कि सुंग की हत्या और पुनर्गठन ऋण का इस्तेमाल युआन की शक्ति को मजबूत करने के लिए किया जाएगा। उन्हें अपना राजनीतिक भविष्य अंधकारमय लगा। उन्होंने इस बात को समझा कि 1911 की क्रांति का अंत तब तक नहीं होता जब तक युआन के हाथों सत्ता थी। इसी स्थिति में 1913 की दूसरी क्रांति हुई। लेकिन उस समय तक क्वोमिंतांग अपने आपको व्यापक जनाधार से काट चुकी थी। युआन शिकाई को साम्राज्यवादियों का समर्थन प्राप्त था। उसी वर्ष नवम्बर में, युआन ने क्वोमिंतांग को भंग करके उसे अवैध घोषित कर दिया। उसके तमाम समर्पित सदस्य भूमिगत हो गये।

एक भूमिगत संगठन के रूप में उसने अपना नाम चीनी क्रांतिकारी पार्टी (क्वोमिंतांग) रख लिया। संगठन के नेता, सन यात सेन का राजनीतिक दर्शन पार्टी की विचारधारा रही। सन ने तीन जन सिद्धांतों और तीन शासकीय चरणों पर जोर दिया।

तीन जन सिद्धांतों में थे :

- **जनता का राष्ट्रवाद**

- जनता का जनतंत्र, और
- जनता और आजीविका।

शासकीय चरणों में सरकार की उसकी अवधारणा का अभिप्राय यह था कि चीन को चरणों में एक प्रकार की सरकार से दूसरी उच्चतर प्रकार की सरकार की ओर बढ़ना चाहिए :

- पहले प्रकार की सरकार सैनिक सरकार होगी,
- दूसरे चरण में चीन को क्वोमिंतांग के राजनीतिक संरक्षण में रहना था, और
- अंत में चीन में संवैधानिक सरकार होगी।

सन ने सबसे पहले 1905 में इन विचारों को व्यक्त किया था। ये विचार चीनी क्रांतिकारी पार्टी की अधिकारिक विचारधारा हो गये (देखिए इकाई 21)।

इस पार्टी के सदस्यों से सन ने निष्ठा और उंगलियों के निशान की मांग की। सदस्यों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया :

i) संस्थापक सदस्य,

ii) सक्रिय सदस्य, और

iii) साधारण सदस्य।

सन के निकटतम साथी, हुवांग शिंग ने प्रकट तौर पर इस तरह के सदस्यों के स्तरीकरण और उनके उंगलियों के निशान लेने पर आपत्ति की। मतभेद बढ़े और वे अलग हो गए। हुवांग शिंग के स्थान पर क्रांतिकारी विश्वसनीयता वाले सैनिक गवर्नर चेन ची में को सन का मुख्य सहायक नियुक्त किया गया। लेकिन यह पार्टी एक जनाधार वाला संगठन नहीं बन सका, क्योंकि अनेक लोग इसे किसी गुप्त संगठन से बिल्कुल भी भिन्न नहीं मानते थे। पहले जिन कुछ बुद्धिजीवियों ने सन के साथ अपने आपको झोंक दिया था, उन्होंने अब इस पार्टी में शामिल होने से मना कर दिया। इसके स्थान पर उन्होंने यूरोपीय मामलों की अनुसंधान समिति का गठन कर लिया। तथाकथित तौर पर यह एक विवेचन गुट था, लेकिन वास्तव में इसने एक राजनीतिक दल की तरह काम किया।

चीनी क्रांतिकारी पार्टी के खाते में बहुत कम उपलब्धियाँ थीं। एक विफल विद्रोह के अलावा, इसकी एकमात्र दूसरी भूमिका युआन शिकाई के खिलाफ अभियान में रही। कुल मिलाकर यह पार्टी जनता के नेतृत्व संभालने में विफल रही, और उभरते सैनिक कुलीनों के खिलाफ किसी जन आंदोलन का नेतृत्व करने की स्थिति में नहीं थी।

राजनीतिक परिदृश्य से युआन शिकाई के गायब हो जाने के बाद क्वोमिंतांग के तत्व विभिन्न गुटों और धड़ों में बंट गये। 1916-17 में, क्वोमिंतांग के पूर्ववर्ती सदस्य दक्षिण से वाम की ओर इस तरह गुटों में बंट गये : राजनीतिक अध्ययन समिति, श्रेष्ठ मित्र समिति, राजनीति सभा और जन मित्र समिति। राजनीतिक अध्ययन समिति उत्तरी सैन्यवादियों के साथ सौदेबाजी करना चाहती थी। जन मित्र समिति के अधिकांश सदस्य सन के अनुयायी और क्रांतिकारी पार्टी के सदस्य थे और वे तुआन ची जुई के कट्टर विरोधी थे। इन वर्षों के दौरान कैंटन स्थित दक्षिणी सरकार पुराने संविधान और पुरानी संसद की बहाली पर जोर देती रही। राजनीतिक अध्ययन समिति दक्षिणी सैन्यवादियों के गठबंधन में तो रही ही, लेकिन उसके उत्तरी सैन्यवादियों से भी संबंध रहे। इसके कारण सन यात सेन को अंतहीन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

सन् 1917 के अंतिम महीनों में पीकिंग में फेंग ग्वाओजांग के राष्ट्रपति का पद संभालने के बाद संसद के क्वोमिंतांग गुटों ने कैंटन में एक विशेष सत्र शुरू किया और सन को प्रधान सेनापति चुन लिया। पीकिंग सरकार के साथ शांति के इच्छुक राजनीतिक अध्ययन समिति और जन मित्र समिति ने प्रधान सेनापति के पद को समाप्त कर दिया और उसे ऐसा पद दे दिया जिसमें बहुत अधिकार नहीं थे। सन ने अगस्त, 1919 में त्याग पत्र दे दिया। सन यात सेन के इस अनुभव ने उसके मन में न केवल अपने कुछ पूर्ववर्ती अनुयायियों के प्रति, बल्कि दलगत राजनीति और संसदीय प्रणाली के प्रति भी तिरस्कार का भाव पैदा कर दिया। वह भिन्न ढंग से सोचने लगा। एक ओर तो वह कैंटन में एक मजबूत क्रांतिकारी अड्डा कायम करने को कृत संकल्प था, जिसके लिए उसने दूसरे सैनिक गुटों के साथ गठबंधन किया। दूसरी ओर, वह एक भिन्न युग की नयी चुनौतियों का जवाब देने में सक्षम एक संगठन, कायाकल्पित क्वोमिंतांग के विचार पर चिंतन करने लगा। उसने नयी सोवियत

सरकार के दूतों के साथ परामर्श शुरू कर दिया। उसके चिंतन में इस बदलाव के परिणामस्वरूप 1924 में, सोवियत साम्यवादी पार्टी की तर्ज पर क्वोमिंतांग का पुनर्गठन हुआ।

बोध प्रश्न 3

1) लगभग 15 पंक्तियों में चीन की राजनीति में क्वोमिंतांग की भूमिका का विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) सन यात-सेन के मोहभंग के क्या कारण थे? लगभग 5 पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....
....
....
....
....
....

27.7 चार मई की घटना

इकाई 21 में हमने चार मई के आंदोलन का उल्लेख किया था। यहाँ हम इस घटना से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा कर रहे हैं। वैसे इस आंदोलन के सांस्कृतिक आयामों पर इकाई 28 में चर्चा की जाएगी। युआन शिकाई की मर्यादाहीन महत्वाकांक्षाएँ, युद्ध सामंतों का उदय और राजनीतिक स्तरीकरण 1911 की क्रांति के दुखद परिणाम रहे। इसी दौर में चीन में संस्कृति, दर्शन, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव भी देखने में आया। चार मई की घटना को चीन की "सांस्कृतिक क्रांति", "साहित्यिक क्रांति", "चीन का पुनर्जागरण", "ज्ञानोदय" और "पुनरुत्थान" आदि भी कहा जाता है। यह कोई एक रूप या सुसंगठित आंदोलन नहीं था, बल्कि अनेक गतिविधियों का सम्मिश्रण था। इस आंदोलन में विविध विचार काम कर रहे थे, लेकिन वे सभी एक समेकित घटना के अंग प्रतीत होते थे। वास्तव में, अधिकांश इतिहासकार यह स्वीकार करते हैं कि चीनी क्रांति की शुरुआत चार मई की घटना से होती है। हमें 1919 की चार मई की घटना और चार मई का आंदोलन कही जाने वाली घटना में भेद करना होगा। जो आंदोलन 1915 के आसपास शुरू हुआ था, उसे बाद में 1919 की घटना के बाद यह नाम दे दिया गया था।

जैसा कि हम इकाई 21 में विवेचन कर चुके हैं, चार मई की घटना एक विशाल प्रदर्शन था। इस प्रदर्शन का आयोजन पीकिंग विश्वविद्यालय और कुछ दूसरी उच्च शिक्षा संस्थाओं के छात्रों ने 1919 में उस तारीख को तियानान मेन चौक पर किया था। ये छात्र वर्साय की उस संभावी संधि का विरोध कर रहे थे जिस पर प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर पेरिस में बातचीत हो रही थी। चीन में इस आशय की खबरें पहुँच रही थीं कि जापान ने यह मांग की थी कि जर्मनी ने असमान संधि व्यवस्था के तहत शांतुंग पर जो कब्जा कर लिया था उस पर क्षेत्रातीत अधिकारों का स्वतः जापान को हस्तांतरण हो जाना चाहिए। इन खबरों में इस बात का संकेत भी मिलता था कि इंग्लैंड और फ्रांस जैसी दूसरी साम्राज्यवादी ताकतें जापान की मांग पूरी करने की इच्छुक थीं। एक बार फिर चीनियों की राष्ट्रवादी भावनाओं को ठेस पहुँची। पीकिंग का युद्ध सामंतों का शासन तो शांतुंग संबंधी संधि पर हस्ताक्षर करने को तैयार था, लेकिन जनता ने साम्राज्यवादी भावनाओं को खुलकर व्यक्त किया और छात्रों ने आंदोलन में सबसे सक्रिय हिस्सा लिया। चार मई की जिस घटना में छात्रों की राजनीतिक सक्रियता चरम पर पहुँच गयी थी उसका विस्तार से विवरण देने से पहले उस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जिसमें राष्ट्रवाद के पक्ष में साम्राज्यवाद के खिलाफ इतना बड़ा अभूतपूर्व छात्र आंदोलन उठ सका।

चीन में 1911 की क्रांति एक स्थिर और स्वच्छ राजनीतिक व्यवस्था का विकास करने में विफल रही। चीन की अव्यवस्थित और भ्रष्ट अंदरूनी राजनीति और उसकी संप्रभुता पर सतत साम्राज्यवादी अतिक्रमण के फलस्वरूप राष्ट्रभक्त शक्तियां एक बार फिर एकजुट हो गयीं। लेकिन चीन में सामाजिक और वैचारिक परिवेश वैसा ही बना रहा जैसा वह 1911 से पहले के दौर में था।

एक सुविदित तथ्य यह था कि पीकिंग स्थित युद्ध सामंत सरकार में जापान समर्थक तत्व थे। 1915 की जापानी इक्कीस मांगों को देखते हुए यह खतरे की घंटी थी। विभिन्न गुटों ने पेरिस शांति सम्मेलन में ताकतों के बीच चल रही गुप्त कूटनीति का विरोध किया। 1918 में, छात्रों और सौदागरों की ओर से सरकार को एक याचिका दी गयी जिसमें शांतुंग पर जर्मनी के पूर्व आधिपत्य को जापान को स्थानांतरित करने के मुद्दे पर गहन चिंता व्यक्त की गयी। जब चीन में इस आशय की खबर पहुँची कि पेरिस सम्मेलन में चीन के प्रस्तावों को ठुकरा दिया गया था तो, इससे प्रचंड साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएँ भड़क उठीं। चीनियों के मन सभी ताकतों के प्रति संदेह से भर गये। कुछ ही दिनों के अंतराल में कई समितियाँ उठ खड़ी हुईं। 1 मई, 1919 और 3 मई 1918 के बीच पीकिंग विश्वविद्यालय के छात्रों ने परिसर में सभाएँ कीं जो भाववेश से भरी थीं। छात्रों में यह महसूस किया गया कि उन्हें कार्यवाही करनी होगी, नहीं तो चीन की अधीनता का कभी अंत नहीं होगा। 4 मई को दोपहर बाद एक अभूतपूर्व स्तर का विशाल प्रदर्शन तियानान मेन (स्वर्गीय शांति का द्वार) चौक पर किया गया। पीकिंग विश्वविद्यालय और तेरह और कॉलेजों के हजारों छात्रों ने कई घंटों तक सड़कों पर जलूस निकाला। यह प्रदर्शन, कुल मिलाकर शांतिपूर्ण रहा। वैसे लड़ाकू छात्रों के एक गुट ने कुछ नागरिक और सैनिक अधिकारियों पर हमला किया। इन अधिकारियों के विषय में यह विश्वास किया जाता था कि उनकी भावनाएँ जापान समर्थक थीं। जनता के इस विरोध और आग्रह के जवाब में, चीन प्रतिनिधि मंडल ने पेरिस में चल रही बातचीत का बहिष्कार कर दिया और त्यागपत्र दे दिया। लेकिन यह काम 28 जून को ही हो सका।

चार मई और 28 जून, 1919 के बीच बड़ी संख्या में जन सभाएँ और विचार-विमर्श हुए। छात्र जलूस निकालने और नये बुद्धिजीवियों को संगठित करने और दूसरे गुटों के साथ गठबंधन का प्रयास करने में लगे थे। सड़कों पर प्रदर्शन एक महीने और चले। सरकार ने पीकिंग विश्वविद्यालय को बंद करना और छात्रों को भड़काने के अपराध में जाई युआपे को बर्खास्त करना चाहा। सरकार जनता के समर्थन का सही आकलन नहीं कर पायी, जिसके बल पर छात्रों के प्रदर्शन दूसरे शहरों तक फैल गये। एक पीकिंग छात्र संघ गठित हो गया और बाद में मजदूर वर्ग की पूरी भागेदारी के साथ बड़े शहरों में आम हड़ताल की गयी। छात्रों ने सौदागरों, उद्योगपतियों और मजदूरों के साथ गठबंधन किए। आंदोलन, हड़तालें और प्रदर्शन हुए जिसके परिणामस्वरूप सरकार ने व्यापक गिरफ्तारियाँ और सख्त कार्यवाही की। चीनी प्रतिनिधि मंडल का वर्साय की संधि का हिस्सा बनने से मना करना व्यापक विरोध प्रदर्शनों की पहली सफलता थी। आने वाले दौर में हमें विभिन्न सामाजिक गुटों के बीच घनिष्ठतर संपर्क और नये बुद्धिजीवी, सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का उदय देखने को मिलता है। इस तरह, चार मई की घटना राष्ट्रवादी और वर्गीय हितों की एक सम्मिलित अभिव्यक्ति थी। 1919 की घटनाओं के बाद भी राष्ट्र का सांस्कृतिक

रूपांतरण और भी अधिक ताकत और तेजी के साथ चलता रहा। 1939 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक के काल को चीनी इतिहास में चार मई का युग कहा जाता है, क्योंकि तब तक नये विचार दृष्टिकोण और मतों की निरंतर अभिव्यक्ति और परीक्षण चल रहा था। सोवियत संघ में समाजवाद की जीत और निरंकुश जार शासन का तख्ता पलटने से चीन में अनेक युवा बुद्धिजीवियों को प्रेरणा मिली। तुरंत इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बहसें और विचार-विमर्श हुए कि क्या समाजवाद चीन की समस्याओं का समाधान था। लगभग उसी समय अंग्रेज दार्शनिक, बर्ट्रेंड रसेल चीन की व्याख्यान यात्रा पर था। बर्ट्रेंड रसेल ने चीन के लिए एक उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था की वकालत की; क्योंकि उसके विचार में बोल्शेविकों का रास्ता अप्रासंगिक था। इससे और बहसें उठ खड़ी हुईं। पहले चीनियों को मार्क्स का जो लेखन उपलब्ध नहीं था, वह अब लोकप्रिय हो रहा था। विविध लेखों के अनुवाद भी उपलब्ध होने लगे थे। प्रमुख बुद्धिजीवियों में ली ता चाओ और चेन तु शू मार्क्सवाद की ओर झुके, जबकि हू शी और दूसरे बुद्धिजीवियों ने उदारवाद का समर्थन किया। मार्क्सवादी गुट ने अंत में 1921 में, चीनी साम्यवादी पार्टी का गठन किया। इसलिए यह कहना सही है कि चीन में साम्यवाद चार मई के आंदोलन का सीधा परिणाम था।

बोध प्रश्न 4

1) लगभग 10 पंक्तियों में चार मई की घटना का विवेचन कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) लगभग 5 पंक्तियों में चीन पर अक्टूबर क्रांति के प्रभावों को गिनाइए। ।

....
....
....
....
....

27.8 सारांश

सन् 1911 और 1919 के बीच के दौर में चीनी समाज में दूरगामी बदलाव हुए। 1911 में शाही व्यवस्था के अंत का परिणाम तुरंत एक बेहतर राजनीतिक व्यवस्था के रूप में सामने नहीं आया। एक ओर, सैन्यवाद, सत्तावाद, धड़ेबाजी और सत्ता संघर्ष राजनीतिक परिदृष्य में हावी रहे। दूसरी ओर, और भी अधिक निर्लज्ज और पाशविक किस्म के साम्राज्यवाद ने चीन से उसकी बची-खुची गरिमा भी छीन लेने का प्रयास किया। दूसरे शब्दों में, इस दौर में जापानी साम्राज्यवाद की उन्नति देखने को मिली। युद्ध सामंतवाद व्याप्त था और कोई एक सरकार नहीं थी। लेकिन एक सकारात्मक पक्ष यह भी था कि नये विचारों और संगठनों का उदय हुआ जिन्होंने चीन को इस निराशाजनक स्थिति से बाहर निकाला।

27.9 शब्दावली

सैन्यवादी : इस शब्द का इस्तेमाल युद्ध सामंतों के लिए होता है।

युद्ध सामंत : निजी सेनाओं वाले प्रादेशिक फौजी।

27.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपना उत्तर भाग 27.2 के आधार पर लिखिए।
2) i) ✓ ii) ✗ iii) ✓ iv) ✓
3) अपना उत्तर उपभाग 27.4.1 के आधार पर लिखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) ✗ ii) ✓ iii) ✓ iv) ✗
2) अपना उत्तर भाग 27.5 के आधार पर लिखिए।

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर भाग 27.6 के आधार पर लिखिए।
2) अपने उत्तर में क्वोमिंतांग के अंदर गुटबाजी, आंतरिक लड़ाई, दृष्टिकोण के अंतर आदि को शामिल कीजिए। देखिए भाग 27.6 का अंतिम अंश।

बोध प्रश्न 4

1) देखिए भाग 27.7
2) देखिए भाग 27.7 का अंतिम अंश।

इकाई 28 सांस्कृतिक आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
28.2 नया दौर
28.3 कन्फ्यूशियसवाद और परम्परागत चीनी समाज
28.4 1911 की क्रांति और "नयी संस्कृति"
28.4.1 दार्शनिक और उनके विचार
28.4.2 छात्र समुदाय
28.4.3 न्यू यूथ (New Youth)
28.4.4 परम्परा पर आक्रमण : बुद्धिजीवियों के प्रयास
28.5 चार मई की घटना के परिणाम
28.6 सारांश
28.7 शब्दावली
28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- चीन पर कन्फ्यूशियसवादी दर्शन के प्रभाव का जिक्र कर सकेंगे,
- 1911 के बाद "नयी संस्कृति" के आगमन के कारणों का उल्लेख कर सकेंगे,
- नये सांस्कृतिक आंदोलन के तत्वों का मूल्यांकन कर सकेंगे, और
- चीनी सांस्कृतिक क्रांति के बुद्धिजीवियों की भूमिका को आँक सकेंगे।

28.1 प्रस्तावना

इकाई 4 (खंड 1) में हमने कन्फ्यूशियस और उसके सिद्धांतों की चर्चा की थी। इस सिलसिले में हमने क्लासिकल और मध्ययुगीन चीन पर कन्फ्यूशियाई दर्शन के प्रभाव का भी जिक्र किया था। कन्फ्यूशियस के दर्शन से चीन वासी 2000 वर्षों से अधिक से परिचित थे और उसे व्यवहृत कर रहे थे। पर कुछ कारणों से ऐसे नये विचार सामने आये, जिनके कारण चीनी समाज पर कन्फ्यूशियाई दर्शन की न केवल पकड़ ढ़ीली हुई, बल्कि उन्होंने इस दर्शन के मूल आधार पर ही आघात किए। चीन का साम्राज्यवादी शोषण, आधुनिकीकरण की जरूरत और राजनीतिक सुधारों की आवश्यकता ने इस प्रकार के विचारों के उदय के लिए आधार भूमि प्रदान की। आरंभ में कन्फ्यूशियाई दर्शन के घेरे में रहकर ही सुधार की कोशिश की गयी; केवल ताइपिंग विद्रोह में इसे चुनौती दी गयी और इसका खुला उल्लंघन किया गया। इन सभी बिंदुओं पर पिछली इकाइयों में विचार किया जा चुका है।

इस इकाई में हम 1911 की क्रांति के तुरंत बाद चीन में पनपने वाली नयी संस्कृति के उदय पर विचार-विमर्श करेंगे। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में इस नयी संस्कृति की नींव रखी जा चुकी थी। इस इकाई में बुद्धिजीवियों, छात्रों, विश्वविद्यालय व्यवस्था आदि की भूमिका पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

28.2 नया दौर

किसी साम्राज्य का अंत फिर विद्रोह और अव्यवस्था आदि बातें चीनीवासियों के लिए नयी न थीं। उनके पूर्वजों ने समय-समय पर अव्यवस्था के कई दौर देखे थे। पर उन्होंने न केवल

इस अवस्था भरे माहौल पर विजय हासिल कीं, बल्कि कभी-कभी उन्नति की ओर भी अग्रसर हुए। चीनवासियों के लिए साम्राज्यों की उलट-पुलट इतिहास की एक आम बात थी। पर 1911 में चिंग साम्राज्य का पतन अपने आप में भिन्न था। इसके बाद बादशाहियत खत्म हो गई। चीनवासियों के अनुसार राजा "स्वर्ग पुत्र" के रूप में सर्वोच्च शासक होता था और स्वर्ग का आशीर्वाद बने रहने तक उसकी सत्ता अक्षुण्ण बनी रहती थी। जब स्वर्ग की नजरें किसी राजा और साम्राज्य से कुपित हो जाती थीं, फिर नया राजा और साम्राज्य उसकी जगह ले लेता था। राजशाही के अंत के बाद चीन की अन्य संस्थाएँ भी बिखरी। परिवार, कुल, वंश, श्रेणी, गाँव आदि कुछ ऐसी संस्थाएँ उस समय विराजमान थीं, जिनके कारण समाज स्वनिर्भर और स्वनियंत्रित इकाई था। राजशाही के अंत के बाद सारी संस्थाएँ चरमराने लगीं। नारी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, कल-कारखानों और शहरों का उदय, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में नयी शिक्षा व्यवस्था के उदय से एक ओर परंपरागत चीनी समाज टूटने लगा और दूसरी तरफ आधुनिक युग का आगमन हुआ। सत्ता सैनिकों ने हथिया ली थी, अतः राजनीतिक क्षेत्र में प्रजातांत्रिक शासन की नयी अवधारणा को पनपने का मौका नहीं मिला, पर संस्कृति आंदोलन अपनी गति पर था। चीन में बदलाव और विकास का जोर इतना ज्यादा था कि सांस्कृतिक बदलाव अवश्यंभावी हो गया। इस बदलाव और विकास का प्रभाव कहीं न कहीं तो पड़ना ही था। हाँ, राजनीति और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में न पड़ कर यह प्रभाव संस्कृति के क्षेत्र में पड़ा। इस सांस्कृतिक क्रांति की मुख्य विशिष्टता यह थी कि इसने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी। कन्फ्यूशियस के दर्शन का चीनवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव था और वे 2000 वर्षों से इसका पालन करते आ रहे थे। एक बार समाज के मूलाधार दर्शन पर चोट हुई कि सारी ऊपरी संरचनाएँ भरभराकर ढहने लगीं।

राजशाही वंश आधारित बादशाहत समाप्त होने के बाद भी कन्फ्यूशियसवाद सुरक्षित और अक्षुण्ण रहा। यह ध्यान रखना चाहिए कि राजतंत्र कन्फ्यूसियस के दर्शन से भी पुराना था। कन्फ्यूशियस के बनाए नियम और चलन अभी भी समाज में विद्यमान थे। इन नियमों और परंपराओं के माध्यम से समाज में "सौहार्द" कायम किया गया था, समाज में कई स्तर थे कुछ निचले तबके के लोग थे, कुछ ऊँचे तबके के लोग। निचले तबके के लोगों की स्थिति श्रेष्ठ थी। इस प्रकार की व्यवस्था और विचार से आगे के विकास का मार्ग अवरुद्ध होता था। उन्नीसवीं शताब्दी के मांचू दरबार के सुधारवादी लोगों और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों के सुधारकों ने कन्फ्यूशियस के बनाए गये ढाँचे के अंदर रहकर ही चीन को बदलने की कोशिश की। इस कारण से चीनी समाज पर इन बदलावों का जमकर प्रभाव नहीं पड़ सका। ये बदलाव ज्यादातर दिखावटी थे। वस्तुतः कन्फ्यूशियाई रूढ़िवादिता को चुनौती दिए बिना क्रांतिकारी बदलाव संभव नहीं था।

28.3 कन्फ्यूशियसवाद और परंपरागत चीनी समाज

कन्फ्यूशियस दर्शन से चीन के जीवन का प्रत्येक अंश प्रभावित था और तथाकथित आधुनिक युग भी इससे अछूता न था। कन्फ्यूशियस के विचारों और विश्वासों पर हम पहले ही (इकाई 4) में बातचीत कर चुके हैं। यहाँ हम एक बार फिर उनका उल्लेख करेंगे। पर यहाँ संदर्भ अलग होगा। यहाँ हम उन कारणों के संदर्भ में इन सिद्धांतों का उल्लेख करेंगे, जिसके कारण इन्हें नकारा गया और नयी संस्कृति का जन्म हुआ।

कन्फ्यूशियाई दर्शन में युवा की अपेक्षा बुजुर्ग को, वर्तमान की अपेक्षा भूत को, शासित की अपेक्षा शासक को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को तरजीह देने की प्रथा थी। इस स्तरीकरण के आधार पर सामाजिक सौहार्द और व्यवस्था को कायम किया जा सकता था। अगर एक बार यह क्रम टूटा हो समाज का सौहार्द नष्ट हो जाएगा, समाज बिखर जाएगा, व्यवस्था और स्थायित्व का स्थान अव्यवस्था ले लेगी और समाज का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा। अतः कन्फ्यूशियसवाद यथास्थिति बनाए रखने का समर्थक और किसी भी प्रकार के बदलाव का विरोधी था। वस्तुतः यह एक अनुचित और कट्टरपंथी दर्शन था। इस दर्शन को कभी भी धर्म के रूप में नहीं देखा गया पर इसके कुछ तत्व धार्मिक नियमों से भी अधिक कट्टर थे। यह धर्म नहीं था, अतः यह बौद्ध, इसाई और चीन के किसी भी लोक धर्म के साथ जी सकता था।

राजनीति और सरकार में कन्फ्यूशियसवाद ने "नैतिक शासक" के विचार को प्रतिपादित किया। अगर शासक खुद नैतिक सिद्धांतों का पालन नहीं करेगा, तो वह अपनी प्रजा को

कैसे संभाल सकेगा ? राजनीतिक व्यवस्था का संबंध अलौकिक दुनिया से जुड़ा हुआ था और राजा "स्वर्ग पुत्र" था, अतः राजा को नैतिक और पवित्र होना था। राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य था, राजा अपनी प्रजा पर शासन करने के लिए जन्मा है और यह उसका नैतिक अधिकार था।

कन्फ्यूशियाई सोच के अनुसार स्त्री पूर्णतः पुरुष को समर्पित थी और युवा बुजुर्गों के प्रति नतमस्तक थे। आयु और लिंग पर आधारित यह भेदभाव समाज में इस प्रकार घुलमिल गया था, कि कोई इसके बारे में सोचता तक नहीं था। समाज में स्त्री की कोई भूमिका नहीं थी, घर में वह माँ और पत्नी मात्र थी। बच्चा जनना और उसका पालन करना उसका सामाजिक कर्तव्य था। चीनी नारियों का सदियों से शोषण और दमन होता आ रहा था, उन्हें शिक्षा प्राप्ति का अधिकार नहीं था, वे सम्पत्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती थीं, किसी भी चीज पर उनका अधिकार नहीं था। यहाँ तक कि दक्षिणी चीन की स्त्रियों की स्थिति भी संकीर्णवादी उत्तरी चीन की स्थितियों से बहुत बेहतर न थी जबकि दक्षिणी चीन की स्त्रियाँ कृषि कार्य में पूरा हाथ बँटाती थीं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी सामाजिक कुप्रथाएँ भी प्रचलित थीं, जिनके कारण स्त्रियों का जीवन नारकीय हो गया था, जैसे पैर छेदने की प्रथा, दुल्हन को बेचा जाना और बाल विवाह।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया युवा भी शोषित के दर्जे में आते थे। यह व्यवस्था बुजुर्गों के प्रति युवाओं के पूर्ण समर्पण की माँग करती थी। कन्फ्यूशियस के सिद्धांत के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद भी पुत्र का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि उसे अपना सम्मान समय-समय विभिन्न अनुष्ठानों और पूजा-अर्चना के माध्यम से व्यक्त करना पड़ता है। इस व्यवस्था ने चीन के युवाओं को एक हद तक दब्बू, कायर और कमजोर बना दिया था। इससे उनके व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता था। पारिवारिक व्यवस्था में भी शोषण के कुछ औजार निहित थे, जो व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में बाधा उत्पन्न करते थे।

चीन की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित थी। शताब्दियों से शिक्षा दीक्षा कुछ मुट्ठी भर कुलीन लोगों का विशेषाधिकार माना गया था। शिक्षा का एक ही मुख्य उद्देश्य था। इसके जरिए बादशाह के दरबार के लिए अधिकारी विद्वानों का निर्माण करना था ताकि चीन देश को लगातार नियंत्रण में रखा जा सके। शिक्षा का दायरा भी बहुत सीमित था। इसमें आरंभिक काल में लिखी कुछ श्रेष्ठ पुस्तकों का ही अध्ययन कराया जाता था। एक शिक्षित व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि उसे प्राचीन ग्रंथ की बातें कंठाग्र हों। बेहतर-स्मरण शक्ति वाला व्यक्ति अधिक विद्वान माना जाता था। पदाधिकारियों की नियुक्ति नागरिक सेवा परीक्षा के माध्यम से होती थी। इसमें भी स्मरण शक्ति की ही परीक्षा ली जाती थी और इसे ज्ञान का पर्याय माना जाता था। परम्परागत चीनी शिक्षा व्यवस्था की सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि लिखित भाषा साहित्यिक या प्राचीन चीनी (**वेन ऐन**) भाषा थी, जो बोलचाल की भाषा (**बड हुआ**) से बिल्कुल अलग थी। इस भाषा पर कई वर्षों के अध्ययन के बाद ही अधिकार हो पाता था। शिक्षा के प्रसार में यह सबसे बड़ी बाधा थी, क्योंकि मेहनतकश लोगों के पास शिक्षा के लिए इतना समय देना असंभव प्रायः था। केवल अमीर लोग ही इसका लाभ उठा सकते थे। पदानुक्रम और असमानता पर आधारित कन्फ्यूशियाई सिद्धांत ने शिक्षा व्यवस्था के इस रूप को समर्थन दिया।

एक बात ध्यान देने की है कि गरीब ही कन्फ्यूशियसवाद का शिकार होते थे, शक्तिशाली लोग अक्सर इसका उल्लंघन करते थे। इसीलिए यह व्यवस्था इतने दिनों तक चल पाई। कहने का तात्पर्य है कि शासक वर्ग ने इस सिद्धांत का अपने हित के लिए उपयोग किया। पर इसके बावजूद यह चीन के सामाजिक परिवर्तनों को रोक नहीं सका। यह उसे संघर्ष और हिंसा से दूर रखने में भी बहुत दिनों तक कामयाब न रह सका।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित वक्तव्यों में कौन सही या गलत **हैं**? (✓) **और** (×) **का निशान** लगाइए।

   i) सांस्कृतिक क्रांति ने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी।

   ii) क्रांतिकारी परिवर्तनों के लिए कन्फ्यूशियाई कट्टरपंथी को चुनौती देने की कोई जरूरत नहीं थी।

   iii) कन्फ्यूशियसवाद ने नारी मुक्ति की वकालत की।

   iv) शक्तिशाली वर्ग ने कमजोर वर्ग पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए कन्फ्यूशियसवाद का उपयोग किया।

2) कन्फ्यूशियसवाद के दौरान नारी की स्थिति पर 5 पंक्तियों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

....

28.4 1911 की क्रांति और "नयी संस्कृति"

मांचू शासन ने 1905 में अपने शासन के अंतिम दिनों में, सुधार कार्यक्रमों के तहत नागरिक सेवा परीक्षाओं को समाप्त कर दिया। इसके स्थान पर भर्ती की कोई नयी कारगर व्यवस्था कायम न की जा सकी। प्रशासनिक तौर पर, चीन और भी कमजोर हो गया। एक तरफ साम्राज्यवादी शक्तियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, दूसरी ओर पीकिंग सरकार राजनीतिक उठा पटक, षडयंत्रों और सत्ता के झगड़े में फँसती जा रही थी। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तौर पर चीन पिछड़ा रह गया। यह इतिहास का एक सत्य है कि किसी भी देश के लोग अधिक समय तक निष्क्रिय दबे हुए और शोषित नहीं रह सकते हैं। परिवर्तन का दौर आना अवश्यंभावी है और चीन में भी ऐसा हुआ। बुद्धिजीवियों, छात्रों और शिक्षकों ने लोगों को जागरूक किया और चीन को बदलाव के पथ पर अग्रसर किया। इससे चीन का भला हुआ। प्रार्थमिक तौर पर यह बौद्धिक क्रांति थी। चारों ओर राष्ट्रीयता, जनतंत्र, उदारवादविज्ञान, समाजवाद और साम्यवाद की बातें होने लगीं।

अक्तूबर, 1911 की चीनी क्रांति को "दिखावटी" माना जाता है, क्योंकि इससे कोई सामाजिक बदलाव नहीं आया, सामाजिक क्रांति की तो बात ही छोड़ दीजिए। पर वास्तविकता यह है कि इस क्रांति के कारण निम्नलिखित परिवर्तन हुए:

- सार्वभौम राजतंत्र और इसे वैधानिक बनाने वाली पारसत्ता के सिद्धांत की समाप्ति
- पूरे समाज में, समाज के स्थानीय स्तर तक शक्ति और सत्ता का बिखराव और इस पर सैनिकों का अधिकार
- कई स्तरों पर उस समाज की नैतिक सत्ता का ह्रास
- नये और पुराने स्थानीय शक्तिशाली और धनवान लोगों के मन में असुरक्षा का भाव
- अपने वैधता के आधार को स्थापित करने में नये गणतंत्र की असफलता।

1911 के काफी पहले ये सारी प्रवृत्तियाँ अंदर ही अंदर पनप रही थीं। केवल नागरिक सेवा परीक्षा व्यवस्था समाप्त करने से ही "शिक्षितों" की सामाजिक भूमिका पर काफी असर पड़ा। क्यांग सू-वेइ, येन पर, लिओग और अन्य लोगों के क्रांतिकारी सिद्धांत राजतंत्र की दैवी शक्ति पर पहले ही कुठाराघात कर चुके थे। निस्संदेह चीनी समाज के वस्तुनिष्ठ अध्ययन से कई स्थितियाँ उभर कर सामने आएँगी और कुछ सकारात्मक विकासों का भी पता चलेगा। हालाँकि अधिकांश चीनी बुद्धिजीवियों की नजर में यह पतन, बिखराव, भ्रष्टाचार और क्रूरता का काल था।

28.4.1 दार्शनिक और उनके विचार

येन फू और कांग-यू-वी जैसे सुधार-दार्शनिक अब दृढ़ता से यह महसूस करने लगे कि किसी भी समाज पर बदलाव थोपा नहीं जा सकता है और चीन में हो रहे बदलाव के इस चरण में गणतांत्रिक क्रांति एक गलत कदम था। लिआंग चि-चाओ ने क्रांति और राजतंत्र की समाप्ति का स्थायित्व ऐतिहासिक निर्णय स्वीकारा। प्रारम्भ में वह गणतांत्रिक एकतंत्रवाद वाले, युवान-सि-कांग के मत का, पूर्णरूप से स्थिर बिन्दुओं के आधार पर पक्षधर रहा, क्योंकि इसके माध्यम से आधुनिक विचारधारा को गति मिलेगी। पुनः विकासवादी चिन्तन के आधार पर कांग का यह मानना था कि इस स्थिति में, समाप्त प्राय केन्द्रीय सत्ता, राजतंत्र के प्रतिरूप ही पुनर्स्थापित हो सकती है। इन तीनों विचारकों में एक मूलभूत समानता थी कि वे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की बात मुख्यरूप से कर रहे थे। यद्यपि कांग ने वस्तुतः अपनी कन्फ्यूशियन धर्म-विषयक विचारधारा की आवश्यकता पर व्याख्यान की दीर्घकाल तक वकालत की। येन और लियाग का

मानना था कि बिखराव की इस स्थिति को रोकने के लिए चीन को न्यूनतम आधारभूत विश्वास की जरूरत थी, जिसे सभी अपना सकें। इस परिस्थिति में येन फू ने ''कन्फ्यूशियसवाद के लिए समाज'' नामक निवेदन पत्र पर हस्ताक्षर किया, जिसके अनुसार कन्फ्यूशियाई दर्शन को राज्य-धर्म का दर्जा दिया जाना था। उसने तर्क दिया कि चीन अभी भी ''पितृसत्तात्मक'' समाज से ''सैनिक'' समाज तक पहुँचने की ड्यौढ़ी पर खड़ा है और अभी भी इसे पितृसत्तात्मक विश्वास की जरूरत है।

सक्रिय क्रांतिकारी अलग ढंग से सोच रहे थे। उन्होंने भी यह दिखा दिया कि उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता बहुत सुदृढ़ नहीं थी। जल्द ही वे सेनाध्यक्षों के युग की घृणित राजनीति में लिप्त हो गये। सन यात सेन ने सक्रिय रूप से राजनीतिक शक्ति के लिए एक आधार बनाने का प्रयास किया। जिन लोगों की राष्ट्रीयता का आधार प्राथमिकतः मांचू-विरोधी था, या ''राष्ट्रीय तत्व'' में जिन लोगों का विश्वास था, ने तुरंत महसूस किया कि भ्रष्ट मांचू साम्राज्य को निकाल बाहर करने के बाद हान प्रजाति अपने आप पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित नहीं हो गयी। जो लोग राष्ट्रीय सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए रखने के प्रति आग्रही थे, वे भी यह महसूस करने लगे कि इसे राजनीतिक तरीकों से नहीं सुरक्षित रखा जा सकता है। इसने साहित्य और परम्परागत विद्वता में संस्कृति की अवधारणा को समेटने की कोशिश की। इन्होंने चार मई के आंदोलन के दौरान साहित्यिक और भाषिक आन्दोलनों का जम कर विरोध किया।

28.4.2 छात्र समुदाय

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों से विदेशों में रहने और पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई। इनमें से कइयों ने जापान और पश्चिम में शिक्षा ग्रहण की थी। कई युवा बुद्धिजीवी जापान के मेजी पुनरुद्धार आन्दोलन से प्रभावित थे। उनमें से बहुतों का यह मानना था कि चीन को रोगमुक्त करने के लिए विज्ञान और तकनीक, अचूक दवा है। इसके अतिरिक्त चीनी परिदृश्य पर युवा, शिक्षित, राजनीतिक रूप से जागरूक, सामाजिक तौर पर सजग थे। जापान द्वारा लादी गई, 'इक्कीस मांगों ने इन लोगों के अहं और आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाई, इनके बीच राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ और इन्होंने अपने को इसी रूप में व्यक्त किया। युआन शिकाइ द्वारा राजतंत्र को पुनर्स्थापित करने के प्रयत्न ने भी उनको परेशान किया। ये संख्या में कम थे, पर इनकी विचारशीलता प्रबल थी। इन्होंने चार मई के आंदोलन का नेतृत्व किया। इनका स्तर साम्राज्य विरोधी था और विज्ञान, जनतंत्र तथा समाजवाद इनके प्रमुख स्तम्भ थे। चीनी छात्रों ने कई विदेशी छात्र-संघों से भी सम्पर्क स्थापित किया। राष्ट्रप्रेम ऐसा था, जो उन्हें एक दूसरे से जोड़ता था। स्वदेश लौटने के बाद अधिकांश छात्र साम्राज्य विरोधी आन्दोलन में सक्रिय हो गये। समाज में कामगार समुदाय ही काफी छोटा था, क्योंकि उद्योग आदि काफी कम थे, इनमें भी छात्र देशभक्तों की संख्या ही अधिक थी। युद्ध छिड़ने के बाद बुर्जुआ वर्ग ने भी साम्राज्यवाद के निषेधात्मक पक्ष को महसूस किया और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को समर्थन देने लगे। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन की शक्तियों ने पीकिंग विश्वविद्यालय में स्वरूप ग्रहण किया और विभिन्न साहित्यिक और बौद्धिक गतिविधियों से भी इसको गति मिली।

आइए पीकिंग विश्वविद्यालय (बेदा) के बारे में भी कुछ बातचीत कर ली जाए। इसकी स्थापना 1895 में हुई, आरंभ में इसकी भूमिका निषेधात्मक थी। इसके संकाय सदस्यों में वरिष्ठ पदाधिकारी शामिल थे और छात्र मुख्य रूप से अमीर घरानों से सम्बद्ध थे। नागरिक सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण होना इन छात्रों का एकमात्र उद्देश्य था। सही ज्ञान की प्राप्ति का महत्व दूसरे नंबर पर था। संकाय सदस्यों की वरीयता उनकी विद्वता या शिक्षण क्षमता पर नहीं बल्कि मांचू दरबार में उनकी हैसियतों पर आधारित होती थी। विश्वविद्यालय अपनी बेहतर शिक्षा के कारण नहीं बल्कि अपनी कुख्याति के कारण मशहूर था।

सी यूआन-पी को बेदा के सुधार का पूरा श्रेय जाता है। उन्होंने फ्रांस और जर्मनी में शिक्षा ग्रहण की थी और काफी कम उम्र में नागरिक सेवा परीक्षा पास कर ली थी। वे दो संस्कृतियों के अनुभव से सम्पन्न थे। उन्होंने नागरिक सेवा छोड़ दी और 1912 सन यात सेन की सरकार में क्रांतिकारियों के साथ जा खड़े हुए। लेकिन युआन शिकाई के अध्यक्ष बनने पर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। कुछ वर्ष बाद सरकार ने उनसे पीकिंग विश्वविद्यालय के कुलाधिपति का पद स्वीकार करने का निवेदन किया। उन्होंने इस

निवेदन को स्वीकार कर लिया। सी मूलतः एक शिक्षाविद् थे। इस संस्थान के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किए, जिसके कारण उन्हें चीनी पुनर्जागरण का जनक कहा जाता है। उन्होंने विद्वान लोगों को संकाय में शामिल किया, सरकारी दबाव से अकादमिक माहौल को मुक्त किया, अकादमिक स्वतंत्रता की वकालत की, विश्वविद्यालय में छात्रों और शिक्षकों को रहमी और स्वतंत्र बहस का मंच प्रदान किया। जिन लोगों को उन्होंने विभिन्न विद्यापीठों में शामिल किया उनमें ची तूमि न, हू शि और लि ता चाओ प्रमुख थे। बाद में इनमें से दो चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य बने। सी के सुधार के बाद पीकिंग विश्वविद्यालय में न केवल शिक्षा के स्तर पर सुधार हुआ बल्कि यहां परम्परागत शिक्षाविदों और आधुनिक विद्वानों को बहस करने का एक मुक्त मंच प्राप्त हुआ। इनके बीच से विचारकों का एक ऐसा दल सामने आया, जिसका छात्रों ने जमकर समर्थन किया। इस दल ने चीन की रूढ़िवादिता को चुनौती दी और आधुनिक युग का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहासकार बियांको के अनुसार :

> "चार मई का आन्दोलन एक युवा आन्दोलन था, जिसमें नवयुवक शिक्षक और उनके छात्र समर्थकों ने युवाशक्ति के बल पर युवाओं की विचारधाराओं को अपने समाज पर आरोपित किया।"

पीकिंग विश्वविद्यालय के अलावा नये सांस्कृतिक आन्दोलन भी उभरे और न्यू यूथ (New Youth) नामक पत्रिका के माध्यम से अपने विचारों का प्रचार-प्रसार किया।

28.4.3 न्यू यूथ (New Youth)

सिन चिंग-नियन (न्यू यूथ) का प्रकाशन बुद्धिजीवी और साहित्यिक क्रांति का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम था। "साहित्यिक क्रांति" इस बुद्धिजीवी बदलाव का एक उल्लेखनीय आयाम था, आरंभ में यह मात्र लेखकों और प्रकाशकों का प्रयास था। जनवरी, 1917 में हू शि ने प्रस्ताव रखा कि अब से सभी प्रकार का लेखन क्लासिकल चीनी भाषा में न किया जाकर बोलचाल की भाषा में किया जाएगा। वस्तुतः शिक्षा के क्षेत्र में यह एक क्रांति थी, जिसने शिक्षा का मार्ग सबके लिए सुलभ कर दिया। जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त भाषा ही जीवंत हो सकती है, हू शि के इस प्रस्ताव का कई विद्वानों ने समर्थन किया, इस प्रस्ताव के पीछे एक सामाजिक उद्देश्य निहित था। लोगों की पहुँच साहित्य तक सुलभ हुई, अब हू शि ने कहा कि साहित्य को आम लोगों की जिंदगी का बयान करना चाहिए। उसने यह महसूस किया कि यह साहित्यिक आन्दोलन नयी भाषा, नये शिल्प और नये विधान तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार भारी भरकम और क्लिष्ट साहित्यिक परम्परा का तिरस्कार किया गया और उसके स्थान पर लोकप्रिय साहित्य के सृजन की बात सामने रखी गयी, ऐसा साहित्य जो सरल हो, समझ में आने वाला हो और अर्थपूर्ण हो। हू शि की अवधारणा का कुछ विरोध हुआ; पर वातावरण उसके अनुकूल था, अतः उसके विचारों का खूब प्रचार हुआ। 1920 तक सभी लेखकों ने देशी भाषा को ग्रहण कर लिया।

न्यू यूथ (नव युवा) ने सबसे पहले हू शि के विचार प्रकाशित किए। इस पत्रिका की शुरुआत 1915 में शंघाई में हुई थी। इसके सम्पादक ची-तू-सिम ने औपचारिक तौर पर इस अवधारणा को समर्थन प्रदान किया था। ची ने सम्पादकीय मंडल में व्यवस्था विरोधी कई विद्वानों को शामिल कर लिया। चीनी शिक्षित समुदाय के मानस पटल को साफ करने में इस पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका अपनाई। यह पत्रिका उस समय प्रकाशित हुई, जब बारंबार प्रेस की स्वतंत्रता को कठोर कानूनों से बाधित किया जाता था। इसके अलावा इस पत्रिका को वित्तीय संकट भी झेलना पड़ता था। इससे बीच-बीच में पत्रिका का प्रकाशन स्थगित कर देना पड़ता था। इसके बावजूद, न्यू यूथ छात्रों के बीच प्रेरणा का स्रोत बना रहा, जो इसके प्रत्येक सम्पादकीय को श्रद्धा के साथ ग्रहण करते थे। सभी दृष्टियों से यह पत्रिका क्रांतिकारी थी। एक उदाहरण यह है कि ची के छह सिद्धांत नवयुवकों के लिए ब्रह्म वाक्य थे। उन्होंने कहा था "स्वतंत्र बनो, दब्बू नहीं, प्रगतिशील बनो, रूढ़िवादी नहीं, वाचाल बनो, मूक नहीं, विश्ववादी बनो, संकीर्ण नहीं, व्यावहारिक बनो, रूपवादी नहीं, वैज्ञानिक बनो, कल्पनाशील नहीं।"

अपने नाम के अनुरूप इस प्रभावशाली पत्रिका ने नये युवा के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। इसने सभी चीनी युवाओं को अपने पूर्वजों की सीमा का अतिक्रमण करने को कहा और वैज्ञानिक प्रगतिशील और स्वतंत्र चिंतन का मार्ग अपनाने को कहा। इसने नये स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे और नये विचारों से ओत-प्रोत युवा विद्यार्थियों को संबोधित किया। इनमें से कइयों ने जापान, यूरोप और अमेरिका में शिक्षा प्राप्त की थी। उन्हें पूर्वी और

पश्चिमी, नये और पुराने विचारों की समझ थी और वे विचारों के मुक्त आदान-प्रदान के कायल थे। वे जानते थे कि 1911 की क्रांति ने चीन को प्राचीन तंत्र से ऊपरी तौर पर ही मुक्त कराया था और अभी भी चीन साम्राज्यवादी शक्तियों के कब्जे में फँसा हुआ था। दुर्बल और लगातार क्षीण होती हुई रूढ़ परम्परा को वे एक सुलभ विकल्प देने की कोशिश कर रहे थे। वे ची के इस कथन से सहमत थे कि विज्ञान और प्रजातंत्र के सहारे ही चीन को बचाया जा सकता था। "राजनीति में गणतंत्रीय सरकार और विचार क्षेत्र में विज्ञान ही आधुनिक सभ्यता की सम्पदा है।" न्यू यूथ के माध्यम से ही ची ने कन्फ्यूशियसवाद पर आक्रमण किया और पत्रिका ने अपने आरंभिक दिनों में फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों (स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व) का प्रचार किया। (बाद में ची मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा के अनुयायी हो गये, 1921 में चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रथम महासचिव बने।)

न्यू यूथ का नवयुवकों पर इस हद तक प्रभाव था कि छात्र और युवा बुद्धिजीवी प्रत्येक मुद्दे पर इस पत्रिका की राय की प्रतीक्षा करते रहते थे और इसे उत्सुकतापूर्वक पढ़ते थे। दूसरे शब्दों में इस पत्रिका ने गोस्पेल की भूमिका निभाई। विभिन्न मुद्दों पर इस पत्रिका में बहस और विचार-विमर्श हुआ। इस पत्रिका में मुद्दों पर जीवंत बहस हुआ करती थी और धीरे-धीरे यह युवा, देशभक्त और सामाजिक तौर पर जागरूक युवा शक्ति की वाणी बन गयी।

28.4.4 परम्परा पर आक्रमण : बुद्धिजीवियों के प्रयास

नये सांस्कृतिक आन्दोलन को समग्र रूप में देखने से यह पता चलता है कि यह मूलतः सम्पूर्ण सांस्कृतिक विरासत पर एक आक्रमण था। ची द्वारा चीनी नवयुवकों को किया गया यह संबोधन "स्वतंत्र बनो दब्बू नहीं, प्रगतिशील बनो रूढ़िवादी नहीं, आक्रमक बनो निष्क्रिय नहीं" केवल कन्फ्यूशियाई सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर ही सीधा आघात नहीं था बल्कि सम्पूर्ण परम्परा पर आक्रमण था, जिसमें "कन्फ्यूशियसवाद, ताओवाद और बौद्ध धर्म के तीन उपदेश" भी शामिल थे। लोगों में व्याप्त अंधविश्वासों की तो बात ही छोड़िए।

हालांकि डार्विन के विकासवादी सामाजिक सिद्धांत की भाषा का उपयोग किया गया था, पर "पुराने समाज" और "पुरानी संस्कृति" को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा गया था, जिन्होंने देश की आत्मा को कुचल डाला था। क्रांति से यह बात साफ हो चुकी थी कि समाज में व्याप्त कुरीतियों को छोड़े बिना सम्पूर्ण परम्परागत राजनीतिक संरचना को हटाया नहीं जा सकता था। पुरानी परम्परा में न केवल संघर्ष करने की क्षमता थी, बल्कि यह अपने को पुनःस्थापित भी कर सकती थी। युआन शिकाइ द्वारा राजतंत्र की स्थापना का प्रयास इसका एक प्रमुख उदाहरण था। अतः अब एक ही उद्देश्य सामने था, देश की चेतना और सोच में आमूल परिवर्तन। "नये सांस्कृतिक" नेताओं का यह मानना था कि किसी भी प्रकार की राजनीतिक कार्यवाही या संस्थागत सुधार के पहले इस काम को पूरा करना जरूरी है। 1917 में अमेरिका से लौटने के बाद युवा हू शि ने स्पष्ट रूप से कहा कि बीस वर्षों तक हमें राजनीति की बातें नहीं करनी है। वस्तुतः ये विचार सम्पूर्ण नये सांस्कृतिक दल की आम विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे। उनकी मुख्य संस्था के नाम से ही पता चलता है कि उनके लक्ष्यीभूत श्रोता शिक्षा प्राप्त नवयुवक थे, जो पुराने और सड़े हुए समाज से पूरी तरह प्रभावित नहीं थे।

यहाँ भी हम न्यू यूथ के दृष्टिकोण और मुख्य चिंतकों के सोचने में थोड़ा फर्क पाते हैं। अपनी दुविधाओं पर विजय पाकर इन चिंतकों ने भी बदलते समाज में सचेतन विचारों की भूमिका पर बल दिया। हालांकि उनके इस शैक्षिक दृष्टिकोण को भी समर्थन मिला कि मांचू सुधार आंदोलन के दौरान परिवर्तन की शुरुआत हो चुकी थी या समाज के संस्थागत ढाँचों में इसकी शुरुआत होने वाली थी। नये सांस्कृतिक दल के विश्लेषण ने 1919 के पहले ही उन्हें यह मानने के लिए मजबूर कर दिया था कि सम्पूर्ण माहौल को बदले बिना समाज को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था।

1919 के पहले नये सांस्कृतिक आन्दोलन का एक आयाम यह उभर कर सामने आया कि इसने राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों के बीच एक स्पष्ट रेखा खींच दी। भविष्य में भी यह अंतर जारी रहा। यह अलगाव 1905 में परीक्षा व्यवस्था की समाप्ति में स्पष्ट हो चुका था। पुराने जमाने में भी, विद्वान पदाधिकारी के मिले-जुले होने पर भी शिक्षित व्यक्ति पहले बुद्धिजीवी था और अन्य प्राथमिकतः राजनीतिज्ञ थे। 1919 के बाद भी कई

बुद्धिजीवियों ने राजनीतिक जीवन में हिस्सा लिया। इसके बावजूद बुद्धिजीवियों खासकर शिक्षक और साहित्यकार, ने अपनी एक अवधारणा बना ली थी कि उन्हें स्वायत्तता का अधिकार हासिल था। यह मानसिकता 1949 के बाद भी कायम रही।

"नये साहित्य" का उदय नये सांस्कृतिक आन्दोलन का एक प्रमुख और उल्लेखनीय आयाम था। यहाँ भी हम देखते हैं कि साहित्य प्रमुख रूप से मनुष्य के स्वायत्त सोच का परिणाम था। हालांकि कविता और ललित साहित्य, साहित्य की प्राचीन और उच्च संस्कृति का अंग थे। पर आदर्श रूप में वे कभी भी अपने अंदर की खोज से अलग नहीं हुए। ऐसे बहुत से उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें "साहित्यिक" रूझान तो है, पर उन्होंने कभी भी अपने को साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं प्रदान की हो। इसके अलावा कथा-कहानी-उपन्यास लिखना उच्च सांस्कृतिक गतिविधि का अंग नहीं माना जाता था। लियांग ची-चाओ ने कथा-कहानी को समर्थ साहित्यिक विधा के रूप में विकसित करने की वकालत की ताकि उसके माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक विचारों को फैलाया जा सके। लूशुन और उनके छोटे भाई 1911 से पहले ही जापान में रहकर चीनी जनता की आवाज को साहित्यिक अभिव्यक्ति दे रहे थे। पर नये सांस्कृतिक आन्दोलन के प्रयासों से ही नये देशी साहित्य को सम्मान प्राप्त हो सका। नयी संस्कृति ने कथा-कहानी विधा को एक सम्मानजनक दर्जा प्रदान किया और उसकी अपेक्षा थी कि यह विधा जीवन से जुड़े और आम आदमी के जीवन का मार्गदर्शन करे। चीन में पनप रहे इस नये साहित्य का एक सामाजिक नैतिक उद्देश्य भी था। इस नैतिक उद्देश्य से सभी लेखकों को नहीं बाँधा जा सकता था और कुछ लेखक ऐसे भी थे जो शुद्ध साहित्यिक स्तर पर इस नैतिकता से नहीं बंधे थे, पर अंततः वे भी समाज के ही प्रवक्ता थे।

यहाँ तक कि कुओ मो-जो, यू-ता-फ और अन्य लोगों का रोमानी सृजनात्मक समूह, जो "कला के लिए कला" में विश्वास रखता था, भी "अकलात्मक" प्रयासों से प्रभावित हुए। 1919 के पहले ही परम्परागत जीवन के बंधनों से मुक्त होने की आकांक्षा ने रोमानी धारा को जन्म दिया जिसमें व्यक्ति के महत्व और अस्मिता की बातें होने लगी थीं। 1911 के बाद के वर्षों में राजनीतिक मुक्ति की बात नाटकीय ढंग से क्षीण होने लगी, युवा बुद्धिजीवी व्यक्तिगत मुक्ति की बात करने लगे, वे उस जगत से अपने को अलग करने लगे, परम्परागत मूल्यों में उनका विश्वास नहीं रहा। नयी संस्कृति के उदय में इन तत्वों ने काफी मदद की। एक प्रकार से उदारवादी और रोमानी दोनों सन्दर्भों में "व्यक्तिवाद" का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन पर पड़ा। पुराने लोगों के गले से यह बात नहीं उतरती थी, जो अभी भी परम्परागत कन्फ्यूशियाई पारिवारिक मूल्यों के दायरे में जी रहे थे। कुछ समय के लिए ही सही, व्यक्तिवाद सामाजिक-राजनीतिक उद्देश्य से पूरी तरह जुड़ा प्रतीत नहीं होता था। हू शि द्वारा प्रायोजित न्यू यूथ के इब्सेन अंक में इब्सेन के नाटक "गुड़िया घर" (यह एक नर्वेजियन नाटक है, जिसमें परिवार और समाज में नारी मुक्ति का समर्थन किया गया है।) का अनुवाद इस चिंता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। इसी प्रकार "सृजनात्मक समाज" रोमानी संसार में आनंद विभोर था, इसके लेखक अपनी अतृप्त भावनाओं को अभिव्यक्त कर रहे थे और "कला के लिए कला" ही उनका मुख्य सरोकार था। लिओ ली के शब्दों में "फ्रांसीसी प्रतीकात्मक अवधारणा से काफी दूर जिसमें कहा गया है कि कला केवल जीवन का पुनर्निर्माण नहीं करती बल्कि कला एक नया संसार बनाती है जिसमें कलाकार जाकर शरण ले सकता है और अपना अलग तर्क निर्मित कर सकता है तथा अपने को जीवन से जोड़ भी सकता है।"

नये संस्कृति आंदोलन में परम्परा और विरासत की "उच्चतर आलोचना" की शुरुआत हुई। शि आदि विद्वानों ने परम्परागत विरासत को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा। विभिन्न परम्पराओं और धर्मग्रंथों की प्रासंगिकता और प्रामाणिकता पर चीनी विद्वान काफी अर्से से वाद-विवाद करते आ रहे थे और विभिन्न मत प्रकट करने की परम्परा थी। चिंग साम्राज्य के इम्पिरिकल रिसर्च स्कूल के भाषाशास्त्रियों ने श्रेष्ठ ग्रंथों की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की थी। लेकिन इस बात में सन्देह है कि बीसवीं शताब्दी के उनके अनुयायियों ने शुद्ध आलोचना पद्धति अपनायी।

कांग-यू-वी, जो किसी भी दृष्टिकोण से आलोचक नहीं था, ने कन्फ्यूशियसवाद की अपनी नयी व्याख्या की स्थापना के लिए शताब्दी के आरम्भ में कुछ पुराने धर्मग्रंथों की रूढ़िवादिता पर योजनाबद्ध तरीके से आक्रमण किया।

हू शि के अनुसार "राष्ट्रीय विरासत को पुनर्व्यवस्थित" करने के आंदोलन के पीछे एक गहरा वैचारिक उद्देश्य निहित था। लारेंस श्नैदर के शब्दों में, "रूढ़िवादी इतिहासों की

प्रामाणिकता को खंडित करने और धर्म ग्रंथों के ऐतिहासिक आधारों को खंडित करने के लिए विज्ञान के औजारों का उपयोग करना होगा।" परम्परा की जकड़ी हुई रूढ़ियों को दूर करने का एक अच्छा तरीका यह होता है कि उन तथ्यों और मिथकों की प्रामाणिकता को नेस्तनाबूद कर दिया जाए, जो उस परम्परा को आधार प्रदान करते हैं। अंत में यह कह देना आवश्यक है कि "राष्ट्रीय अध्ययन" के कई विद्वानों ने भी परम्परा का अध्ययन करने के लिए और ऐतिहासिक अध्ययन की आलोचनात्मक व्याख्या करने के लिए कट्टरपंथियों और परम्परागत तरीकों का इस्तेमाल किया यहाँ तक कि "नव-परम्परावादी" विद्वानों के पास भी हू शि की मूर्तिभंजक दृष्टि नहीं थी।

"नयी संस्कृति" के मूर्तिभंजक विद्वानों के उद्देश्य पूर्णतः विध्वंसक नहीं थे। हालांकि भविष्य के निर्माण के लिए वे समकालीन पश्चिमी देशों को "मॉडल" के रूप में देख रहे थे, पर एक चीनी राष्ट्रवादी होने के नाते से अपने को अपने अतीत से काट कर नहीं देख सकते थे। चीनी परम्परा में वे उन प्रगतिशील तत्वों को खोज रहे थे, जिसके आधार पर आधुनिकता की नींव रखी जा सके। हू शि के अमेरिकी शिक्षक जॉन देवे ने वैज्ञानिक पद्धति की बात करते हुए कहा था कि आधुनिक युग का जन्म अतीत के गर्भ में होता है। हू शि और अन्य लोगों ने परम्परा में उन तत्वों की खोज की जिससे आधुनिकता का सूत्रपात किया जा सकता था। हू शि ने अपनी "वैज्ञानिक" पद्धति के तहत चीन के आरम्भिक विचारकों में तर्कपद्धति की खोज की, अतीत के समृद्ध और प्रगतिशील देशी साहित्य को महत्व दिया, जो मरणासन्न रूपवादी संभ्रांत साहित्य से कहीं अधिक लोकोपयोगी और श्रेष्ठ था। इसे लोकप्रियतावादी पद्धति के तहत संभ्रांत "उच्च संस्कृति" को अवमानना मिली और उसे शोषक बताया गया और लोक साहित्य को प्रगतिशील और आधुनिक गुणों से सम्पन्न माना गया। लोक साहित्य का अध्ययन किया जाने लगा। हू शि नये साहित्य और नये विद्वानों को साथ लेकर चलना चाहता था, अतः अतीत के देशी साहित्य की छानबीन करते समय उसने दोनों के हितों का ध्यान रखा। सभी प्रकार के साहित्यिक प्रयास (गंभीर या मनोरंजक साहित्य दोनों) नये सांस्कृतिक आंदोलन में घुलमिल गये।

इस आंदोलन के अग्रणी नेताओं में कुछ आम सहमति थी, पर जब हम एक दूसरे की तुलना करने बैठते हैं, तो हू शिह ची तू शुम और लू-शून के विचारों में काफी अंतर पाते हैं। 1911 के पूर्व एक युवा छात्र के रूप में हू शि येन फू और लिअंग चि-चाओ के डार्विनवादी सामाजिक सिद्धांतों में रुचि रखता था और उससे प्रभावित था। उस पर संयुक्त राष्ट्र और जॉन देवे के दर्शन का काफी प्रभाव था। उसने ची के प्रसिद्ध सिद्धांत "विज्ञान और प्रजातंत्र" की अपने ढंग से व्याख्या की थी। इसे वह आधुनिकीकरण का अपरिवर्तनीय मूल मंत्र मानता था। येन फू की विज्ञान की अवधारण को एक रूप देने का एक प्रयास था। हू शि ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में अमेरिका में प्रजातंत्र को फलते-फूलते देखा था। उसने भी देवे के प्रजातंत्र संबंधी विचारों को स्वीकार किया था।

जॉन देवे के दर्शन में विज्ञान और प्रजातंत्र एक-दूसरे में अनुस्यूत थे। उसने सभी प्रकार की समस्याओं के लिए विज्ञान के कार्य-कारण संबंध का अनुमोदन किया, जिसके चलते पूर्व स्थापित सभी प्रकार की ईश्वरीय मान्यताएँ और धारणाएँ ध्वस्त हो गयीं, चाहे वह धर्म का क्षेत्र हो, या राजनीति या आध्यात्मिक। इस प्रकार इनके स्वतंत्रता के दावे के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत कर दिया। यदि सब लोग मिल जुलकर विज्ञान का सहारा लें और मानवीय तथा सांस्कृतिक समस्याओं के हल के लिए इसकी सहायता लें, तो अंधविश्वासों और ईश्वरी मान्यताओं से मुक्ति मिल सकती है। विज्ञान ने प्रकृति को काफी सुलझे हुए ढंग से देखा परखा है। उससे मनुष्य की समस्याओं का समाधान भी ढूँढा जा सकता है और स्वतंत्रता और समानता जैसें तत्वों को यथार्थ रूप दिया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से लोगों में वैज्ञानिक पद्धति विकसित करनी होगी ताकि लोगों में विश्लेषण क्षमता पैदा हो और अपनी समस्याओं पर लोग सामूहिक तौर पर सोच विचार कर सकें, अपने हितों को पहचान सकें। हालांकि देवे के "राजनीतिक प्रजातंत्र" और संविधानवाद की तीखी आलोचना हुई, पर इस बात में कोई संदेह नहीं है कि उसका सम्पूर्ण दृष्टिकोण यह था कि संवैधानिक प्रजातंत्र को लोग एक नियम के तहत निश्चित रूप से मान्यता प्रदान करेंगे। शि ने देवे के सिद्धांत के मुताबिक विज्ञान को एक पद्धति के रूप में अपनाया, पर एक दार्शनिक के रूप में किए गये उसके सूक्ष्म ज्ञानात्मक मुद्दों को उसने पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया। उसने देवे के सिद्धांत में से व्यावहारिक बातें ग्रहण कीं और उसे सरल रूप में प्रस्तुत किया। इस मामले में उसने काफी हद तक येन फू और लिआंग की परम्परा का पालन किया, हालांकि उसका प्राकृतिकवाद में विचार ताओवादी-बौद्ध मत से काफी अलग था। देवे ने सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं और "मात्र राजनीतिक" की अवधारणा पर

विचार करते समय वैज्ञानिक शोध और शिक्षा पर बल दिया। इससे प्रभावित होकर हू शि ने चीन के अव्यवस्थित और गैर-जिम्मेदाराना राजनीतिक संघर्षों को चीन के सही विकास के लिए अप्रासंगिक मान लिया।

देवे का वैज्ञानिक खोज और शिक्षा पर जोर सम्पूर्ण सांस्कृतिक आंदोलन के अनुकूल था, जिसमें सम्पूर्ण समाज के चेतन को बदलने की बात की जा रही थी। अतः 1917 में जब हू शि चीन लौटा, तो वह स्वाभाविक रूप से इस आन्दोलन से जुड़ गया। इस आन्दोलन के बृहद शैक्षिक उद्देश्यों को सामने रखकर ही उसने भाषा सुधार में गहरी दिलचस्पी दिखाई। नये साहित्य में उसकी दिलचस्पी ने उसके साहित्य प्रेम को उजागर किया। साथ ही साथ इस विश्वास को बड़ी शिद्दत के साथ व्यक्त किया कि साहित्य नये विचारों के प्रचार-प्रसार का समर्थ वाहक होता है। शि के सम्पूर्ण जीवन को देखने से पता चलता है कि उसे साहित्य और ज्ञान में बड़ी रुचि थी और उसका मानना था कि "राष्ट्रीय विरासत का पुर्नसंगठन" एक नाजुक सांस्कृतिक कार्य है। इसका यह मतलब नहीं है कि उसने अपने लेखन में सामाजिक और राजनीतिक सवालों को उठाया ही नहीं। पर वह अपने लेखन के माध्यम से राजनीतिक कार्यकलापों को प्रभावित न कर सका। अतः उसने सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र में "वैज्ञानिक खोज" का ज्यादातर प्रयोग किया। वस्तुतः ची-तू-शिम ने ही "विज्ञान और प्रजातंत्र" का नुस्खा सामने रखा था। लेकिन सूक्ष्मता से अवलोकन करने पर पता चलता है कि इन दोनों मामलों में हू शि से उसके विचार भिन्न थे। उसके तेवर हू से अलग थे। वह आवेश पूर्ण और अविवेकी स्वभाव का था। उस पर भी पश्चिमी प्रभाव था, पर यह प्रभाव आंग्ल-अमेरिकी न होकर फ्रांसीसी था। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य था। विज्ञान के प्रति उसकी दृष्टि डार्विन के सिद्धांत के अनुरूप थी। विज्ञान एक ऐसा हथियार था जिससे परम्परागत मूल्यों को ध्वस्त किया जा सकता था। चीन में उसके इस विकासवादी सिद्धांत को पूर्णतः नजरअंदाज कर दिया गया। इससे उसे काफी दुःख हुआ। हालांकि हू शि की तरह वह भी मूलतः "वैज्ञानिक" नियत्ववाद को बुद्धिजीवी संभ्रांतों की शक्ति में गहरे विश्वास के साथ जोड़ने में कामयाब हो गया था। ची की विचारधारा में विज्ञान व्यवहारमूलक पद्धति का स्थान ग्रहण नहीं कर सका। बाद में उसने बिना किसी भाव परिवर्तन के विज्ञान का प्रयोग डार्विनवाद के लिए न करके मार्क्सवाद के लिए करना शुरू कर दिया।

अपनी वैज्ञानिक पद्धति की अवधारणा के कारण हू शि राष्ट्र के सम्पूर्ण क्रांतिकारी बदलाव की बात नहीं पचा पाया। ची फ्रांसीसी क्रांति को आधुनिक प्रजातंत्र का शीर्षस्तंभ मानता था। उसने क्रांतिकारी बदलाव की अपील को अपेक्षाकृत अधिक सहजता से ग्रहण किया, हालांकि 1919 के पूर्व उसका पूरा दृष्टिकोण राजनीति विरोधी था और वह भी "सांस्कृतिक" दृष्टिकोण का समर्थक था। हालांकि दोनों ने दो वर्ष (1917-19) एक साथ मिलकर काम किया और इस बीच व्यक्तिवाद और प्रजातंत्र के तत्व संबंधी उनकी विचारधारा में काफी समानता रही।

लू शुन चीन के सर्वप्रमुख साहित्यिक प्रतिभा के रूप में उभर कर सामने आया। उसकी विचारधारा अपने आप में विशिष्ट थी। अपने सम्पूर्ण जीवन काल में वह तामसी शक्तियों से लड़ता रहा। अपने युगकाल में वह विकासवादी सिद्धांत से प्रभावित था, पर जल्दी ही (1917 के पहले ही) उसके मन में इसके प्रति शंकाएँ उठने लगी थीं। अपने व्यक्तिगत अनुभवों, भ्रष्टाचार के प्रति उसकी घृणा, चीनी जनसमुदाय की "दास मानसिकता" आदि के कारण 1911 के पहले ही विकासवादी सिद्धांत से उसका विश्वास उठने लगा था। नित्शे के लेखन को उसने पढ़ा था, और उसका उस पर प्रभाव भी पड़ा, पर वह नित्शेवादी नहीं हो गया। हाँ, उसे वहाँ से कुछ प्रतीक मिले, जो मानव की "दासता प्रवृत्ति" से लड़ने में सक्षम थे। कुछ समय के लिए वह नित्शेवादी-बाइरोनिक काव्य नायक के सपने में खोया था, जो मनुष्य को अंधविश्वासों से मुक्त कराता था। येन फू के प्रभाव के बावजूद लू शुन ने पश्चिमी तकनीकी विचारधारा से अपने को अलग रखा। उसने पश्चिमी साहित्य के उस यथार्थवाद से भी अपने को दूर रखा, जहाँ मनुष्य के नैतिक जीवन पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता था।

1911 के बाद की घटनाओं ने लू शुन को निराश किया। नित्शेवादी साहित्यिक नायक समाज को बदल सकता है, उसकी यह धारणा तेजी से बिखर गयी। चीन के बुरे अतीत और वर्तमान के प्रति उसका पूरा दृष्टिकोण "नयी संस्कृति" के अन्य विद्वानों की अपेक्षा निराशाजनक था। समकालीन चीन की क्रूरता, भ्रष्टाचार और दिखावटीपन परम्परागत मूल्यों के ह्रास को प्रतिबिंबित नहीं करता था, बल्कि वस्तुतः उन विध्वंसक मूल्यों का प्रदर्शन था। उन्होंने अपनी कहानी "पागल की डायरी" में लिखा है कि चीन समाज

"आदमखोर" हो गया है, यह इसका मात्र यथार्थ नहीं है, बाकि इसके आदर्श भी **आदमखोर हैं।** यहाँ तक कि 1911 के पहले के युवा क्रांतिकारी भी इस दुःस्वप्न से पीड़ित थे। लू शून ने नये सांस्कृतिक आन्दोलन के उद्देश्य को देखते हुए एक बार फिर कलम उठाई, पर इसका प्रभाव बहुत सीमित सिद्ध हुआ।

लू शून के "सम्पूर्ण अस्वीकार" के बावजूद उनकी साहित्यिक कल्पनाशीघ्र बेजोड़ थी। लू शून बराबर चीन के अतीत के गैर परम्परावादी रूझानों से अभिभूत रहे।

उनका अतीत हू शि के अतीत से बिल्कुल भिन्न था। यह दक्षिणी प्रदेश का नव-ताओवादी बोहेमियन अतीत था, जिसमें लोकतत्व और कुछ खास व्यक्तिगत मूल्यों को तरजीह दी गयी थी। पर इनमें से कोई भी लू शून को परम्परा के सम्पूर्ण अस्वीकार से विचलित न कर सका।

बोध प्रश्न 2

1) नयी संस्कृति के विकास में छात्रों की भूमिका का उल्लेख 10 पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) बेदा (पेकिंग विश्वविद्यालय) में किए गये सुधारों का 5 पंक्तियों में उल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....

3) "विज्ञान और प्रजातंत्र" नुस्खे पर 10 पंक्तियों में विचार-विमर्श कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

4) निम्नलिखित में से कौन सा कथन सही या गलत है? (✓) और (✗) का निशान लगाइए।

i) न्यू यूथ पत्रिका ने नये सांस्कृतिक आंदोलन का प्रचार-प्रसार किया।

ii) नये सांस्कृतिक आंदोलन के दौरान देशी साहित्य की खोज की गयी।

iii) जान देवे हू-शि का शिक्षक था।

iv) लू शून एक साहित्यकार था।

28.5 चार मई की घटना के परिणाम

यह नया सांस्कृतिक आंदोलन चार मई के आंदोलन के रूप में प्रस्फुटित हुआ या यूं कहें कि यह आन्दोलन उसमें समाहित हो गया। इस दौरान बहुत से सिद्धांत असंख्य पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आये। चार मई के आंदोलन ने जनता के छिपे हुए आक्रोश को व्यक्त कर दिया। इसमें नयी संस्कृति की अवधारणाएँ खासकर सांस्कृतिक विरासत के पूर्ण अस्वीकार की बात सामने आयी।

इन घटनाओं का मुख्य परिणाम यह हुआ कि चीन की समस्या का शुद्ध रूप में सांस्कृतिक विश्लेषण किया गया। चार मई की घटना एक राजनीतिक घटना थी, यह विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ एक जबरदस्त राजनीतिक कार्यवाई थी। कुछ समय के लिए यह एक प्रकार का जनान्दोलन भी था, हालांकि इसमें छात्र और शहरी लोग ही शामिल थे। अभी तक नये सांस्कृतिक नेता चीन की घरेलू समस्याओं से ही जूझ रहे थे। अपने डार्विनवादी सामाजिक अवधारणा के कारण वे यह न समझ सके कि चीन की इस स्थिति का एक प्राथमिक कारण साम्राज्यवादी शक्तियों का हस्तक्षेप भी है। हालांकि राष्ट्रवादी दबावों और छात्रों के जोर से कुछ बुद्धिजीवियों को चीन के राजनीतिक अंधेरेपन से मुक्त कराने के लिए अल्प समय के लिए अपना सांस्कृतिक प्रयास छोड़ देना पड़ा।

यहाँ तक कि हू शि जैसे गैर राजनीतिक व्यक्ति को भी अपना तरीका बदलना पड़ा। इससे उसके सोच में तत्कालीन बदलाव आया। उसे यह लगने लगा कि बुद्धिजीवियों का सांस्कृतिक परिवर्तन पूर्ण हो चुका है और अब सामाजिक परिवर्तनों के माध्यम से इसका संक्रमण राजनीति में होने वाला है। 1919 में जॉन देवे खुद चीन में उपस्थित था। उसने इस आशा को प्रोत्साहित किया। उसने अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि छात्र जनसमुदाय के बीच शिक्षा का प्रसार कर रहे हैं, सामाजिक और धार्मिक कार्य कर रहे हैं तथा आपस में बौद्धिक विचार-विमर्श कर रहे हैं। हू शि ने "जन शिक्षा, नारी मुक्ति, विद्यालय सुधार" की बात की। यह मान लिया गया कि ये सभी उद्देश्य पूरे हो जाएंगें। ऐसा मानते वक्त 1919 में सैन्य शासन की राजनीतिक शक्ति को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया। हालांकि 1922 में हू शि ने एक पत्रिका निकाली, हिंदी में जिसका नाम होगा "कोशिश"। यह खुले रूप में एक राजनीतिक पत्रिका थी। इसी समय हू शि को इस बात का दुखद अनुभव हुआ कि राजनीतिक शक्तियों के पास इतनी ताकत होती है कि वह व्यक्ति के बोलने की स्वतन्त्रता और कार्य करने की स्वतंत्रता को कुचल सकता है। वह राजनीतिक कार्यवाई की पृष्ठभूमि में निहित "मुद्दों" से भी परिचित हो गया था। उसकी राजनीतिक कार्यवाई उदारवादी थी। उसने सरकार के निरंकुश कार्यकलापों के खिलाफ "नागरिक अधिकारों" का आह्वान किया।

हू शि ने अपने राजनीतिक प्रस्तावों के तहत "अच्छे आदमियों" की सरकार और "योजनाबद्ध तरीके से काम करने वाली सरकार" की माँग की। उसकी सबसे बड़ी समस्या यह थी कि चीन की तत्कालीन परिस्थिति में विज्ञान और प्रजातंत्र में कैसे तालमेल स्थापित किया जाए। उसका विश्वास था कि कुछ वैज्ञानिक मानसिकता वाले लोग (जो "अच्छे" और कम संख्या में थे) आएंगे और सत्ता हासिल करेंगे। साम्यवादियों और राष्ट्रवादियों की तरह हू भी अपने को बुद्धिजीवी संभ्रांत मानने को मजबूर था। सेनाध्यक्षों की सरकार (हू पेइ फू) के साथ उन्होंने काम करने के सपने देखे थे। यह अल्पजीवी साबित हुई। इसके तुरंत बाद हू शि अपने सांस्कृतिक क्षेत्र में आ गया।

सन यात सेन और उनके साथियों ने राष्ट्रवादी राजनीतिक रुख का सबसे ज्यादा फायदा उठाया। यह माहौल चार मई के आंदोलन के दौरान बना था। इस माहौल के कारण सारे वैचारिक मतभेद सिमट गये। 1911 से लेकर 1919 तक का काल ऊर्जाहीन था। इस दौरान सन यात सेन ने मजबूत केंद्रीय सरकार की स्थापना के अपने उद्देश्य को अंजाम देने की कोशिश की। अपनी इस कार्य पद्धति में उसने कभी भी चीन की संस्कृति में "नयी संस्कृति" के योगदान को स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि 1911 के पहले भी उसका यह सोचना था कि अतीत की उपलब्धियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है और उसके

सामने यह बिल्कुल स्पष्ट था कि किस चीज को तरजीह देनी है, किस चीज को नहीं। 1911 के बाद के वर्षों में एक प्रकार की कड़वाहट फैली, इस दौरान उसने चीन में एक अनुशासित और एकीकृत दल संगठित करने की समस्या पर काम किया। यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी संवैधानिक प्रजातंत्र पर उसका विश्वास कम होने लगा। अतः सन यात सेन और उसके अनुयायी अगर अक्तूबर क्रांति में लेनिन के पार्टी संगठन और सैन्य शक्ति से निबटने के सोवियत तरीके की ओर तुरंत आकर्षित हुए और रुचि दिखाई, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसके कुछ अनुयायियों ने पश्चिमी प्रवृत्ति को समझने के लिए साम्राज्यवाद संबंधी लेनिनवादी सिद्धांत को तेजी से अपनाया।

चार मई के आंदोलन के काल में रूसी क्रांति और इसके सिद्धांतों ने चीन में अपना काफी प्रभाव स्थापित किया और इससे इस आंदोलन के सैद्धांतिक और दार्शनिक सोच में एक और आयाम जुड़ा। चीन में लेनिनवादी सिद्धांत क्रमशः लोकप्रिय होता गया। साम्यवादियों के रूप में बुद्धिजीवियों का एक ऐसा दल सामने आया जो एक नयी और वैज्ञानिक संस्कृति का प्रसार करना चाहते थे। उनका अंतिम उद्देश्य जन संगठन था। जन संगठन राजनीतिक और सैनिक शक्ति प्राप्त करने का भी एक साधन था। यह स्वतः स्पष्ट है कि 1919 के पहले "नयी संस्कृति" में कहीं भी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जन संगठन की बात नहीं की गयी थी, हालांकि जन शिक्षा की बात यह "संस्कृति" करती थी।

बोध प्रश्न 3

1) राजनीतिक शक्ति के प्रति हू शि के दृष्टिकोण पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) चीनी बुद्धिजीवियों द्वारा स्वीकार्य लेनिनवादी विचारों का उल्लेख 5 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

28.6 सारांश

1911 में चिंग साम्राज्य के पतन और 1919 के चार मई के आंदोलन के बीच एक तरफ राजनीतिक कड़वाहट, आर्थिक अस्थिरता और सामाजिक तनाव फैला हुआ था तो दूसरी तरफ इस अस्थिरता और अव्यवस्था के बीच "नयी संस्कृति" का जन्म हो रहा था। इस निषेधात्मक घटना के दौरान ही लोगों को चीन के बेहतर भविष्य के लिए "नयी संस्कृति" के निर्माण की जरूरत महसूस हुई। इन सुधार आंदोलनों, बहसों, वाद-विवादों और परस्पर विरोधी सरकारों के माध्यम से चीन के "चीनत्व" की मूल्यवत्ता और प्रासंगिकता पर लगातार विचार होता रहा। इस काल में इन बहसों के जरिए कुछ विचारों को मूर्त रूप में ढाला जा सका। राष्ट्रीयता की यह नयी अनुप्राणक अवधारणा और साम्यवाद जैसी विचार

पद्धति इसी प्रक्रिया में उभर कर सामने आये। "विज्ञान और प्रजातंत्र" इस कार्य की सोच पद्धति के आधार बन गये। इस नयी संस्कृति के प्रचार-प्रसार में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अतीत का बहिष्कार एक बारगी या बिना कुछ सोचे समझे नहीं कर दिया गया, बल्कि इसके पीछे बुद्धिजीवियों का विद्वतापूर्ण सार्थक प्रयत्न था। यह सही है कि जन शिक्षा "नयी संस्कृति" का प्रमुख अंग था, पर इसका पूरा जोर बुद्धिजीवी संभ्रांत लोगों पर था। चीनी सांस्कृतिक क्रांति के दौरान नारी मुक्ति, युवा शक्ति, राजनीतिक मुक्ति और सामाजिक उत्थान की बात की गयी। यह बहुतत्ववादी सांस्कृतिक अकादमिक आंदोलन था, जिसने चीन में जड़ जमाए कन्फ्यूशियाई सिद्धांत को जमकर झकझोर दिया।

आधे दशक पहले ताइपिंगों ने कन्फ्यूशियसवाद को चुनौती दी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दिनों में सौ दिनों के सुधारकों ने वास्तविक कन्फ्यूशियसवाद की स्थापना की आड़ में कन्फ्यूशियसवाद के तत्वों पर आघात किया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद मुख्य रूप से जापान और फ्रांस से लौटे विद्यार्थियों ने कन्फ्यूशियसवाद का खंडन करना शुरू किया। धीरे-धीरे यह विचार अपेक्षाकृत विशाल शिक्षित समुदाय में फैला। सब लोगों ने यह स्वीकार कर लिया कि आधुनिकता का स्वागत करने के लिए कन्फ्यूशियसवाद को हटाना जरूरी था। चीन के युवा बुद्धिजीवियों का एक लोकप्रिय नारा था "हम श्रीमान विज्ञान और श्रीमान प्रजातंत्र को चाहते हैं, और श्रीमान कन्फ्यूशियस और उनके दल का बहिष्कार करते हैं।" पहली बार हजार वर्षों से जड़ जमाए इस पुराने सिद्धांत को चुनौती दी गयी और उसे पेकिंग की गलियों में बिखेर दिया गया।

28.7 शब्दावली

मूर्तिभंजक : स्थापित मान्यताओं पर आघात।

भाषा विज्ञान : भाषा के विकास का अध्ययन।

व्यवहारवाद : किसी भी विषय पर व्यावहारिक दृष्टि से सोचना।

रोमानीपन : साहित्य की रोमानी प्रकृति।

28.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) 1) ✓ 2) × 3) × 4) ✓
2) उन्हें आदमी के मातहत के रूप में देखा जाता था। माँ और पत्नी के रूप में ही समाज ने उन्हें मान्यता दी थी। देखिए भाग 28.3

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में विदेशों में पढ़े छात्रों के दृष्टिकोण का उल्लेख होना चाहिए, चीन को आधुनिकीकृत करने वाले विचारों का भी उल्लेख कीजिए, यह भी बताइए कि उन्होंने अपने विचारों को कैसे व्यवहारिक अंजाम दिया। देखिए उपभाग 28.4.2
2) उपभाग 28.4.2 में बताए गये सीयूआन पी के सुधारों का उल्लेख कीजिए।
3) इस नारे में चीन के बुद्धिजीवियों के बीच आधुनिकीकरण के विचार प्रसारित करने की प्रवृत्ति छिपी हुई है। उपभाग 28.4.4 पढ़िए और यह बताने की कोशिश कीजिए कि किसने यह नारा उछाला और परंपरागत कन्फ्यूशियाई व्यवस्था को झकझोरने में इसकी भूमिका का उल्लेख कीजिए।
4) i) ✓ ii) ✗ iii) ✓ iv) ✓

बोध प्रश्न 3

1) भाग 28.5 के आधार पर अपना उत्तर लिखिए।
2) लेनिन के दल संगठन पर विचार और साम्राज्यवादी संबंधी सिद्धांत देखिए। देखें भाग 28.5

इकाई 29 विदेशी पूंजी निवेश और नव वर्ग का उदय

इकाई की रूपरेखा

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 कुछ टिप्पणियाँ
29.3 चीन में विदेशी पूंजी
29.4 चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय
29.5 चीनी बूर्जुआ वर्ग और 1911 की क्रांति
29.6 युआन शिकाइ के काल में बूर्जुआ वर्ग
29.7 बूर्जुआ वर्ग : 1916-1919
29.8 शहरी समाज का उदय
29.9 सारांश
29.10 शब्दावली
29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

29.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- चीन में विदेशी पूंजी के महत्व को समझा पाएंगे,
- सन् 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की भूमिका के बारे में जान पाएंगे,
- राष्ट्रपति युआन शिकाइ के काल में व्यापारी वर्ग की स्थिति को समझ पाएंगे, और
- यह स्पष्ट कर पाएंगे कि किस तरह प्रथम विश्व युद्ध ने चीनी बूर्जुआ वर्ग के विकास को सुगम किया।

29.1 प्रस्तावना

इस इकाई की शुरुआत चीनी अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी की भूमिका से होती है। इस इकाई में हमने चीन में बूर्जुआ वर्ग के उदय पर चर्चा की है और यह बताया है कि 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की क्या भूमिका थी और युआन शिकाइ के शासन के प्रति उनका रवैया क्या रहा। एक ओर तो बूर्जुआ वर्ग ने स्वदेशी उद्योग और व्यापार के विकास में योगदान किया और दूसरी ओर नव संस्कृति आंदोलन के विकास में। उन्होंने शहरी केंद्रों और एक स्पष्ट शहरी संस्कृति के विकास में भी योगदान किया। इस इकाई में हमने इन पहलुओं पर भी विचार किया है।

29.2 कुछ टिप्पणियाँ

पारंपरिक चीनी समाज में मुख्य तौर पर किसान और कुलीन लोग थे। इसके अतिरिक्त सामंत वर्ग और सौदागरों का एक छोटा वर्ग भी था। सौदागर आवश्यक तौर पर शासक वर्ग का अंग नहीं थे। शासक वर्ग की सत्ता जमींदारी, लोक सेवा परीक्षा में उत्तीर्ण होने और प्रशासनिक ढांचे में व्यक्ति की स्थिति पर आधारित थी। सौदागरों का मुख्य काम व्यापारिक गतिविधियों में सक्रियता थी। चीन में औद्योगीकरण उस तरह नहीं आया, जिस तरह यूरोप और जापान में। जमींदारी का स्वरूप कुछ ऐसा था कि खेतिहरों को और अधिक मुनाफे के लिए अपनी बचत को औद्योगिक विकास में लगाने की आवश्यकता नहीं होती थी। चीन औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा ही रहा और इसलिए आधुनिक प्रौद्योगिकी की

मांग भी सीमित ही रही। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विदेशी ताकतों का सीधे-सीधे दखल होने के बाद से चीन में कुछ बदलाव आया। चीन के आकार और उसकी आबादी को देखते हुए, विदेशी व्यापार और पूंजी निवेश की भूमिका चीन की अर्थव्यवस्था में अपेक्षाकृत कम रही। हाँ, इसके राजनीतिक परिणाम अवश्य निर्णायक रहे। अपने लेख "चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण" में माओ त्से-तुंग ने चीनी समाज में अन्य वर्गों के साथ दो स्पष्ट सामाजिक वर्गों का होना बताया है— कम्प्रेडर बूर्जुआ वर्ग और राष्ट्रीय बूर्जुआ वर्ग। उसके विचार में, इन दोनों वर्गों का भेद 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीन में चले क्रांतिकारी संघर्ष में उनकी भूमिका से स्पष्ट होता है। राष्ट्रीय बूर्जुआ बुनियादी तौर पर क्रांति और साम्राज्यवाद विरोध के पक्ष में थे। कम्प्रेडर वर्ग साम्राज्यवाद का साथ देने वाला था, इसलिए वह अराष्ट्रभक्त और प्रति क्रांतिकारी या क्रांति-विरोधी था। कुछ विद्वान माओ के इस भेद को कृत्रिम मानते हैं। वे समूचे बूर्जुआ वर्ग को पूरी तौर पर विदेशी पूंजी निवेश और व्यापार पर आश्रित मानते हैं। यह मानना सच्चाई के अधिक निकट होगा कि ये दो अलग वर्ग नहीं थे, बल्कि दो राजनीतिक श्रेणियाँ थीं— राष्ट्रवादी और प्रतिक्रियावादी। महत्वपूर्ण बात वैसे यह है कि यह एक स्पष्ट राजनीतिक वर्ग था और इसने क्रांतिकारी संघर्ष में कोई सार्थक भूमिका नहीं निभाई।

29.3 चीन में विदेशी पूंजी

चीनी अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में जापानी और पश्चिमी प्रभाव देखा जा सकता था। सामान्य तौर पर, अधिकांश चीनी अर्थव्यवस्था विदेशियों की पहुँच से बाहर रही। विश्वसनीय आकलनों के अनुसार, 1914 में चीन में विदेशी पूंजी निवेश 16,100 लाख अमेरिकी डालर था, जबकि 1902 में यह 7330 लाख डालर था। 1914 में चीन की आबादी को 43 करोड़ रखा जाए तो प्रति व्यक्ति यह राशि लगभग 3.75 अमेरिकी डालर आती है। उसी काल में दूसरे उपनिवेशों में जो विदेशी पूंजी-निवेश था उसकी तुलना में यह बहुत ही कम था। 1930 के दशक में भी, चीन में निजी विदेशी पूंजी निवेश उसके कुल राष्ट्रीय उत्पाद का एक प्रतिशत भी नहीं था। बाद के वर्षों में विदेशी पूंजी निवेश बढ़ा, इसका एक कारण कीमतों का बढ़ना था और एक कारण यह था कि विदेशियों ने अपने मुनाफों को फिर से चीन में ही लगा दिया। बार-बार इस तरह निवेश और पुर्ननिवेश करने का ही परिणाम था कि एक छोटी-सी एजेंसी के रूप में शुरुआत करने वाली जार्डिन, मार्थसन एवं कंपनी ने एक शताब्दी के अरसे में अपने आपको चीन की सबसे बड़ी विदेशी कंपनी बना लिया, जिसकी पूंजी कई संधिगत बंदरगाहों में कई उद्योगों और वित्तीय हितों में लगी।

विदेशी पूंजी का सीधा निवेश निम्न क्षेत्रों में हुआ :

- आयात और निर्यात,
- व्यापार,
- रेलपथ,
- निर्माण (उत्पादन),
- जायदाद,
- बैंकिंग और वित्त,
- नौ-परिवहन,
- उत्खनन, और
- संचार।

इससे इस तथ्य का पता चलता है कि अनेक अन्य देशों की तरह चीन में उत्खनन अथवा बागान की खेती जैसे निर्यातोन्मुख उद्योगों में बहुत कम विदेशी पूंजी लगी।

विदेशी पूंजी सबसे अधिक संधिगत बंदरगाहों, विशेषकर शंघाई, में लगी। इसलिए इन्हीं स्थानों में, और इन्हीं स्थानों के आसपास, शहरी बूर्जुआ के नए वर्ग का जन्म हुआ। यह सही है कि विदेशी स्वामित्व वाले उद्यमों और चीनी उद्यमों में विदेशी पूंजी निवेश के कारण, चीन का अपना औद्योगिक विकास अवरुद्ध हुआ। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि चीनी

कंपनियां इस स्थिति में थीं ही नहीं कि विदेशी कंपनियों के साथ होड़ कर सकें। विदेशी कंपनियों के पास अधिक पूंजी, बेहतर प्रौद्योगिकी और प्रबंध तंत्र था, और इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्हें क्षेत्रीयता के विशेषाधिकार और चीनी करों से छूट मिली हुई थी, और उन्हें चीनी नौकरशाही की समकों के प्रभाव में यहीं आना होता था।

29.4 चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय

यहाँ बूर्जुआ वर्ग शब्द का प्रयोग अधिक संकुचित अर्थ में किया गया है। बूर्जुआ वर्ग को हम एक ऐसे वर्ग के रूप में लेते हैं, जिसमें उद्यमी, आधुनिक ढंग के व्यापारी, पूंजी लगाने वाले और उद्योगपति आते हैं। इसमें आम "मध्यम वर्ग" को शामिल नहीं किया गया है, जिसमें व्यावसायिक लोग, बुद्धिजीवी और जमींदार आते हैं।

सन् 1911 की क्रांति ने बूर्जुआ वर्ग को चीन के आर्थिक और सामाजिक जीवन में बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। 18वीं शताब्दी से, आबादी में होने वाले बदलावों के कारण, चीन में शहरीकरण की गति में तेज़ी आई। इससे उन व्यापारियों और सौदागरों की संख्या भी बढ़ी, जो खाद्यान्न जैसी आवश्यक वस्तुओं को गांवों से खरीद कर उन्हें कस्बों और शहरों में बेचते थे। अफीम युद्ध के बाद से चीन में पश्चिमी ताकतों का हस्तक्षेप और भी उग्र हो जाने पर चीन के तटवर्ती क्षेत्र में जबरदस्त आर्थिक बदलाव देखने में आए। इनमें से कई संधिगत बंदरगाह थे। हावी शहरी वर्गों–सौदागरों और उच्चाधिकारियों–को इसमें मुनाफे का अवसर दिखाई दिया। सौदागरों के पास पूंजी थी, उद्यम संबंधी कौशल था और नए-नए कामों में हाथ डालने की इच्छा थी। उदाहरण के लिए, तीन वर्षों (1895-98) के अरसे में सौदागरों ने कोई 50 उद्यमों में एक करोड़ 20 लाख युआन से भी अधिक राशि लगा दी थी। यह राशि पिछले बीस वर्षों में लगाई गई पूंजी से भी अधिक थी। मन्दारिनों (Mandarins) की प्रशासन और सार्वजनिक कोश तक पहुँच थी, और उनमें जिम्मेदारी का बोध था। कुलीनों और सौदागरों के इन दो वर्गों में जब असाधारण सहयोग और राजनीतिक विलयन हुआ तो, चीनी बूर्जुआ का जन्म हुआ।

सन् 1911 की क्रांति ने मन्दारिनों की स्थिति को कमज़ोर कर दिया था। स्पष्ट था, व्यापारिक प्रयास, राजनीतिक सत्ता नहीं तो आर्थिक स्थिति प्राप्त करने का एक अच्छा विकल्प बन गया। लेकिन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध छिड़ना चीनी बूर्जुआ वर्ग के विकास में एक निर्णायक मोड़ बन गया। यह नया वर्ग अब हरकत में आ गया, क्योंकि विदेशी होड़ हट जाने से उसके लिए चीन में और विदेश में भी नए बाज़ार खुल गए थे। व्यापार के फैलने और विविध होने से व्यापार के नए मार्ग खुले। हम देखते हैं कि बैंकर और उद्योगपति चीन की शहरी अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाने लगे। युद्धकाल और प्रारंभिक युद्धोत्तर वर्षों को चीनी बूर्जुआ वर्ग का स्वर्ण युग कहा जाता है। 1927 इस वर्ग के लिए एक और मोड़ था जब चीन के उत्तर में नौकरशाही सैनिक नियंत्रण के कारण एक मुक्त पूंजीवादी व्यवस्था का विकास अवरुद्ध हो गया।

29.5 चीनी बूर्जुआ वर्ग और 1911 की क्रांति

हमने बूर्जुआ वर्ग की आधुनिक व्यापार से बंधे वर्ग के रूप में जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि 1911 की क्रांति में उसकी भूमिका केवल द्वैतीयक या दूसरे स्थान पर ही थी। इस क्रांति की सफलता के बाद बूर्जुआ वर्ग ने इस स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास तो अवश्य किया। उनके बुनियादी हितों को सम्मान मिल भी गया, लेकिन वे स्थानीय स्तर के अतिरिक्त और किसी स्तर पर राजनीतिक सत्ता नहीं हथिया पाए।

सन् 1911 में चीनी राजतंत्र का पतन करने वाला वूचंग विद्रोह था तो एक सैनिक प्रयास, लेकिन उसे सौदागरों का समर्थन प्राप्त था। चैंबर ऑफ कॉमर्स ने लुटेरों और आगजनों से सुरक्षा के बदले में विद्रोहियों को भारी ऋण दिया। सौदागरों ने समाज-विरोधियों की तलाश करने के लिए एक सेना का भी गठन किया। एक बहुत मजबूत बूर्जुआ वर्ग को जन्म देने वाले शहर शंघाई में इस वर्ग और क्रांतिकारियों के बीच सहयोग ने क्रांति के सफल होने में एक निर्णायक भूमिका निभाई। व्यापारी वर्ग ने तुंग मेंग वी (क्रांतिकारी

गठबंधन) के साथ संपर्क स्थापित किया, जो बाद में कुओमिंतांग बन गया। सैनिकों और व्यापारियों के बीच सहयोग का शंघाई का अनुभव अपवाद था। फिर भी, चीन के अधिकांश भागों में उभरते व्यापारी वर्ग ने गणतंत्रवाद को चुना और राजतंत्र का विरोध किया। बूर्जुआ वर्ग ने विद्रोहों में पहल तो नहीं की, फिर भी उसने क्रांति का सहानुभूति और विश्वास के साथ स्वागत किया।

बूर्जुआ वर्ग की इस महत्वपूर्ण भूमिका को कथित "वैचारिक अतिसंकल्प" की घटना के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। इस नए वर्ग का उदय जनतंत्र, मुक्ति और राष्ट्रवाद के विचार के साथ-साथ हुआ। ये विचार पश्चिम की देन थे। 18वीं और 19वीं शताब्दियों में जब ये विचार यूरोप में सामने आए तो उभरते बूर्जुआ वर्ग ने उन्हें अपना लिया था। चिंग-विरोधी विपक्ष के नेताओं ने जनतंत्र, संविधानवाद और राष्ट्रवाद के जिन विचारों का प्रचार किया, वे बूर्जुआ वर्ग आकांक्षाओं के अनुरूप थे, इसलिए उन्होंने विपक्षी दलों और संगठनों का समर्थन किया।

क्रांति के तुरंत बाद केंद्रीय सत्ता के अभाव और लोक अधिकारियों की स्थिति खराब हो जाने के कारण स्थिति यह बन गई कि शहरी कुलीनों को बार-बार शहरों का दैनिक प्रशासन अपने हाथों में लेना पड़ा। नागरिक उत्तरदायित्व के कन्फ्यूशियसवादी बोध से प्रेरित होकर उन्होंने सामूहिक रूप से अपने आपको शहरी आबादी की सेवा में लगा दिया, सौदागरों का ध्येय अपने लिए सत्ता हथियाना नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था बनाए रखना और समुद्री डाकुओं, लुटेरों, अनुशासनहीन सिपाहियों और गुप्त संगठनों से निपटना था। चैम्बर ऑफ कॉमर्स का काम था—सिपाहियों को वेतन देना, डाकुओं को देश छोड़ने को घूस देना, सेनाओं को भंग करना और प्रतिद्वंद्वी सेनापतियों के बीच विवादों में मध्यस्थता करना। सौदागर वर्ग की राजनीतिक भूमिका सीमित स्तर की थी। उनका प्रयास व्यवस्था को बदलना नहीं था, बल्कि इसकी दोषपूर्ण कार्य-प्रणाली को सुधारने का प्रयास कर इसका अंग बनना था। वे सीधे तौर पर उन राजनीतिक जिम्मेदारियों को लेने को तैयार नहीं थे, जिनसे वे परंपरा से हमेशा अलग रहे थे। इसलिए उनका इसमें शामिल होना केवल कुछ समय के लिए ही हो सकता था। अपनी सीमित राजनीतिक भूमिका और सीधे-सीधे नियंत्रण न होने के कारण उन्हें अनेक जोखिमों का सामना करना पड़ा। स्थानीय सत्ताधारी बहुधा सौदागरों के विरोधी हो जाते थे, उनपर कर लगा देते थे, उन्हें धमकाते थे और उनका अपहरण भी कर लेते थे। उनके पास वित्तीय अधिकार होने के बावजूद, वे उन अधिकारियों के पहले शिकार बने जिन्हें स्थापित करने में उन्होंने मदद की थी।

सामान्य तौर पर चीनी प्रांतों में सौदागरों के अधिकार केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के नौकरशाही अधिकारों का स्थान नहीं ले सकते थे। वे बस इतना कर सकते थे कि विनाशकारी अराजकता को सीमित कर दें, जो शाही व्यवस्था का एक मात्र विकल्प दिखाई देता था।

शंघाई का बुर्जुआ वर्ग विश्व बंधुत्व में सबसे अधिक आस्था रखने वाला और सबसे अधिक आधुनिक था। उसने एक प्रभुत्वशाली राजनीतिक शक्ति बनने के लिए जोर लगाया। उनकी इच्छा थी कि वे चीन के आंतरिक क्षेत्रों के साथ व्यापार बढ़ाए और तटवर्ती क्षेत्रों तक ही सीमित न रहें। इसलिए वे राष्ट्रीय एकता चाहते थे। शंघाई के बूर्जुआ वर्ग ने सन यात सेन के गणतंत्रीय कार्यक्रम को अपनाया और उसके आधुनिकीकरण के अभियान में शामिल हो गए। शंघाई के सौदागरों ने भारी ऋण देकर सन यात सेन को जनवरी 1, 1912 को नानकिंग में चीनी गणराज्य स्थापित करने में मदद की। पाँच वर्षों बाद घोषित अपने घोषणा-पत्र में सन यात सेन ने वचन दिया: ''हम .... अपनी वाणिज्यिक और उत्खनन संहिताओं को ..... संशोधित करेंगे, व्यापार और वाणिज्य पर लगे प्रतिबंध समाप्त करेंगे।'' इनमें, सौदागरों के लाभ के कई उपायों की घोषणा की गई थी। लेकिन, नानकिंग सरकार केवल तीन महीने सत्ता में रही, इसलिए वह कुछ भी लागू नहीं कर पाई। बुर्जुआ वर्ग न तो सीधे-सीधे सत्ता हथिया पाए और न ही अपने प्रतिनिधि डॉ. सन यात सेन और उसके कुओमितांग के हाथ से सत्ता के जाने को रोक पाए। हाँ, उन्होंने अपनी शक्ति का आभास अवश्य करवा दिया। उन्होंने प्रांतों में व्यापार के सामान्य रूप से चलते रहते और कुछ अंश तक कानून और व्यवस्था बनाए रखने में मदद दी थी। नानकिंग सरकार को उनके समर्थन के कारण वह नहीं घट पाया जो नहीं घटना चाहिए था – अर्थात् मांचू वंश की वापसी। वे ऐसे राजनीतिक ढांचे नहीं खड़े कर पाए जो उनके अपने विकास के लिए आवश्यक थे। प्रांतों में उनका सामाजिक आधार इतना कमजोर था कि उनके लिए कुलीनों से अलग अपनी पहचान बनाना संभव नहीं था। वे चीन के उस

ग्रामीण समाज तक पहुँचने में असफल रहे जो शताब्दियों से एक नौकरशाही अधिकारवादी परंपरा का अभ्यस्त रहा था।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर ढूंढिए :

   i) चीनी बूर्जुआ वर्ग ने अपने आपको .... के बाद ही मज़बूत किया।

      क) सन् 1911 की क्रांति

      ख) प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत

      ग) कुओमिंतांग के गठन

      घ) लेनिन की मृत्यु

2) चीनी बूर्जुआ वर्ग का एक सामाजिक शक्ति के रूप में किस तरह उदय हुआ? लगभग 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) अपने संकुचित अर्थ में प्रयुक्त "बूर्जुआ" शब्द में .... आ जाते हैं।

   क) बुद्धिजीवी

   ख) सामाजिक कार्यकर्ता

   ग) उद्यमी

   घ) ज़मींदार

4) लगभग 5 पंक्तियों में चीन में सौदागर वर्ग की चर्चा करें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

29.6 युआन शिकाइ के काल में बूर्जुआ वर्ग

युआन् शिकाइ के चीनी गणराज्य का राष्ट्रपति बनने के बाद, चीनी बूर्जुआ वर्ग के लिए अवनति का एक दौर प्रारंभ हुआ। कई महीनों की अव्यवस्था के बाद, व्यापारी वर्ग में शांति और सुरक्षा की वापसी के लिए चिंता हुई। कुछ संकोच के साथ युआन शिकाइ के साथ इन लोगों के खड़े होने से इस नए राजनीतिक समीकरण की शुरुआत हुई। क्रांतिकारी गणतंत्रवादियों के साथ उनके संबंध शिथिल पड़ने लगे। शंघाई में दुस्साहसी सेना ने जनरल चैम्बर ऑफ कॉमर्स पर उस समय गद्दारी का आरोप लगाया जब उनके सेनापति को अप्रैल 1912 में अंतर्राष्ट्रीय बस्ती में गिरफ्तार कर लिया गया। बूर्जुआ वर्ग का रूझान

नए और नरमपंथी राजनीतिक दलों की ओर हो गया, जिन्होंने मई 1912 में अपना पुनर्गठन करके रिपब्लिकन पार्टी बना ली। 1912-13 के राष्ट्रीय चुनावों में नरमपंथियों ने शंघाई में इस पार्टी का समर्थन किया। युआन शिकाइ ने सौदागरों को हर्जाना और आश्वासन दिये, उसने शंघाई के व्यापारी वर्ग के साथ नानकिंग सरकार के आनुबंधिक दायित्वों को मान्यता दी, और हानतो के उन सौदागरों को हर्जाना देने का वायदा किया, जिनकी दुकानें अक्तूबर, 1911 के विप्लव में नष्ट हो गई थीं। अक्तूबर, 1912 में, युआन ने बूर्जुआ वर्ग का समर्थन प्राप्त करने की गरज से कई सुधारों की भी घोषणा की। इन सुधारों में पारगमन कर पर रोक, निर्यात करों में कटौती, मुद्रा का एकीकरण, और औद्योगिक विकास की एक नीति शामिल थी।

सन् 1912 के प्रारंभिक कुछ महीनों की स्थिरता या जड़ता के बाद, जब व्यापार फिर चालू हो गया तो बूर्जुआ वर्ग राजनीतिक गतिविधि से अलग हो गए। भरपूर फसल और विश्व बाज़ार में चाँदी की कीमत बढ़ने के कारण, विदेश व्यापार में अपेक्षाकृत बेहतरी की स्थिति आई। यह संपन्नता उद्योग के क्षेत्र तक पहुँची। शंघाई में, 1912 में, नए संयंत्रों की विद्युत की मांग को पूरा करने के लिए औद्योगिक विद्युत की आपूर्ति को चार गुना बढ़ाना आवश्यक हो गया, ऐसा विशेषकर चावल मिलों के मामले में हुआ, जो काफी संख्या में बन रही थीं, और कपड़ा मिलों के मामले में, जो अपनी क्षमता बढ़ा रही थीं। इस काल में मिल-व्यापार में तेज़ी से वृद्धि हुई। कल-कारखानों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। हांगयांग की जिन झोंका-भट्टियों को 1911 के विद्रोह के दौरान छोड़ दिया गया था, उन्हें पूरी तौर पर चीनी दलों ने फिर से चालू किया। उत्खनन उद्योग में पूर्वेक्षण और खान के कार्यों का विस्तार हो रहा था। शंघाई शहर की ट्रामपथ व्यवस्था के निर्माण की योजना बनाने और उसे पूरा करने का काम कुछ ही महीनों में बिना किसी बाहरी मदद के कर लिया गया। यह सारा काम कोई एक दर्जन प्रांतीय या राष्ट्रीय संगठनों ने किया, जिनका गठन 1912 के दौरान उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए किया गया था।

इस सुधरती स्थिति में व्यापारी वर्ग को सबसे अधिक भय इस बात का था कि कहीं सैनिक और राजनीतिक अव्यवस्था की स्थिति फिर से न बन जाए। मार्च 22, 1913 में सूंग च्याओ-जेन की हत्या से शंघाई के सौदागरों में मानसिक अशांति फैल गई। लेकिन वे युआन शिकाइ की गद्दारी से इतना परेशान नहीं हुए थे (यह सुविदित था कि हत्या की योजना उसी ने बनाई थी), जितना सन यात सेन की बैरपूर्ण प्रतिक्रिया से। समूची राजनीतिक स्थिति में अनिश्चितता के इस दौर में, बूर्जुआ वर्ग को एक नए संकट के उभरने का भय था, जिससे सुधरा हुआ वातावरण बिगड़ सकता था। क्रांतिकारी प्रयोग से निराशा, एक व्यवस्थित शासन के आकर्षण और आर्थिक विस्तार से जगी नई आशाएँ, इन सबने मिलकर उन्हें एक कपटपूर्ण तटस्थता अपनाने को बाध्य कर दिया। 1913 के ग्रीष्म के संकट ने उन्हें अपना मन बना लेने को विवश कर दिया।

जब युआन और सन यात सेन के बीच संघर्ष हुआ तो, दक्षिणी प्रांतों के सैनिक नेताओं ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। विद्रोही सेना सड़कों पर आ गई तो शंघाई को भी आंदोलन में आना पड़ा। सौदागर विद्रोहियों के साथ खुली शत्रुता और उनके अपने हितों के लिए आवश्यक अवसरवाद के विकल्पों के बीच झूलते रहे। जनरल चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने स्वाधीनता की घोषणा का समर्थन करने या विद्रोही सेनापति के मांगे धन की आपूर्ति करने से इंकार कर दिया। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि शंघाई को लड़ाई का मैदान नहीं बनने दिया जाएगा।

कैंटन में, जुलाई 21 को शहर की स्वाधीनता की घोषणा करने वाले राज्यपाल को सौदागर या तो विरुद्ध मिले या निष्क्रिय। यांगज़ी नदी के सभी प्रमुख बंदरगाहों में, सौदागरों ने वही सतर्कता, वही छिपी शत्रुता या विरोध का रवैया दिखाया। न्यूनाधिक सफलता के साथ स्थानीय चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स (व्यापार मंडलों) ने अपनी शक्ति को अपने शहर को बचाए रखने, विद्रोही सिपाहियों को घूस देकर वहां से चले जाने को तैयार करने और उत्तरवासियों की शांतिपूर्ण वापसी के लिए रास्ता तैयार करने में लगा दिया। नानकिंग में जहाँ सौदागरों ने दक्षिणवासियों को बहुत अधिक धन दिया था, ये प्रयास व्यर्थ गए, अब उन्हें उत्तरी सेना के प्रवेश और उसके बाद सितम्बर 13, 1913 के दौरान हुई लूटमार में अपनी बर्बादी दिखाई दी। 1913 की इस "दूसरी क्रांति" के प्रति बूर्जुआ वर्ग का विरोधपूर्ण रवैया केवल बहुत ही सतर्कतापूर्ण ढंग में ही व्यक्त हुआ, विशेषकर उन प्रांतों में जिन्होंने स्वाधीनता की घोषणा कर दी थी। व्यापार मंडलों ने स्पष्ट तौर पर कोई विरोध नहीं जताया, उन्होंने बहुत अधिक दबाव न पड़ने की स्थिति में बस अपनी ओर से आर्थिक सहयोग देने से इंकार

कर दिया। कुछ भी हो, संघर्ष का परिणाम मुख्य तौर पर सैनिक नेताओं, और उनकी सेना की योग्यता और संख्या पर निर्भर रहा। यहाँ युआन शिकाइ की श्रेष्ठता लगभग प्रारंभ से ही स्पष्ट थी। बूर्जुआ वर्ग के इस कथित विरोध या पृथकता का 1913 में कोई निर्णायक महत्व नहीं था। व्यावहारिक दृष्टि से बूर्जुआ वर्ग एक दूसरे दर्जे की शक्ति भर रहे।

सन् 1913 का विद्रोह विफल होने से भारी कर लगे और दुकानें नष्ट हुईं। इससे बूर्जुआ वर्ग को अपने अल्पकालीन हितों की रक्षा को बाध्य होना पड़ा। युआन शिकाइ ने सौदागरों को प्रोत्साहित किया कि वे अपनी पारंपरिक सामाजिक पृथकता और राजनीतिक निष्क्रियता वाली स्थिति में आ जाएं। जीत जाने के बाद, उसने क्रांतिकारी विपक्ष को समाप्त करने के लिए क्रांतिकारी विपक्षी नेताओं को देश-निकाले को विवश कर दिया और पहले नवम्बर, 1913 में कुओमिंतांग और फिर उसी वर्ष दिसम्बर में संसद को भंग करने के आदेश जारी किए। उसने 1911 के पहले और बाद में स्थानीय कुलीनों के लाभ के लिए निचले स्तर पर गठित तमाम प्रतिनिधि संस्थाओं पर भी प्रहार किया। फरवरी, 1914 में उसने प्रांतीय और स्थानीय सभाओं को समाप्त कर दिया, जिन्हें 1912-13 के जाड़ों में एक अत्यधिक परिवर्धित मतदाता-समूह अर्थात् वयस्क पुरुषों की जनसंख्या के लगभग 25 प्रतिशत, के आधार पर अभी पुनर्जीवित किया ही गया था। क्रांति के बाद से इन स्थानीय सभाओं ने अनेक प्रशासनिक, वित्तीय और सैनिक कामों को अपने हाथों में ले लिया, जो आम तौर पर राज्य की नौकरशाही के लिए आरक्षित थे।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने उस समय बड़ी तादाद में विकसित होने वाले उद्योगपतियों, शिक्षकों, दस्तकारों और महिलाओं के संगठनों के लिए मंचों और प्रवक्ताओं का काम किया। इन संगठनों के माध्यम से समाज का एक पूरा वर्ग राष्ट्र की राजनीतिक जीवन-धारा में शामिल हो गया, जिसमें कुलीन, बुद्धिजीवी और छोटे सौदागर थे। ये सभाएँ चीनी की राजनीतिक परंपरा में मुक्ति के एक अंश का प्रतीक थीं। पहली बार लोगों को स्थानीय हितों और सामाजिक समूहों या वर्गों का बचाव देखने को मिला जिन्हें पहले के शासक वर्गों ने बंद या अनदेखा कर रखा था। इस तरह, युआन के दृष्टिकोण से वे उसकी अपनी व्यक्तिगत शक्ति और राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने की राह में खतरे का प्रतीक थे, जिसकी बराबरी वह एक मज़बूत प्रशासनिक केंद्रीकरण से करता था।

शंघाई के सौदागरों के लिए यह एक असाधारण अनुभव का अंत था। इस चीनी शहर की नगरपालिका में, शहरी कुलीन वर्ग अपनी प्रबंधन की क्षमता, आधुनिकीकरण के रूझान, जनतांत्रिक प्रक्रियाओं की अपनी क्षतिपूर्ति और प्रमुख राष्ट्रीय समस्याओं में अपनी रुचि का प्रमाण देने में सफल रहा था। शंघाई के व्यापारी हलकों को फिर कभी यह स्थानीय प्रशासन और राजनीतिक स्वायत्तता नहीं मिली। युआन ने पहले की नगर पालिका के स्थान पर लोक निर्माण, पुलिस और करों का जो तंत्र बनाया था वह कट्टर तौर पर स्थानीय अधिकारियों के अधीन बना रहा। 1914 में पारित एक कानून ने व्यापार मंडलों पर सरकारी नियंत्रण को मज़बूत कर दिया, जिससे सरकार व्यापारी समुदाय को उनकी राजनीतिक अभिव्यक्ति के साधन से वंचित करने में कामयाब रही। पहल से वंचित हो जाने पर, सौदागरों की उन महान आदर्शों में रुचि समाप्त होने लगी जिनसे उन्हें शताब्दी के प्रारंभ से ही प्रेरणा मिलती रही थी। उन्होंने चीन में स्वयं आधुनिकीकरण का जो अभियान चलाया था उसे देश-व्यापी स्वीकृति न मिल पाने की स्थिति में, वे अपने अल्पकालिक हितों की रक्षा में लग गए। एक सैनिक-नौकरशाही शासन के मुकाबले में होने के नाते, उन्होंने विदेशियों की उपस्थिति के साये में अपने भौगोलिक और सामाजिक आधार की स्वायत्तता को मज़बूत करने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय बस्ती में उन्होंने बहुधा विदेशी पुलिस से सुरक्षा की मांग की।

युआन शिकाइ के राष्ट्रपतित्व में एक नया तत्व विशेष था, वह था व्यापारिक विधान को पूरा करके, वित्तीय और आर्थिक व्यवस्था को स्थिर करके, और निजी उद्यम को प्रोत्साहित करके आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने का संकल्प। कृषि एवं व्यापार मंत्री ने व्यापारिक उद्यम और निगमों के पंजीकरण, और निगम स्थापनाओं पर कानून पारित करवाए, उसने कपास और गन्ने की खेती के लिए नमूना केंद्र स्थापित किए और बांट और माप के मानकीकरण की योजना बनाई। फरवरी, 1914 में युआन शिकाइ डालर की स्थापना की गई, जो आर्थिक एकीकरण की दिशा में पहला कदम था। व्यापार को प्रोत्साहित करने और बढ़ावा देने की यह इच्छा सभी बूर्जुआ वर्ग को कोई भी अधिकार देने से इंकार करने के बहुत विपरीत थी। इस संदर्भ में युआन नौकरशाही के आधुनिकीकरण की ओर लौटा, जिसका वह स्वयं चिंग वंश के अंतिम वर्षों में एक प्रबल समर्थक और प्रतिनिधि रहा था। युआन अब एक तानाशाह था, उसकी सत्ता का आधार सेना और मन्दारिनों में था। उसे

सौदागरों को फुसलाने की क्या आवश्यकता थी? इसलिए उसकी आर्थिक नीतियों में बूर्जुआ वर्ग का समर्थन करने, उन्हें सहारा देने, के किसी वचन की तलाश करना सही न होगा। युआन के शासन के कोई चार वर्षों में संधिगत बंदरगाहों वाले क्षेत्रों को मिली संपन्नता का श्रेय इसे देना भी गलत होगा। वास्तव में, प्रथम विश्व युद्ध के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में जो बदलाव आया वही वह निर्णायक शक्ति थी जिसने चीन के उभरते नए वर्ग को उसके कथित "स्वर्णिम युग" में पहुँचाया।

29.7 बूर्जुआ वर्ग : 1916-1919

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारंभ में, चीन में व्यापारियों की एक नई पीढ़ी के उदय के साथ, राष्ट्रीय पूंजीवाद पूरे ज़ोर पर था। व्यापारियों की यह पीढ़ी औद्योगिक उत्पादन और वेतनभोगी कर्मचारी दल के शोषण से सीधे-सीधे जुड़ी थी। शहरी अर्थव्यवस्था में इस उछाल का कारण वह क्रांति नहीं थी, जिसे सैन्यवादियों ने अपने हाथों में ले लिया था, बल्कि वह आर्थिक चमत्कार था, जो प्रथम विश्व युद्ध के कारण हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी की असमान संधियों ने चीनी बाज़ार को जिस सुरक्षा से वंचित कर दिया था, उसका एक अंश युद्ध के कारण उसे वापस मिल गया। युद्धरत ताकतें अपनी ही कलह में इतनी उलझी थीं कि उन्होंने चीन की ओर से मुंह फेर लिया। चीनी व्यापार से यूरोपीय ताकतों के हट जाने से उनका स्थान लेने वाले राष्ट्रीय उद्योगों के लिए अनुकूल स्थिति अवश्य बनी, लेकिन इसने जापानी और अमेरिकी हितों के विस्तार को भी प्रोत्साहित किया, जो बाद के वर्षों में अपना समय आने पर बड़े टकरावों के स्रोत बने।

युद्ध के कारण विश्व में अलौह धातुओं और वनस्पति तेलों जैसे प्राथमिक उत्पादनों और नई सामग्रियों की मांग बढ़ गई। प्राथमिक उत्पादनों का प्रमुख वितरण होने के नाते, चीन इस मांग को पूरा करने की अच्छी स्थिति में था। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी ताकतों के चाँदी की मुद्रा वाले, चीन और भारत जैसे देशों में खरीद में वृद्धि होने से चाँदी की अंतर्राष्ट्रीय कीमत में वृद्धि की स्थिति बनी। इस तरह, ताएल एक सुदृढ़ मुद्रा बन गई। कुछ ही वर्षों में विश्व बाज़ार में इसकी क्रय (खरीद) शक्ति तिगुनी हो गई। विदेशी ऋणों का भार कम हो गया, जिससे शोचनीय चीनी अर्थव्यवस्था को कुछ राहत मिली, लेकिन आयात और विशेषकर औद्योगिक उपकरणों के आयात सुगम नहीं हुए। इसका कारण सीधा-साधा था कि यदि विश्व युद्ध ने चीनी अर्थव्यवस्था को विकास के अवसर दिए थे तो, इन अवसरों को प्राप्त कर इनका लाभ केवल एक ऐसी अविकसित अर्थव्यवस्था के संकुचित ढांचे में उठाया जा सकता था, जो एक पंगु अर्ध-उपनिवेशीय व्यवस्था की गतिशीलता पर निर्भर थी।

युद्धरत राज्यों को व्यापारिक बेड़ों की आवश्यकता होने, विश्व व्यापार में कमी होने, और उसके परिणामस्वरूप भाड़ों में वृद्धि होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अवरुद्ध हो गया। विनिमय संबंधी नियंत्रणों, और 1917 में फ्रांस और इंग्लैंड के रेशम और चाय पर रोक लगा देने से चीनी उत्पादनों की निकासी के परंपरागत मार्ग छिन गए। और, यूरोपीय ताकतों के युद्ध-उद्योगों को प्राथमिकता देने का चीन को उपकरण की आपूर्ति पर उलटा प्रभाव पड़ा। ऐसे समय में, जबकि विदेशी होड़ कम होने से राष्ट्रीय उद्योगों में उछाल आ रहा था, इन उद्योगों के लिए आवश्यक मशीनरी प्राप्त करना बहुत कठिन हो गया। प्रथम विश्व युद्ध तक चीन विकास के उस स्तर पर नहीं पहुँचा था कि वह विदेशी ताकतों की उद्योगों से अपेक्षाकृत वापसी का पूरा लाभ उठा पाता। विश्व युद्ध से जो कठिनाइयाँ सामने आयीं उनमें वास्तविक घाटे नहीं, बल्कि लाभ की कमी शामिल थी। चीनी अर्थव्यवस्था के आधुनिक क्षेत्र के लिए युद्ध के वर्ष सम्पन्नता का दौर थे। शांति की बहाली के बाद जाकर ही व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए "स्वर्णिम युग" आया।

वर्ष 1919 में चीनी अर्थव्यवस्था का आधुनिक क्षेत्र विश्व युद्ध और बहाल शांति के लाभ उठाने लगा। प्राथमिक उत्पादनों की मांग में तेज़ी आ गई। युद्ध की आवश्यकताओं का स्थान पुनर्निर्माण की आवश्यकताएँ ले रही थीं। शंघाई में, 1913 में, निर्यातों का मूल्य पिछले वर्ष की अपेक्षा 30 प्रतिशत अधिक था। निर्यातों में उछाल और भी उल्लेखनीय रही, क्योंकि चाँदी का मूल्य लगातार बढ़ता रहा और इसके साथ-साथ ताएल की विनिमय दर भी। यूरोपीय खरीदारों की आवश्यकता इतनी अधिक थी कि वे ऊँची कीमतें देने को तैयार थे। जहाज़ी माल की और अधिक उपलब्धता और युद्ध-उद्योगों के फिर से परिवर्तन

के कारण चीनी उद्योगपतियों के लिए अपनी आपूर्तियों के लिए पश्चिमी बाज़ारों को लौटाना संभव हुआ। केवल एक वर्ष में, 1918 से 1919 तक, उदाहरण के लिए, उनकी वस्त्र सामग्री की खरीद 18 लाख ताएल से बढ़कर 39 लाख ताएल हो गई।

सन् 1917 तक एक मामूली विस्तार के बाद, विदेशी व्यापार का मूल्य 1918 में 10,400 लाख ताएल से बढ़कर 1923 में 16,700 ताएल हो गया। प्रगति का पैमाना निर्यातों की वृद्धि और विविधता हो गई। आयातों में कम तेज़ी से वृद्धि हुई, लेकिन उन्हें काफी पुनर्संरचना से गुजरना पड़ा। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता उत्पादनों, विशेषकर सूती सामग्रियों में, जिनके निर्माण का विकास चीन में हो रहा था, (वाहनों, फर्नीचर आदि जैसे) टिकाऊ सामान के पक्ष में गिरावट आई। आयातों और निर्यातों में वृद्धि की इस असमानता ने व्यापार संतुलन की बहाली में योगदान किया। 1919 में घाटा केवल एक करोड़ 60 लाख ताएल से अधिक नहीं गया। चीनी विदेशी व्यापार का स्वरूप एक "अविकसित" अर्थव्यवस्था का रहा, लेकिन यह व्यापार अब एक आश्रित अर्थव्यवस्था का व्यापार नहीं रह गया था, बल्कि इसका संबंध एक आधुनिक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि के पहले चरण से था।

बाज़ार में मांग बढ़वे के कारण, स्वदेशी और विदेशी दोनों उत्पादनों में वृद्धि हुई। परंपरागत और आधुनिक, दोनों क्षेत्र नई आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे। 1919 तक आधुनिक उद्योगों के उछाल को रोकने या अवरुद्ध करने के लिए उत्तरदायी जहाज़ी माल और उपकरण की कमी ने दस्तकारी क्षेत्र को प्रभावित नहीं किया था। 1915-16 से लेकर करघों की संख्या उत्तरी और मध्यवर्ती प्रांतों में बढ़ रही थी। उत्पादन की खपत स्वदेशी बाज़ार में थी। शहरी कार्यशालाएँ स्थापित की गईं और व्यापारिक पूंजीवाद प्रमुख शहरी केंद्रों के पास के समूचे ग्रामीण क्षेत्र में फैल गया। बुनाई, तैयार वस्त्र, होजियरी, कांच का सामान, माचिस और तेल उत्पादन में केवल उत्पादन के पुराने तरीकों की वापसी शामिल नहीं थी। बल्कि इस दस्तकारी उद्योग में बहुधा उन्नत तकनीकों और औद्योगिक मूल के कच्चे माल (धागे, रासायनिक उत्पादन) का उपयोग होता था, और जिसे हम एक "संक्रमणकालीन" आधुनिकीकरण कह सकते हैं, उसे अपनाने का प्रयास होता था।

तटवर्ती शहरों में आधुनिक व्यापार की उछाल एक अपेक्षाकृत सामान्य विस्तार के केवल एक पक्ष को बताती है, वैसे यह बेशक सबसे उल्लेखनीय पक्ष है। 1912 से 1920 तक आधुनिक उद्योगों की वृद्धि दर 13.8 प्रतिशत तक पहुँच गई थी। इसका प्रमुख उदाहरण सूती धागा था। खाद्य उद्योगों में भी उछाल आया, जैसा कि कई आटा मिलों के खुलने और विदेशी स्वामित्व वाली तेल मिलों की फिर से खरीद होने से स्पष्ट होता है, लेकिन यह वृद्धि और विकास भारी उद्योगों तक नहीं पहुँच पाया। दक्षिणी प्रांतों में अलौह धातुओं (विशेषकर सुरमा और रांगा) के दोहन की अप्रत्याशित संपन्नता का आधार विशुद्ध रूप से अंतर्राष्ट्रीय सट्टेबाजी थी, और यह उसी के साथ गायब भी हो गई। आधुनिक कोयला और लौह खानें 75 से 100 प्रतिशत तक विदेशी हितों के नियंत्रण में रहीं। सबसे उल्लेखनीय प्रगति मशीन-निर्माण उद्योग में हुई। शंघाई और उसके आसपास के क्षेत्रों को इस विस्तार का मुख्य रूप से लाभ मिला, इसका प्रभाव त्येनसिन और कुछ कम अंश में कैंटन और वूहान पर भी पड़ा।

इस समूचे वृद्धि काल में व्यापार और उत्पादन की वृद्धि को साख बढ़ने ने संभाला और कीमतों और मुनाफा बढ़ने ने बढ़ावा दिया। विदेशी व्यापार में बाधा डालने वाले विदेशी बैंकों की स्थिति में गिरावट आने से स्थानीय बाज़ार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि उनका वित्त प्रबंध हमेशा चीनी नियंत्रण में रहा। इसके विपरीत, इस स्थानीय या स्वदेशी बाज़ार ने महत्वपूर्ण संसाधनों को राष्ट्रीय व्यापार के लिए उपलब्ध कराया। उसने इस दिशा में सामंतों और कम्प्रेडरों की पूंजी को उपलब्ध कराया, जो अब तक सुरक्षा या ब्याज के कारण मुख्य रूप से विदेशी कार्यकलापों में ही पूंजी लगाते रहे थे। आधुनिक चीनी बैंकों का उदय प्रथम विश्व युद्ध से होता है। केवल वर्ष 1918 और 1919 में ही 96 नए बैंक खोले गए थे। वैसे, इनमें से अधिकांश बैंकों के घनिष्ठ संबंध लोक अधिकारियों से थे। ऐसा चीन के सरकारी बैंक और बैंक ऑफ कम्यूनिकेशन के साथ, कुछ दर्जन प्रांतीय बैंकों के साथ, और अनेक अन्य राजनीतिक बैंकों के साथ था, जिनके संस्थापक सरकारी हलकों से थे या उनके उच्च अधिकारियों के साथ घनिष्ठ संबंध थे। इन तमाम प्रतिष्ठानों की गतिविधि राज्य कोशों और ऋणों की देखभाल तक सीमित थी। कोई एक दर्जन आधुनिक बैंकों का संचालन विशुद्ध रूप से व्यापारिक स्तर पर हो रहा था। इनमें से अधिकांश बैंक शंघाई में थे। राष्ट्रीय व्यापार को वित्त देने में उनकी भागीदारी में बाज़ार का प्राचीन, अप्रासंगिक ढांचा बाधा बना रहा।

व्यापार को वित्त देने के लिए, आधुनिक बैंकों को इस तरह पुराने ढंग के बैंकों की तरह ही ऋण देने का सहारा लेना पड़ता। फिर भी, आधुनिक बैंक अपने ग्राहकों से संपत्ति गिरवी रखने या सामान जमा कराने के रूप में गारंटी या जमानतें मांगते थे। इससे उन्हें पुराने ढंग की बैंकों की तुलना में हानि हुई, क्योंकि पुराने ढंग के बैंक परंपरागत नियमों पर चलते थे, जिनका आधार व्यक्तिगत संबंध थे, और ये बैंक "भरोसे पर" ऋण देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि आधुनिक बैंकिंग क्षेत्र का आकार विशाल होने के बावजूद, असली व्यापारिक बैंक पुराने ढंग के बैंक ही रहे।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान थोक कीमतें 20 प्रतिशत से 44 प्रतिशत तक बढ़ गई। बढ़ती औद्योगिक कीमतों की तुलना में कृषि उत्पादनों की कीमतों में स्थिरता थी। परंपरागत ग्रामीण अर्थव्यवस्था में यह स्थिरता ग्रामीण समाज के अपेक्षाकृत संतुलन का संकेत थी। कृषि उत्पादनों की कीमतों में स्थिरता और औद्योगिक कीमतों में वृद्धि संपन्नता के चिन्ह थे। इस संपन्नता का सबसे अधिक लाभ व्यापारिक क्षेत्र को मिला। सबसे महत्वपूर्ण कंपनियों ने अपने मुनाफे बीस गुना तक, और कुछ ने तो पचास गुना तक बढ़ा दिए। लाभांश 30 से 40 प्रतिशत तक पहुँच गए, और कुछ जगह तो 90 प्रतिशत तक। व्यापारियों को होने वाले लाभ इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि वे अपने लाभों का साझा अपने कर्मचारियों के साथ कभी नहीं करते थे। दस्तकारों का वेतन और मज़दूरों की दिहाड़ी कैंटन में केवल 6.9 प्रतिशत बढ़ी, और शंघाई में 10 से 20 प्रतिशत। इस भौतिक संपन्नता ने चीन के तटवर्ती क्षेत्रों में नए सामाजिक वर्ग के गठन में मदद की। यह एक शहरी, उच्च मध्यम वर्ग था, जो पश्चिमी प्रभावों के प्रति अत्यधिक उन्मुक्त था।

29.8 शहरी समाज का उदय

आर्थिक वृद्धि के कारण तेजी से शहरीकरण हुआ। शहरी आबादी की वार्षिक वृद्धि दर कुल आबादी की वृद्धि दर से बहुत अधिक ऊँची थी। यह स्थिति शंघाई में विशेष कर स्पष्ट थी, जहाँ दस वर्षों में चीनी आबादी तिगुनी हो गई। त्येन सिन और ज़िंगताओ जैसे दूसरे संधिगत बंदरगाहों में भी आबादी में वृद्धि हुई।

आंतरिक शहरों में विस्तार तेजी से लेकिन कम उल्लेखनीय रहा। उदाहरण के लिए, ज़िनान में 1914-19 के बीच वृद्धि दर तीन प्रतिशत रही, जबकि समूचे प्रांत की आबादी की वृद्धि दर केवल एक प्रतिशत रही। इस तेज शहरीकरण का कारण न तो अकाल ही था और न ही नागरिक अशांति का बढ़ना, क्योंकि इस दौर में ये स्थितियाँ नहीं बनीं थीं। इसका बुनियादी कारण ग्रामीण समाज का विकास के नए केंद्रों के प्रति आकर्षण था। गांवों में जिनके पास जीविका का साधन नहीं था, ऐसे गरीब किसान कसबों और शहरों में आजीविका की तलाश में आए। उन्होंने मिलों और कार्यशालाओं या कारखानों में काम ढूंढा। ये बंदरगाहों में सामान ढोने वाले, कुली और रिक्शा-चालक बन गए। अनेक संपन्न ग्रामीण भी शहरों, विशेषकर प्रांतों की राजधानियों में स्थानीय प्रशासन या स्वायत्तशासी संगठनों में नौकरी की संभावनाएँ टटोलने आ गए। दूसरों ने शहरी जीवन को इसलिए चुना क्योंकि यहाँ उनके बच्चों के लिए आधुनिक शिक्षा की गारंटी थी, जोकि अपने आप में एक अत्यधिक वांछित विशेषाधिकार था।

शहरी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार हुआ। उपनगरों ने पुराने शहर की दीवारों के फाटकों से होकर शहर के मध्य भाग से संपर्क बनाना शुरू कर दिया। कैंटन और चांगशा समेत अनेक शहरों में नए आवासों का निर्माण सुलभ करने के लिए शहर की दीवारों को गिरा दिया गया। (चीन में, प्राचीन समय से ही शहरों को दीवारों से घेरकर रखा जाता था) अधिकांश नए निर्माण आवास के लिए हुए, लेकिन भव्य व्यापारिक इमारतें भी बनीं। अनेक दुकानें, डिपार्टमेंटल स्टोर और मंडियां भी बनकर तैयार हुईं। कार्यशालाएँ, गोदाम और भंडारगृह इस सीमा तक बने कि नगरपालिका द्वारा अधिकृत निर्माण का मूल्य 1915 और 1920 के बीच 20 लाख ताएल से एक करोड़ 10 लाख ताएल तक बढ़ गया।

इन विकसित होते शहरी केंद्रों में आबादी बढ़ती चली गई और सामाजिक वर्गीकरण और भी जटिल और स्पष्ट हो गए। आधुनिक बूर्जुआ वर्ग और मज़दूर सर्वहारा वर्ग का उदय हुआ और शहरी कुलीनों में एक वर्ग की पहचान आधुनिक बुद्धिजीवी के रूप में बन गई। सामान्य दृष्टिकोण से, चीनी समाज में होने वाले ये बदलाव गौण रहे, क्योंकि इन्होंनें चीन के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन पर कोई गहरा असर नहीं डाला। जो शहरी

बूर्जुआ वर्ग उभरे उन्होंने अपने आपको उन आर्थिक; सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में लगाया जो ग्रामीण कुलीनों की गतिविधियों से बहुत भिन्न थीं; लेकिन वे भू-संपत्ति में अपने हित और लोक अधिकारियों के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों, दोनों के माध्यम से पुराने शासन के ढांचों से जुड़े रहे। 1911 की क्रांति ने उन्हें प्रसिद्धि और महत्ता दी थी। उनके नेता हमेशा अग्रिम पंक्ति में रहे। औद्योगीकरण के प्रणेताओं की आर्थिक सफलता का कारण असाधारण व्यक्तिगत गुण थे, जिनमें से अधिकांश उन्होंने संधिगत बंदरगाहों में विदेशियों के साथ अपने संपर्कों से प्राप्त किए थे। इन्हीं के कारण वे आधुनिक प्रौद्योगिकी और प्रबंध के महत्व को भी समझ पाए थे।

लेकिन, अधिकांश शहरी कुलीनों की अपनी अलग पहचान उनके राजनीतिक रुझान और सामाजिक भूमिका के कारण अधिक बनी, आधुनिक व्यापार में उनकी भागीदारी के कारण कम। 1911 के बाद, नौकरशाही संस्थाओं को नए अधिकारी तंत्र ने अपने हाथों में ले लिया। यह अधिकारी तंत्र उस संगठन की देन था, जिसमें प्रांतीय सभाओं, व्यापार मंडलों, शैक्षिक और कृषि संगठनों जैसे स्थानीय हितों का प्रतिनिधित्व था। यह सही है कि इसका टकराव युआन शिकाइ के केंद्रीकरण के प्रयासों, और क्षेत्रीय स्तर पर सैन्यवादियों की विरोधी महत्वाकांक्षाओं से हुआ। फिर भी, शहरी कुलीनों की शक्ति में बढ़ोत्तरी हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि नौकर तंत्र की नियुक्ति स्थानीय स्तर पर की जा रही थी। शहरी कुलीन वर्ग लोक अधिकारियों के हस्तक्षेप से, विदेशियों के अतिक्रमण से, और बाशिंदों के दावों से, अपने हितों की रक्षा करने में कामयाब रहा। इस तरह पुराने शासन का यह बूर्जुआ वर्ग चीनी समाज में एक स्थायी शक्ति के रूप में उभरा।

इस शहरी कुलीन वर्ग से न केवल वह व्यापारी वर्ग उभरा, जो औद्योगिक वृद्धि, उन्मुक्त उद्यम और आर्थिक तर्कसंगतता के प्रति प्रतिबद्ध था, बल्कि एक ऐसा आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग भी उभरा, जो उसी समय साथ-साथ आकार ले रहा था। त्साई युआन पे, हू शी और चेन तू शू जैसे व्यक्ति इसी कोटि के थे। उनकी अधिकांश शिक्षा विदेशों में हुई थी। अनेक व्यापारियों की तरह ही, वे भी युद्ध छिड़ने पर नए कौशल विचार और देशभक्तिपूर्ण उत्साह लेकर चीन लौटे थे। वे भी पुराने समाज से दूर हो गए थे और उन्होंने भी उन बंधनों को तोड़ दिया था, जिसके ज़रिए राज्य ने साहित्यकारों में से अधिकारी बना दिए थे और राजनीति को रूढ़िवादिता से जोड़ दिया था। साथ ही, उन्होंने व्यक्तित्व के लिए सम्मान पर आधारित एक नए स्वरूप की शिक्षा का भी प्रचार किया। इस बुद्धिजीवी वर्ग की उपस्थिति से नए बूर्जुआ वर्ग को काफी राहत मिली। इन दोनों वर्गों की एकजुटता से दोनों ही वर्ग मज़बूत हुए। शिक्षा को सुगम बनाने वाली कई परियोजनाओं की स्थापना व्यापारियों ने की। इसके बदले में बुद्धिजीवियों ने होनहार व्यापारियों को तकनीकी, प्रबंधन संबंधी और सामान्य शिक्षा प्रदान की। शिक्षा और तकनीकी कौशल और आधुनिक शिक्षा के बिना बूर्जुआ वर्ग अपना विस्तार नहीं कर सकते थे।

इसलिए, जब 1919 की चार मई की घटना के बाद से चार मई का आंदोलन तमाम चीनी शहरों में फैला तो सौदागर वर्ग और नए व्यापारी समुदाय ने उन छात्रों और बुद्धिजीवियों का साथ दिया, जो इस आंदोलन के मशाल वाहक या नेता थे। ये दोनों वर्ग राष्ट्रभक्ति से प्रेरित थे और वे जापानी साम्राज्यवाद और चीनी सरकार में जापानी साम्राज्यवाद के पिट्ठुओं के विरोध में एक दूसरे के और भी निकट आ गए। बुनियादी तौर पर क्योंकि दोनों ही वर्गों की पृष्ठभूमि एक ही थी, इसलिए उनका आपसी सहयोग और भी सुदृढ़ हुआ।

बोध प्रश्न 2

सही उत्तर बताइए :

1) अठारहवीं शताब्दी से चीन में शहरीकरण का कारण क्या रहा?

   क) राष्ट्रवाद

   ख) व्यापार

   ग) जलवायु में परिवर्तन

   घ) जनसंख्यात्मक परिवर्तन

2) उद्योगों और बूर्जुआ गतिविधियों में वृद्धि चीन के किस शहर में **सबसे अधिक हुई?**

   क) पीकिंग

   ख) नानकिंग

ग) शंघाई

घ) तराई

3) चीन में हुए शहरीकरण पर लगभग 10 पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

29.9 सारांश

चीन में विदेशी पूंजी निवेश की प्रकृति सीमित होते हुए भी, उसका प्रभाव औद्योगीकरण पर पड़ा। विदेशी पूंजी अधिकतर संधिगत बंदरगाहों के क्षेत्रों में लगी थी और इन्हीं स्थानों में और उनके आसपास के क्षेत्रों में नए चीनी बूर्जुआ वर्ग का उदय हुआ।

साम्राज्यिक चीन में सौदागर वैधानिक अयोग्यताओं और सामाजिक स्थिति का अभाव, इन दोनों के शिकार रहे थे। यहां तक कि अत्यधिक संपन्न सौदागरों की स्थिति भी भयानक थी, क्योंकि उनकी संपत्ति किसी भी समय जब्त की जा सकती थी। स्थितियों को अपने पक्ष में रखने के लिए सौदागर वर्ग को हमेशा अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत मित्रता बनाने का प्रयास करना पड़ता था। वे बहुधा अपने पुत्रों को इसलिए शिक्षा दिलाते थे कि वे लोक सेवा परीक्षा उत्तीर्ण करें और कुलीन वर्ग का हिस्सा बन जाएं। इससे एक मज़बूत, स्वाधीन सौदागर समुदाय सामने आया। संधिगत बंदरगाहों के मुक्त होने से सौदागरों को नए अवसर मिले। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में कुलीन वर्ग की स्थिति लोक सेवा परीक्षा समाप्त कर दिए जाने के कारण विशेषकर नष्ट हो गई, जिससे पहले कि कुलीन वर्ग को व्यापार में नए अवसर दिखाई पड़े। सौदागर वर्ग और कुलीन वर्ग के विलय से एक नया वर्ग, बूर्जुआ वर्ग, उभर कर सामने आया।

सन् 1911 की क्रांति में बूर्जुआ वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण, लेकिन हमेशा दोहरी रही। उन्होंने आवश्यक रूप से क्रांतिकारियों की विचारधारा के समर्थक न होते हुए भी उनका आर्थिक दृष्टि से साथ दिया। क्रांति के बाद के पहले दो वर्षों में, शासक बूर्जुआ वर्ग कानून और व्यवस्था के रख-रखाव को लेकर अत्यधिक चिंतित रहा, क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि उनका व्यापार हानिकर ढंग से प्रभावित हो। पहले, युआन शिकाइ ने सौदागरों को रियायतें दीं और उन्हें हर्जाना देने का वचन दिया, जिन्हें व्यापार में 1911 की घटनाओं के कारण हानि हुई थी। लेकिन वह कानून-व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति, और एक अस्थिर और अविवेकी राजनीतिक व्यवस्था के भय को कभी दूर नहीं कर पाया। अपने व्यापार को चालू रखने की खातिर उन्हें युआन को स्वीकृति देनी ही पड़ी, क्योंकि उसकी सैनिक शक्ति 1913 के सत्ता संघर्षों में महत्वपूर्ण रही थी। जैसे ही युआन को सैनिक तौर पर अपने शत्रुओं को समाप्त कर अपनी शक्ति मजबूत करने में कामयाबी मिली, उसने नई बनी उन प्रतिनिधि संस्थाओं को नष्ट करना शुरू कर दिया, जो अनेक औद्योगिक और अन्य संगठनों के लिए मंच का काम कर रही थीं।

बूर्जुआ वर्ग की वृद्धि को प्रोत्साहन देने वाला प्रथम विश्व युद्ध था। विदेशी होड़ कम हुई तो, चीनी उद्यमियों ने नए उद्यमों को अपने हाथों में ले लिया। कपड़ा मिलों, चीनी मिलों, आदि का तेजी से विस्तार हुआ। प्राथमिक उत्पादनों और दूसरे कच्चे मालों की मांग बढ़ गई। फिर भी, इस उछाल ने चीनियों को वास्तव में औद्योगिक दृष्टि से उन्नत होने में

मदद नहीं की क्योंकि अर्ध-उपनिवेशीय अर्थव्यवस्था उस भारी मशीनरी का आयात करने में सक्षम नहीं थीं। जिसके जरिए व्यापक स्तर पर औद्योगीकरण को सुगम किया जा सकता था।

व्यापार और समृद्धि में वृद्धि के साथ, शहरीकरण भी हुआ। शहरों की आबादी बढ़ी। बूर्जुआ वर्ग और मज़दूरों के वर्ग बिल्कुल स्पष्ट हो गए। बेशक, नया सामाजिक गठन और चीन की समूची सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर उसका प्रभाव बहुत सीमित रहा। चीन एक ग्रामीण किसान समाज ही बना रहा।

शहरीकरण, उद्यम और समृद्धि ने इस नए बूर्जुआ वर्ग से दो नए सामाजिक वर्ग बना दिए—पहला, शहरी गणमान्य व्यक्ति जिन्होंने प्रशासन के कामों को संभाला, और दूसरा, बुद्धिजीवी। ये दोनों वर्ग विचारधारा के बंधनों से आपस में बंधे रहे। यह विचारधारा थी : व्यक्तिवाद में आस्था, उन्मुक्त बाज़ार व्यवस्था, प्रतिपादन और सृजनात्मकता। इस नए बूर्जुआ वर्ग की एकता का अपेक्षाकृत बड़ा कारण रहा राष्ट्रभक्ति का बोध और वर्गीय एकजुटता। इसलिए, चार मई के आंदोलन में, उन्होंने साथ-साथ संघर्ष किया।

29.10 शब्दावली

मन्दारिन : चीनी साम्राज्य के तहत उच्चाधिकारी।

बूर्जुआ वर्ग : कुलीन तंत्र या अत्यधिक धनी और मज़दूर वर्ग या सर्वहारा के बीच का सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार, पूंजीपतियों का सामाजिक वर्ग।

कम्प्रेडर : पूर्ववर्ती चीन में एक स्थानीय एजेंट जो विदेशी व्यापार के लिए नियुक्त होता था, और जिसके पास स्वदेशी मज़दूरों का प्रभार होता था।

पूंजी निवेश : आय या मुनाफा कमाने के उद्देश्य से व्यापार आदि में धन लगाना।

पूर्वेक्षण : किसी खनिज की तलाश करना (इसका संबंध उत्खनन से है)।

29.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ख

2) चीन में 1911 की क्रांति के बाद बूर्जुआ वर्ग ने अपनी उपस्थिति का आभास कराया। शहरीकरण और आर्थिक गतिविधियों ने चीन में बूर्जुआ वर्ग के एक मज़बूत शक्ति के रूप में उदय होने के लिए पर्याप्त सामाजिक आधार तैयार कर दिया। देखिए भाग 29.3

3) ग

4) चीन के राजनीतिक मामलों में सौदागर वर्ग की भूमिका सीमित रही। वे व्यवस्था का अंग बन गए। उनका शामिल होना कुछ ही समय के लिए था। देखिए भाग 29.4

बोध प्रश्न 2

1) घ

2) ग

3) व्यापार और वाणिज्य के विकास ने चीन के शहरी केंद्रों के लोगों को काफी बढ़ावा दिया। आर्थिक उछाल चीन में शहरीकरण के उदय का प्रमुख कारण थी।

इकाई 30 राष्ट्रवाद का उदय

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य
30.1 प्रस्तावना
30.2 पृष्ठभूमि
30.3 राष्ट्रवाद का उत्थान
30.3.1 साम्राज्यवाद का प्रतिरोध
30.3.2 राष्ट्रवाद और राष्ट्र-निर्माण
30.3.3 मांचू-विरोधी भावनाएँ
30.4 राष्ट्रवाद : क्रांति के उपरांत के प्रारंभिक वर्ष
30.4.1 शांतुंग समस्या और चार मई का आंदोलन
30.4.2 बौद्धिक प्रतिक्रिया और जन-विरोध
30.4.3 युद्ध सामंतवाद और चीन की एकता को खतरा
30.4.4 चीनी राष्ट्रवाद के अतिरिक्त प्रभाव
30.5 सारांश
30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

30.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह व्याख्या कर पाएंगे कि :

- चीन में आधुनिक राष्ट्रवाद की भावना का उदय किस प्रकार हुआ,
- बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के चीनी राष्ट्रवाद के क्या तत्व थे,
- चीन में राष्ट्रवादी और राष्ट्रभक्तिपूर्ण आंदोलन भड़काने में जापानी साम्राज्यवाद ने क्या भूमिका निभाई, और
- इस पुनरूद्धारित राष्ट्रवाद के क्या परिणाम रहे।

30.1 प्रस्तावना

इस इकाई में चीन में राष्ट्रवाद के विकास में योगदान करने वाले कारकों की व्याख्या की गई है। हम पहले के खंडों में इस बात पर चर्चा कर ही चुके हैं कि चीन ने साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों किस तरह संकट झेले। इसके परिणामस्वरूप विदेश-विरोधी और मांचू-विरोधी भावनाएँ उभरीं। इससे राष्ट्रवादी भावनाओं को मज़बूती मिली। मांचू शासन को 1911 की क्रांति में उखाड़ फेंका गया। लेकिन विदेशियों के हाथों होने वाले शोषण की समस्या और प्रतिद्वंद्वी गुट और सत्ता के लिए होने वाले संघर्ष अब भी बने हुए थे। इसी स्थिति में राष्ट्रवादी भावनाओं ने एक निश्चित आकार लेना शुरू किया और वे और भी मज़बूत हो गईं। इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर चर्चा की गई है।

30.2 पृष्ठभूमि

"राष्ट्रवाद" का विचार या "राष्ट्रत्व" अथवा "राष्ट्र-राज्य" की अवधारणाओं ने चीनी जनता की चिंतन प्रक्रिया में अपना स्थान यूरोप की अपेक्षा कहीं बाद में बनाया। वास्तव में, पश्चिम के साथ चीनियों का परिचय बढ़ने के साथ ये विचार और अवधारणाएँ स्पष्ट और निश्चित हो गईं। शताब्दियों तक विश्व में अपने स्थान को लेकर अथवा कथित चीनी विश्व व्यवस्था के विषय में चीनियों का दृष्टिकोण शेष विश्व के दृष्टिकोण से मेल नहीं

खाता था। फिर भी, यह दृष्टिकोण शताब्दियों तक अक्षुण्ण बना रहा क्योंकि चीनी लोग शेष विश्व से कट कर रहते थे। व्यापार के अतिरिक्त चीनियों ने भौगोलिक रूप से दूर देशों के साथ और कोई व्यवहार नहीं रखा। अपने परिक्षेत्र में आने वाले समाजों के साथ चीनी राज्य का संबंध केवल "नज़राने" या कर का था। इस व्यवस्था के तहत छोटे राज्य चीनी सम्राट को नज़राने के तौर पर तमाम किस्म के उपहार देते थे, जिसके बदले में चीनी साम्राज्य उन पर आधिपत्य नहीं करता था। चीनी दृष्टिकोण से यह और सब पर चीनी साम्राज्य और सम्राट की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति थी।

परंपरा से चीनी लोग विश्व को जिस रूप में देखते थे, उसमें चीन, अर्थात् **चुंग-कुओ** या मध्यवर्ती राज्य और चीन के परिक्षेत्र में आने वाले दूसरे खानाबदोश आते थे। दूसरे शब्दों में, और अनेक सभ्य प्रजातियों की तरह, चीनी भी यह विश्वास करते थे कि वे पृथ्वी और मानव आवास के केंद्र थे। सम्राट "स्वर्ग का पुत्र" था, जो न केवल चीनी जनता से बल्कि चीनी भूमि के आसपास रहने वाले तमाम लोगों से भी श्रेष्ठ था। एक स्पष्ट सीमा वाले राष्ट्र-राज्य की धारणा चीनियों के लिए तब जाकर अस्तित्व में आई, जब अंतर्राष्ट्रीय कानून की पश्चिम की अवधारणाओं को उन पर लागू किया गया, बल्कि थोपा गया। पश्चिमी प्रभाव के परिणामस्वरूप चीन को जो आघात झेलने पड़े, उनमें से एक विश्व व्यवस्था के विषय में उनके विचारों का पूरी तौर पर बदलना भी था। चीनियों को एक स्पष्ट सीमा वाले, स्वाधीन राज्य की यूरोपीय धारणा को स्वीकार करना ही पड़ा।

चीन को प्रारंभ में यूरोपीय विश्व व्यवस्था को स्वीकार करने में जो कठिनाई हुई, उसे देखते हुए जॉन किंग फेअर बैंक, जैसे अनेक विद्वानों ने चीन को चीन-केंद्रित राष्ट्र की संज्ञा दे दी। इसका अर्थ यह हुआ कि चीनी एक ओर विदेश-भय के शिकार थे और दूसरी ओर स्वयं को अन्य देशों और सभ्यताओं से श्रेष्ठ समझते थे। लेकिन, इस दृष्टिकोण को दूसरे विद्वानों ने चुनौती दी है। इसके विपक्ष में प्रमाण देते हुए ये विद्वान कहते हैं कि यदि चीनी लोग इतने ही अंध-राष्ट्रभक्त थे जो उन्होंने बौद्ध धर्म को कैसे अपना लिया और कैसे अपने अनुकूल ढाल लिया, जबकि यह एक विदेशी धर्म था। भारत और चीन के बीच पारंपरिक संबंधों में चीनियों के चीन-केंद्रित होने का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

बहस को एक तरफ रख दिया जाए तो यह बात सामने आती है कि चीनी राष्ट्रत्व की भावना ने चीनी राष्ट्र को तब अपनी जद में लिया जब 1840 के अफीम युद्ध में इंगलैंड के हाथों उसकी हार हो गई। राष्ट्रवाद उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक चीन के राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया था। आगे के अनुच्छेदों में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि चीन में राष्ट्रवाद का उदय कैसे हुआ, इसने अपने आपको किस प्रकार अभिव्यक्त किया और इसका प्रसार होने के क्या परिणाम हुए। पृष्ठभूमि के तौर पर प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी के चीनी इतिहास के जाने-माने विद्वान अमेरिकी चीनविद् मैरी सी. राइट के निष्कर्षों को भी लिया गया है।

30.3 राष्ट्रवाद का उत्थान

चीन में राष्ट्रवाद के तीन विभिन्न लेकिन परस्पर संबंधित तत्व रहे :

i) पहले, राष्ट्रवाद का अर्थ होता था साम्राज्यवाद का विरोध और उससे संघर्ष करना।

ii) दूसरे, राष्ट्रवाद एक ऐसे मज़बूत, आधुनिक और केंद्र-केंद्रित राष्ट्र-राज्य की मांग करता था जो न केवल साम्राज्यवाद को पीछे धकेल दे, बल्कि देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में उसकी नई आकांक्षाओं को आगे भी बढ़ाए।

iii) तीसरे, राष्ट्रवाद का अर्थ होता था मांचू (चिंग) वंश को उखाड़ फेंकना।

इन तीन तत्वों में से, साम्राज्यवाद का विरोध निश्चित रूप से सबसे महत्वपूर्ण था।

30.3.1 साम्राज्यवाद का प्रतिरोध

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, "प्रभुसत्ता के अधिकारों की बहाली" प्रत्येक प्रबुद्ध चीनी का आदर्श वाक्य बन गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक "राष्ट्रीय प्रभुसत्ता" और "प्रभुसत्ता के अधिकार" जैसे पश्चिमी शब्द सरकरी दस्तावेज़ों में आ गए थे। कुछ ही

वर्षों में वे चीनी शब्द भंडार के अभिन्न अंग बन गए। अफीम युद्ध के समय से, चीन पर बाहरी आक्रमण होते रहे। प्रत्येक युद्ध का अंत एक असमान संधि के साथ हुआ। चीन को विजेता ताकतों को हर्जाने; विशेषाधिकार और क्षेत्रीय रियायतें तक देनी पड़ीं। 1894-95 के चीन-जापान युद्ध ने चीन की कमज़ोरी का पूरा पर्दाफाश कर दिया, वह किसी को किसी बात के लिए भी इंकार नहीं कर सका। इस युद्ध का तुरंतगामी परिणाम "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" के रूप में सामने आया। बॉक्सर विद्रोह को कुचलने के आठ राष्ट्रों के अभियान के बाद चीन में कुछ साम्राज्यवादी ताकतों की निरंकुश लूटमार देखने में आती है। चीन के अतिक्रमण रोक पाने में असमर्थ होने के बावजूद, इस समय देश को मजबूत करने और तमाम हाथ से निकली चीज़ों को फिर से अपने हाथ में लेने के बारे में चीन में कहीं अधिक दृढ़ संकल्प की स्थिति थी। अवमानना या मान-हानि की स्थिति के साठ वर्षों का हिसाब तो चुकता होना ही था।

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में चीनी अधिकारियों ने अंग्रेजों पर रोक लगाने के लिए तिब्बत पर केवल आधिपत्य का ही नहीं बल्कि अपनी प्रभुसत्ता या सर्वसत्ता का भी दावा पेश किया। रूस ने मंचूरिया पर कब्ज़ा कर लिया था, लेकिन 1905 में जापान के हाथों हार जाने के बाद इसकी ताकत कम पड़ गई। चीनियों ने समय नहीं गंवाया। उन्होंने मंचूरिया में प्रवास की गति बढ़ा दी और वहां प्रशासनिक तंत्र की फिर से संरचना की। उनका ध्येय जापान के विस्तार को रोकना था। रूस ने क्योंकि अपना ध्यान अब मंगोलिया पर लगा लिया था, चीन ने इसकी प्रतिक्रिया में अपने इस अधीनस्थ राज्य पर पूरी प्रभुसत्ता जमा दी। यह उसने इस प्रकार किया :

- मंगोलिया में चीनियों के प्रवास को बढ़ावा देकर,
- स्थानीय अधिकारियों को रूसी प्रभाव को समाप्त करने का आदेश देकर,
- योग्य और आधुनिक मानसिकता वाले अधिकारियों के अधीन एक चीनी किस्म का प्रशासन कायम करके, और
- चीनी छावनी की सेनाओं को बाहर भेजकर।

चीनी सरकार ने ये उपाय इस व्यापक भय के कारण किए थे कि चीन का बंटवारा होने की आशंका थी।

आम जनता में भी पश्चिम और जापान के मंसूबों की तीखी प्रतिक्रिया हुई। स्थानीय और राष्ट्रीय समाचार-पत्रों में इन मुद्दों पर चर्चा हुई। अनेक जगहों पर प्रदर्शन और सभाओं के माध्यम से विदेशी ताकतों के मंसूबों की निंदा की गई। गानों और नाटकों के माध्यम से भारत में अंग्रेज़ों और हिंद-चीन में फ्रांसीसियों के अत्याचारों को दिखाया गया। इस तरह के गानों और नाटकों की प्रस्तुतियाँ दक्षिण चीन में आम हो गईं। इश्तिहारों और दूसरे प्रचार माध्यमों से चीनी राष्ट्रवाद के संदेश का प्रसार किया गया।

अधिक जबरदस्त विरोध "बहिष्कार अधिनियम" के विरोध में 1905 का अमेरिका-विरोधी बहिष्कार और 1908 में **तात्सू मारू** कांड को लेकर होने वाला जापान-विरोधी बहिष्कार थे। इन बहिष्कारों ने यह दिखा दिया कि चीनी सौदागर और मज़दूर अपने राष्ट्रवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भौतिक त्याग करने को भी तैयार थे। विशेष विदेशी अधिकारों और क्षेत्रीयता की समाप्ति क्रांतिकारियों, सुधारकों और मांचू सरकार की मांग थी।

30.3.2 राष्ट्रवाद और राष्ट्र-निर्माण

राष्ट्रवाद केवल साम्राज्यवाद का विरोध ही नहीं था, बल्कि इसमें प्रांतवाद और क्षेत्रवाद पर विजय भी निहित थी। पतनशील मांचू शासन ने जो सुधार के प्रयास किए उनके एक अंग के रूप में चीन में सुकियांग को छोड़कर और सभी जगहों पर प्रांतीय सभाएं कायम कीं गईं। ये सभाएँ वाद-विवाद और विचार-विमर्श का मंच बन गईं और इन्होंने राष्ट्रभक्त लोगों को एक जगह पर लाने का काम किया। एक जाने-माने लेखक के अनुसार, इस प्रांतवाद ने "राष्ट्रवाद के उदय को सुगम बनाया"। अनेक स्थानीय मुद्दों पर जो विचार-विमर्श चला उससे साम्राज्यवाद के प्रतिरोध से संबंधित मुद्दों की ओर ध्यान देने की स्थिति बनी। उदाहरण के लिए, क्वांगतुंग प्रांत के स्वशासन संघ ने जब एक अंग्रेज़ी नदी गश्ती दल के आने पर आपत्ति की तो उससे समूची संधि व्यवस्था को चुनौती देने की स्थिति बनी। इसी तरह, स्थानीय सौदागरों की अपने व्यापार को फैलाने की इच्छा ने एक

समान राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग को जन्म दिया। राष्ट्रवादी भावना ने राष्ट्र-निर्माण की आवश्यकता को जन्म दिया, जिससे यह मांग बनी कि चीन एक एकीकृत, मज़बूत राष्ट्र बन जाए।

30.3.3 मांचू-विरोधी भावनाएँ

सन् 1644 से चीन पर राज करने वाला चिंग वंश प्रजाति या नस्ल की दृष्टि से उन हान चीनियों से भिन्न था जो देश की आबादी का 4 प्रतिशत थे। चिंग वंश के लोग मंचूरिया प्रांत की मांचू प्रजाति के थे जो कि संख्या की दृष्टि से नगण्य थे। वंश कमज़ोर होने लगा तो वंश-विरोधी भावनाएँ जातीय अर्थों में अभिव्यक्त की जाने लगीं, जबकि क्रांतिकारी राष्ट्रवाद ने चीन को अपनी जद में लिया तो इसका एक तत्व था विदेशी मांचू राज के प्रति चीनी जातीय विरोध, क्योंकि वह घरेलू नीतियों में तो प्रतिक्रियावादी था और विदेशी मामलों में कायरतापूर्ण। अनेक हान चीनियों का विश्वास था कि देश पर क्योंकि एक गैर-हान वंश राज कर रहा था इसलिए उसमें हान लोगों की इच्छा और जुनून नहीं था, इसलिए वह इतनी दयनीयता के साथ आधिपत्य स्वीकार कर लेता था।

यह कहना सही न होगा कि मांचू शासक दूसरों से पूरी तौर पर कटे रहे। इसके विपरीत, चिंग दरबार में बड़ी संख्या में हान चीनी शामिल थे और साम्राज्यवाद को दूर-दराज के क्षेत्रों से जोड़ने वाली देश की लोक सेवा में हान चीनियों का बोलबाला था। चीन पर कथित चीनी मांचू कुलीन वर्ग का राज था। इस गुट में प्रतिक्रियावादी भी थे और सुधारक भी और प्रचंड साम्राज्यवाद विरोधी भी थे तो समझौतावादी भी। लेकिन, आम विश्वास यह भी था कि सम्राट व्यवस्था अपने आप में अपर्याप्त थी, इसलिए जातीय मुद्दे पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर नहीं ही देना चाहिए। एक साधारण-सी मांचू-विरोधी भावना थी तो लेकिन यह कुछ छोटे भौगोलिक क्षेत्रों और क्रांतिकारी संगठनों की उन शाखाओं में ही अधिक मुखर थी जो सामाजिक विप्लव की मांग नहीं करते थे। इसी तरह, कुछ गुप्त संघों (Secret Societies) और सुमद्र पारीय चीनी समुदायों ने यह नारा लगाया : "मांचुओं को उखाड़ फेंको, चीनियों को वापस लाओ"।

मांचू-विरोधी भावना की तीव्रता अलग-अलग समय और अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न रही। अनेक मामलों में इस नकारात्मक धारणा का उदय पहले राष्ट्रत्व की अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक भावना में रूपांतरित होने के लिए हुआ। एक बात निश्चित है कि मांचू-विरोध ने चीनियों को इतना एकजुट नहीं किया, जितना कि साम्राज्यवाद-विरोध ने।

बोध प्रश्न 1

1) चीनी विश्व व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? लगभग 10 पंक्तियों में समझाइए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) चीन में राष्ट्रवाद का क्या अर्थ होता था? लगभग 10 पंक्तियों में इसकी विभिन्न विवेचनाएँ लिखिये।

....
....
....

....

....

....

....

....

....

....

30.4 राष्ट्रवाद : क्रांति के उपरांत के प्रारंभिक वर्ष

सन् 1911 में चिंग वंश के पतन के साथ ही चीनी राष्ट्रवाद का मांचू-विरोधी तत्व स्पष्ट तौर पर निरर्थक हो गया। लेकिन उसके दो और तत्व-- साम्राज्यवाद विरोध और राष्ट्र-निर्माण की इच्छा-- और भी प्रमुख हो गए। उत्तर-चिंग काल के प्रारंभिक वर्षों में चीन में दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियां थीं :

- एक तो थे सैन्यवादी; युआन शिकाइ राजनीति में सक्रिय, सेना का प्रमुख व्यक्ति था, और
- दूसरे वह गुप्त संघ (Secret Society) था जो बाद में राजनीतिक दल--कुओमिंतांग बन गया।

इन दो संगठित राजनीतिक गुटों के अतिरिक्त कुछ क्रांतिकारी संगठन भी थे, जिनका राष्ट्र की राजनीति में कोई प्रभाव नहीं था और अनेक आधुनिक बुद्धिजीवी थे। वे पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित होते हुए भी घोर राष्ट्रवादी थे। राष्ट्रवाद की इस लहर को सत्ता में बैठे लोग अनदेखा नहीं कर सके, विशेष तौर पर 1916 से अर्थात् युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद के दौर में यही स्थिति रही। 1917 आते-आते चीन विश्व युद्ध में कूद चुका था और उसे ये आशाजनक संकेत मिल चुके थे कि यदि युद्ध में उसके पक्ष की विजय हुई तो उसे बड़े राष्ट्रीय लाभ दिए जाएंगे। जर्मन मंत्री रींश (Reinsch) के साथ शुरुआती दौर की सौदेबाज़ी में न केवल ऋणों के बारे में, बल्कि बॉक्सर विद्रोह से संबंधित हर्जानों के बारे में भी विचार-विमर्श हुआ। जापान के साथ भी बातचीत का स्वरूप इस प्रकार का रखा गया कि लाभ चीन को ही मिले। इसमें मंचूरिया और बाहरी मंगोलिया में चीन की अपनी स्थिति को फिर से दावे के साथ रखने की इच्छा भी शामिल थी। दूसरा लक्ष्य शायद यह था कि युद्ध में मित्र राष्ट्रों के साथी जापान की ओर से आने वाले दबावों को ढील दी जाए। चीन की स्पष्ट इच्छा यह थी कि राष्ट्रों के समुदाय में उसे बराबरी का दर्जा दिया जाए।

30.4.1 शांतुंग समस्या और चार मई का आंदोलन

विश्व युद्ध के बाद चीन की सबसे पहली अपेक्षा यह थी कि पहले जर्मनी और ऑस्ट्रिया को "असमान संधियों" के तहत जो अधिकार और विशेषाधिकार दिए गए थे उन्हें वह वापस ले लेगा। विशेष तौर पर, वह चाहता था कि जर्मनी के "प्रभाव क्षेत्र" शांतुंग पर अपनी सर्वसत्ता बहाल कर ले। 1898 के पट्टे के अनुसार शांतुंग में जर्मनी के अधिकार 99 वर्षों के लिये थे। प्रभुसत्ता अस्थाई तौर पर जर्मनी को दी तो हुई थी लेकिन उस पर चीन का अधिकार आरक्षित था। इसलिए तर्क की कसौटी पर कोई भी उत्तराधिकारी ताकत जर्मनी से अधिक अधिकारों को हासिल नहीं कर सकती थी। इसके अतिरिक्त, मूल समझौते में यह उल्लेख था कि जर्मनी अपने पट्टे का अधिकार किसी और ताकत के हाथ में नहीं दे सकता, और जर्मनी द्वारा इस अधिकार को छोड़े जाने की स्थिति में सारे अधिकार कानूनन प्रभुसत्ताधारी शक्ति चीन को ही वापस हो जाएंगे।

जापान ने जब युआन शिकाइ की सरकार पर इक्कीस मांगे थोपीं तो इस कानूनी स्थिति में एक नया तत्व शामिल हो गया; एक औपचारिक संधि में चीन ने यह वचन दिया था कि जर्मनी और जापान के बीच शांतुंग में जर्मनी के अधिकारों के निपटारे को लेकर जो भी सहमति होगी उसे चीन स्वीकार करेगा। चीनियों ने इसका विरोध किया कि यह समझौता चीन पर जबरन थोपा गया था और इसलिए यह आवश्यक नहीं था कि उसे माना ही जाए। अंतर्राष्ट्रीय कानून में, यह समझौता बिल्कुल भी वैध नहीं था, यद्यपि 1915 में

अमेरिकी विदेश मंत्री ब्रायन ने यह इशारा कर दिया था कि अमेरिका जापान के विरूद्ध चीन के साथ था। राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने भी अपने भाषणों में कह दिया था कि शांति के लिए होने वाली बातचीत में क्षेत्र से संबंधित समझौतों में आबादियों के हितों को ध्यान में रखा जाएगा और यह केवल शत्रु ताकतों के बीच कोरा समायोजन या समझौता नहीं होगा। स्वाभाविक था, चीन ने यह आशा बांधी कि शांति सम्मेलन में अमेरिका शांतुंग प्रायद्वीप की बहाली के चीन के दावे का समर्थन करेगा। जब 1919 में पेरिस में शांति सम्मेलन शुरू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप अंत में वर्साय की संधि हुई तो जापानियों को यह विश्वास हो चला कि शांतुंग की प्रभुसत्ता उनके हाथों में दे दी जाएगी। उन्होंने यह माना कि शांतुंग की स्थिति की पुष्टि केवल 1915 के चीन-जापान समझौते ने ही नहीं, बल्कि 1917 के अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और इतालवी समझौते ने भी कर दी थी।

जनवरी के अंतिम दिनों में शांतुंग की समस्या सामने आई। जापानी इस प्रायद्वीप की मांग कर रहे थे और चीन उसे नकार रहा था। जापानी प्रतिनिधिमंडल ने सम्मेलन में फ्रांस, इंगलैंड और इटली की ओर से जापान को गुप्त रूप से दिए गए वचनों के प्रमाण रखे और इससे भी अधिक महत्व के वे दस्तावेज़ रखे जिनमें चीनी सरकार ने जापान को गुप्त आश्वासन दिए थे। पीकिंग सरकार ने एक ऐसे गुप्त समझौते पर हस्ताक्षर किए थे, जिससे इस बात की पुष्टि होती थी कि चीन को शांतुंग प्रांत में दो नए रेल पथों की वित्त व्यवस्था, निर्माण और संयुक्त कार्यों के जापान के प्रस्ताव मंजूर थे। इसका परिणाम यह हुआ कि इन गुप्त समझौतों और वचनों की बात सामने आते ही चीनियों का पक्ष शुरुआती दौर में ही कमज़ोर और पूर्वग्रह से ग्रस्त पड़ गया।

अप्रैल में, जब बातचीत चल रही थी, चीन ने सम्मेलन में दो स्मरण पत्र पेश किए। एक में मई 1915 की संधि और जापान के साथ उससे संबंधित समझौते को रद्द करने की मांग थी। दूसरे में ये प्रस्ताव थे :

1) प्रभाव या हित-क्षेत्रों को छोड़ना,
2) विदेशी सेनाओं और पुलिस की वापसी,
3) विदेशी डाकघरों और तार एजेंसियों को हटाना,
4) क्षेत्रातीत अधिकार क्षेत्र की समाप्ति,
5) पट्टे वाले क्षेत्रों को छोड़ना,
6) चीन को विदेशी रियायती क्षेत्रों और बस्तियों की वापसी, और
7) चीन को शुल्क दरों की स्वायत्ता वापस करना।

दूसरे शब्दों में, चीन अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से यह मांग कर रहा था कि असमान संधियों को यदि पूरी तौर पर समाप्त नहीं किया जाता तो कम से कम उन्हें सरल किया जाए। लेकिन सम्मेलन ने इन दोनों ही स्मरण पत्रों को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि ये उसके संदर्भ नियमों के बाहर थे। फिर भी, इन मांगों में चीन में उठी राष्ट्रवाद की तेज़ लहर से बनने वाली चीनी गरिमा की चिंता दिखाई देती थी।

अप्रैल 19, 1919 को जब अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, इटली और जापान के विदेश मंत्रियों की परिषद् के सामने शांतुंग का मसला लाया गया तो अमेरिकी प्रतिनिधि मंडल ने यह सुझाव दिया कि शांतुंग के अधिकार पहले इन पाँचों ताकतों के हाथों में दिए जाएं, और ये ताकतें अंत में इन अधिकारों को चीन को वापस कर देंगी। जापान ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। इंगलैंड, फ्रांस और इटली जापान का समर्थन करने को वचनबद्ध थे। अमेरिका भी अपने सुझाव पर जम नहीं पाया। इसका एक कारण यह था कि वह यूरोपीय मित्र राष्ट्रों से टकराव नहीं चाहता था, और एक कारण यह था कि वह इंगलैंड और इटली के साथ साइबेरिया में फसा था। अंत में निर्णय यह हुआ कि शांतुंग में जर्मनी के पास जो भी अधिकार हैं, वें सब जापान को दे दिए जाएं। यह एक ओर तो चीन के लिए लज्जा की बात थी, पर इससे चीन में राष्ट्रवादी भावनाओं को मज़बूती मिली।

30.4.2 बौद्धिक प्रतिक्रिया और जन-विरोध

इक्कीस मांगों के बाद से चीन के बौद्धिक वातावरण में काफी बदलाव आया। 1915 से नए विचारों और विश्वासों की आंधी-सी बड़े शहरी केंद्रों में आई, इन पर हमने इकाई 28 में चर्चा की है।

नए बौद्धिक वातावरण ने एक बड़ी घटना की पृष्ठभूमि तैयार की। जब से पेरिस में जनवरी में शांतुंग का मुद्दा उठा था, मुखर और राजनीतिक रूप से जागरूक जनता ने इस मामले में बहुत दिलचस्पी लेंनी शुरू कर दी थी। शांतुंग को लेकर हुई सौदेबाजी में एक न्यायोचित शांति समझौते का उल्लंघन हुआ था, इसमें चीनी युवाओं की नई राष्ट्रवादी भावना का भी दमन हुआ था। अप्रैल 30, 1919 को पेरिस में जो निर्णय लिया गया उससे चीन में एक विस्फोटक स्थिति बनी रही जिसे चार मई के आंदोलन के नाम से जाना गया। इस आंदोलन का नेतृत्व छात्रों और बुद्धिजीवियों के हाथों में था। इस पर इकाई 27 और इकाई 28 में चर्चा की गई है।

चार मई को, दोपहर के थोड़ी देर बाद, तेरह संस्थाओं के कोई तीन हज़ार छात्र तियानान मेन चौक पर जमा हुए। वहाँ से उन्होंने स्थानीय पुलिस की चेतावनी के बावजूद लिगेशन (दूतावास) भवनों की ओर कूच कर दिया। संतरियों ने उन्हें अंदर जाने नहीं दिया। छात्र फिर दूसरी ओर मुड़ गए। उनका नारा था "चलो गद्दार के घर"। गद्दार से उनका आशय प्रधानमंत्री थान ची जुई और उसके भ्रष्ट और सिद्धांतहीन साथियों से था। छात्रों ने उनमें से कई के आवास पर हमले किए। उन्होंने उनमें से एक के घर को आग लगा दी और एक को निर्ममता से पीटा। एक और अधिकारी अपनी जान बचाकर दूतावास में घुस गया था, उसने उसी दिन त्यागपत्र दे दिया।

इस घटना ने विरोध के एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के उत्प्रेरक का काम किया। यह आंदोलन एक लंबे समय से फूटने की तैयारी में था। इसके तुरंत बाद अनेक छात्रों ने प्रदर्शनों, हड़तालों, कामबंद और एक जापान-विरोधी बहिष्कार आंदोलन का आयोजन शुरू कर दिया। इसमें सौदागरों, व्यापारियों और चीनी समाज के निम्न मध्यम वर्ग के लोगों ने छात्रों का साथ दिया। उन्होंने मिल कर यह मांग की कि पेरिस गए चीनी प्रतिनिधिमंडल को यह निर्देश दिया जाए कि वह शांति संधि पर हस्ताक्षर न करे। सरकार ने जुलूसों, भाषणों और संबंधित साहित्य के वितरण पर रोक लगा दी, लेकिन वह इस लहर को रोक नहीं पाई। तीन जून को पीकिंग में एक विराट प्रदर्शन हुआ, जिसमें एक हज़ार छात्रों को गिरफ्तार किया गया। पाँच जून को छात्रों ने तीन अधिकारियों को निकालने की मांग की, जो कथित तौर पर जापान समर्थक थे। अगले दिन गिरफ्तार छात्रों को रिहा कर दिया गया। शासन ने तीन दोषी अधिकारियों को भी निकाल दिया, और 12 जून को पूरे मंत्रिमंडल ने त्यागपत्र दे दिया।

पेरिस में शांति संधि पर हस्ताक्षर करने का दिन जैसे-जैसे पास आता गया, चीनी प्रतिनिधिमंडल के पास कोई सही या स्पष्ट निर्देश नहीं रह गए। सम्मेलन ने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया कि संधि में संशोधन के साथ हस्ताक्षर किए जाएं। अंत में, जब 28 जून को वर्साय की संधि सम्पन्न हुई तो अब तक बिना किसी आधिकारिक निर्देश वाले प्रतिनिधिमंडल ने अपने आपको अलग रखा। 10 जुलाई को जाकर ही, जब चीन की सरकार ने चीन की स्थिति के प्रति विश्व की सहानुभूति और देश के अंदर विरोध की मज़बूती का आकलन कर लिया तो अपने-अपने प्रतिनिधिमंडल को इस आशय के आदेश जारी किए कि वह संधि पर हस्ताक्षर न करे।

जून 1919 की अशांतिपूर्ण घटनाओं के फलस्वरूप पूरे चीन में अनेक संगठन बन गए, जिसकी अधिकांश प्रेरणा पीकिंग विश्वविद्यालय ने दी। जून के मध्य में शंघाई में एक चीनी छात्र संघ की स्थापना हो गई। एक और गुट "नव युवा समाज" था, जिसमें पीकिंग के शैक्षिक वर्ग के सदस्य थे। शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों से राष्ट्रवाद की जो भावना प्रधान बनी हुई थी उसे चार मई के आंदोलन से जबरदस्त गति मिली। इसीलिए, इस आंदोलन को आधुनिक चीनी राष्ट्रवाद के उदय का श्रेय जाता है।

चार मई के आंदोलन के बाद से राष्ट्रवाद ने पुराने किस्म के "समुद्री शैतानों" और "झबरों (या बाल वालों)" (चीनियों द्वारा विद्रोहियों की पहचान) पर केंद्रित, विदेशवाद से नाता तोड़ लिया। अब यह आधुनिक राष्ट्रवाद की एक नई भावना की शुरूआत थी जिसका रूझान विदेशी-विरोधी से साम्राज्यवाद विरोधी की ओर था। अधिकांश एशियाई देशों में ये आवाज़ें उठने लगीं कि यूरोप और अमेरिका "गैर-श्वेतों" के प्रति भेदभाव को छोड़ें और राष्ट्रों की समानता और उन राष्ट्रों के नागरिकों के साथ समानता के व्यवहार के सिद्धांत को स्वीकार करें। हम पहले (इकाई 27 में) चीन की एकता पर, युद्ध सामंतवाद के खतरे पर भी चर्चा कर चुके हैं।

30.4.3 युद्ध सामंतवाद और चीन की एकता को खतरा

युआन शिकाइ की मृत्यु के बाद चीन में अस्थिरता और राजनीतिक फूट की स्थिति प्रबल रही। कई वर्षों तक दक्षिण चीन की अलग सरकार थी। पीकिंग सरकार के साथ उसे एक करने के प्रयास सफल नहीं हुए। युद्ध सामंतों के कई गुट अलग-अलग समयों पर पीकिंग सरकार पर हावी रहे। कुछ और प्रांत और प्रांतों के हिस्से भी जब-जब युद्ध सामंतों के कब्जे में रहे (देखिए इकाई 27)। इस आंतरिक कलह ने चीन की एकता को गंभीर रूप से खतरे में डाल दिया। दिलचस्प बात यह है कि सैन्यवादियों समेत ऐसे लोग जिनका राजनीतिक क्षेत्र में प्रभाव था हमेशा चीन के एकीकरण का समर्थन करते थे, जबकि उनमें से कोई भी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी निजी सत्ता को छोड़ने को तैयार नहीं था। क्षेत्रवाद और प्रांतवाद चीनी राष्ट्रवाद की राह का रोड़ा बन गये। उदाहरण के लिए, एक युद्ध सामंत ने तो यह नारा तक दे दिया कि "क्वांगतुंग क्वांगतुंगवासियों के लिए" हो। लेकिन पिछले भागों में चर्चित राष्ट्रवाद की धाराओं ने चीन को बंटवारे के संकट से बचा लिया।

30.4.4 चीनी राष्ट्रवाद के अतिरिक्त प्रभाव

चार मई की घटना चार मई का आंदोलन बन गई, क्योंकि शर्म, आक्रोश और चिढ़ से क्रांति की प्रेरक शक्ति और संभावना का जन्म हुआ। यह आंदोलन एक उत्प्रेरक था, जिसने व्यापक स्तर के संगठन को एक जगह इकट्ठा किया जिनमें छात्र, मज़दूर, सौदागर और संघ शामिल थे। उस अर्थ में यह आंदोलन राष्ट्रवाद की अखंडता को प्रतिबिम्बित करने वाला था। इसने तमाम चीनी बुद्धिजीवियों को नव संस्कृति दी, और इसने पश्चिम के तिरस्कार को भी बढ़ावा दिया। प्रथम विश्व युद्ध और उसके परिणामस्वरूप बनी स्थितियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि चीन को अपने आपको सांस्कृतिक रूप से अब और निम्न समझने की आवश्यकता नहीं थी। यदि नैतिक सिद्धांतों के लिए ज़ोर-शोर के साथ लड़े जाने वाले युद्ध से अनैतिक प्रस्ताव निकल कर आने थे तो पश्चिम को चीन की समस्याएँ बताने के लिए अपने खोखलेपन को भी दिखाना होता। लियांग ची जैसे लेखकों ने अपने लेखन के माध्यम से चीन के प्राचीन गौरव का निर्माण किया। यह चीनी राष्ट्रवाद की एक और पुरजोर अभिव्यक्ति थी।

अपने "चीनीपन" में चीनियों के इस नवीकृत गौरव बोध के अतिरिक्त, पश्चिम से नाता तोड़ने के कहीं अधिक प्रासंगिक कारण थे। यह इतिहास का संयोग रहा कि फिर से उठी इस चीनी क्रांति का संपर्क नई रूसी क्रांति से हुआ। वैसे तो चीन में विद्यमान पश्चिमी अधिकारियों का रवैया चार मई की क्रांति के प्रति कुछ अर्थों में सहानुभूतिपूर्ण रहा था, फिर भी पश्चिमी व्यापारियों ने इसे नए बोल्शेविकवाद की ही एक धारा माना। 1919 में, अंतर्राष्ट्रीय बस्ती के अधिकारियों ने अपने क्षेत्र से आंदोलन को साफ कर दिया। जनतंत्र का उपदेश देने वाले और उसके समर्थक होने का दावा करने वालों की इस कार्यवाही ने चीनियों के मन में और भी शंका भर दी और वे सोवियतों के और निकट आ गए। मार्च 1913 में, सोवियतों ने चीन में रूसी अधिकारों और विशेषाधिकारों को छोड़ दिया। इससे चीनियों का नए सोवियत राज्य के प्रति बहुत अनुकूल रवैया बन गया। शुरूआत में कई चीनी बुद्धिजीवियों की बोल्शेविक सिद्धांत में दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन वे यह मानते थे, कि साम्यवाद के रूप में रूस के हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था, जिससे वह सैन्यवाद और साम्राज्यवाद का मुकाबला कर सकता था। इस तरह, मार्क्सवाद-लेनिनवाद में कुछ चीनियों को अंत में अपनी राष्ट्रवादी आकांक्षाओं की पूर्ति दिखाई दी। बाद में जब काफी बुद्धिजीवियों ने मार्क्सवाद को अपना लिया तो राष्ट्रवाद इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व बना रहा।

फ्रांस से न केवल आदर्शवादी स्वच्छंदतावादी क्रांति और मानवाधिकारों को लेकर लौटने वाले छात्र ही आए, बल्कि दसियों हज़ार ऐसे मज़दूर स्वयंसेवी भी आए, जिन्होंने युद्ध में भाग लिया था। ये लोग मज़दूर वर्ग की पृष्ठभूमि से नहीं थे, बल्कि कम सम्पन्न परिवारों के छात्र थे। फ्रांस में उन्होंने जिस नस्लीय भेदभाव, भाषायी कठिनाइयों, कठोर व्यवहार और कम वेतन का अनुभव लिया था उससे उन्हें एकता और संगठन के मूल्य का सबक मिल गया था। नव संस्कृत आंदोलन तो छिन्न-भिन्न हो गया, लेकिन इसने जिस राष्ट्रवाद को जन्म दिया था, वह मज़बूत होता चला गया।

बोध प्रश्न 2

1) उत्तर क्रांति काल के प्रारंभिक दौर में राष्ट्रवाद के दौर का संक्षिप्त विवरण दीजिए। उत्तर 15 पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) चीनी राष्ट्रवाद के क्या प्रभाव हुए? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

30.5 सारांश

विदेशी ताकतों के हाथों अपमान और अधीनता झेलने के बाद, चीन में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में आधुनिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। साम्राज्यवाद विरोध, मांचूवाद विरोध और एक मज़बूत राष्ट्र की इच्छा—इन तीन कारकों ने राष्ट्रवाद के उदय को प्रेरित किया, लेकिन इन तीनों कारकों में साम्राज्यवाद विरोध का पहला कारक सबसे निर्णायक या महत्वपूर्ण था।

सन् 1911 और 1919 के बीच का जो दौर था, उसमें एक नवीकृत राष्ट्रवादी भावना दिखाई पड़ने लगी, जो जापान की इक्कीस मांगों के जवाब में थी। चीन जब पश्चिमी साम्राज्यवाद से निपटने का रास्ता निकालने के लिए घोर संघर्ष कर रहा था, उस समय चीन के संसाधनों के लिए भूखे जापान के एक पूर्वी साम्राज्यवादी ताकत के रूप में उदय ने तमाम चिंतनशील व्यक्तियों को झकझोर दिया। राष्ट्रवाद नई ऊँचाइयाँ छूने लगा। परंपरा से, पूर्वी एशियाई परिदृश्य में, जापान चीन का शिष्य था, जिसने उससे दर्शन, धर्म और लिपि जैसी अनेक बातें सीखीं और उधार ली थीं। चीनियों के लिए यह अभूतपूर्व आघात था कि 1894 से जापान का आक्रमक रवैया और भी तीव्र होता जा रहा था।

प्रारंभिक चिंगोत्तर काल में राष्ट्रवाद ने सभी वर्गों को प्रभावित किया। सौदागर, बुद्धिजीवी, छात्र और सेना सभी बाहरी शत्रु से लड़ने को एक हो गए। प्रथम विश्व युद्ध के विजेताओं ने पेरिस शांति सम्मेलन में शांतुंग मसले को जिस तरह से लिया, उससे एक आक्रामक और अदम्य राष्ट्रवादी भावना भड़क उठी। 1915 से जो बौद्धिक उबाल बन रहा था उसने युवाओं में एक सजग राष्ट्रवाद की भावना पैदा कर दी थी। चार मई की घटना चार मई का आंदोलन बन गया। इस व्यापक आंदोलन में प्रगाढ़ राष्ट्रवादी भावनाओं वाले सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलू शामिल हुए। अंत में, पेरिए गए चीनी प्रतिनिधिमंडल ने संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए। उसके बाद से चीन अपनी इस मांग से कभी नहीं मुकरा कि प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों के समुदाय में उसके साथ समानता का व्यवहार किया जाए या उसे समान दर्जा दिया जाए।

30.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर में चुंग-कुओ की इस अवधारणा को शामिल करें कि सम्राट "स्वर्ग का पुत्र" था, इत्यादि। देखिए भाग 30.1

2) इसकी तीन विवेचनाएँ हैं :

   i) साम्राज्यवाद का विरोध,

   ii) एक मज़बूत, आधुनिक राष्ट्र-राज्य का निर्माण; और

   iii) मांचू वंश को उखाड़ फेंकना। देखिए भाग 30.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 30.3

2) अपना उत्तर उपभाग 30.4.3 के आधार पर लिखिए।

1. न्यु युथ पत्रिका का कवर पृष्ठ

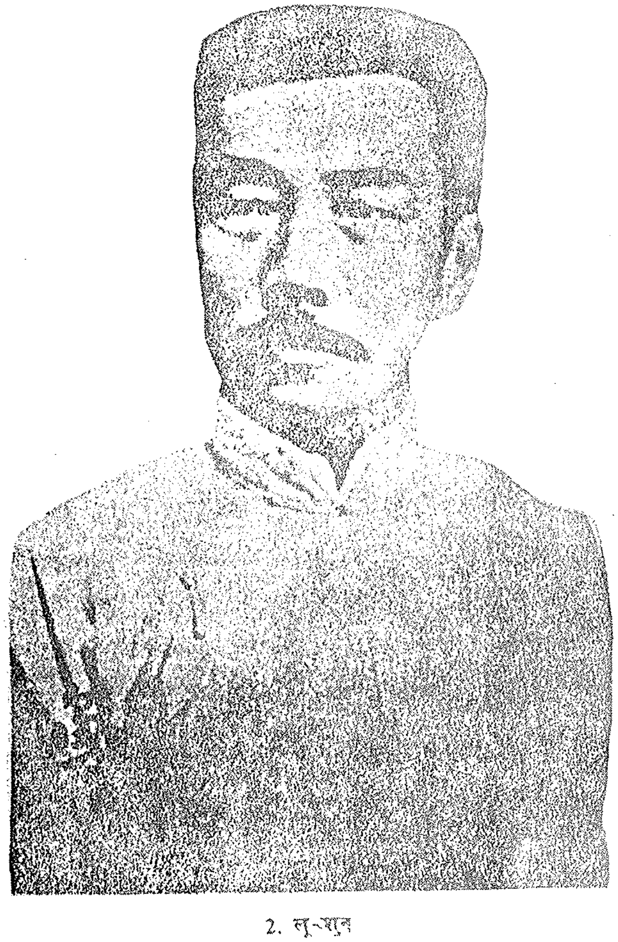

2. लू-शुन

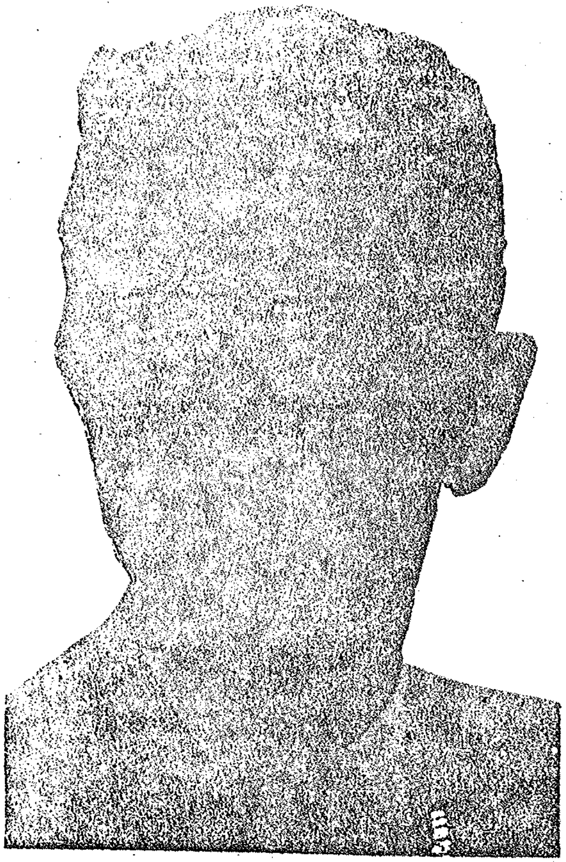

3. हू-शी

4. हयान शींग

फैंग यू शीयांग

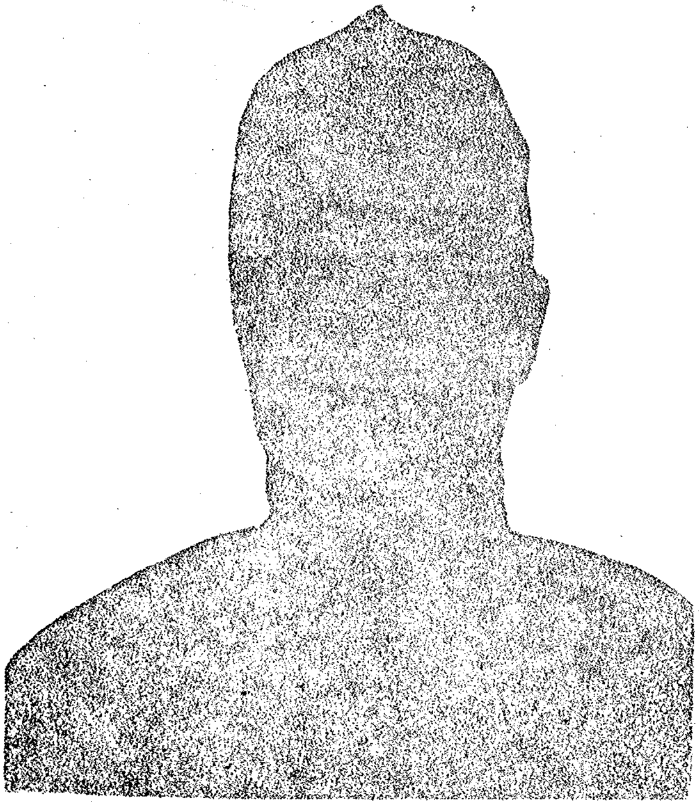

6. पु-यी

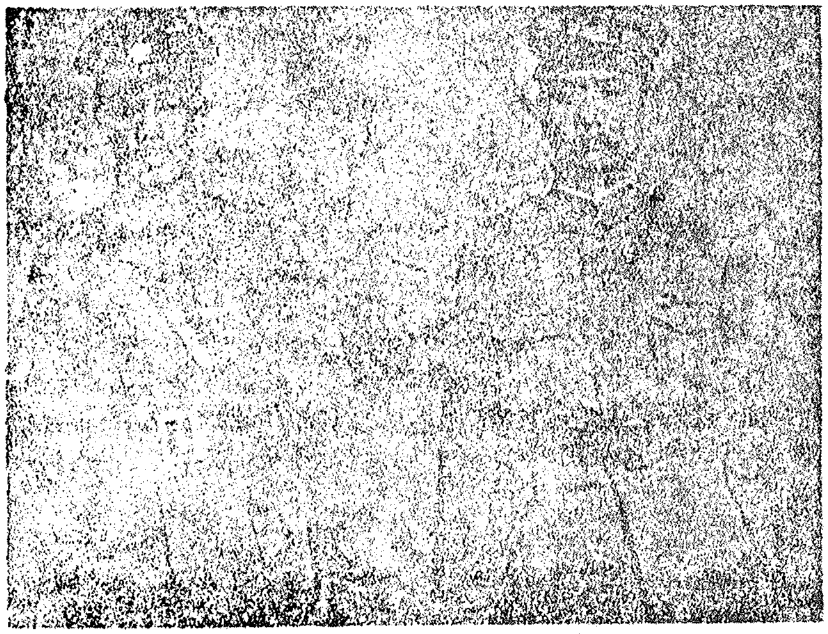

7. च्याङ-काई-शेक और येन-शी-शान

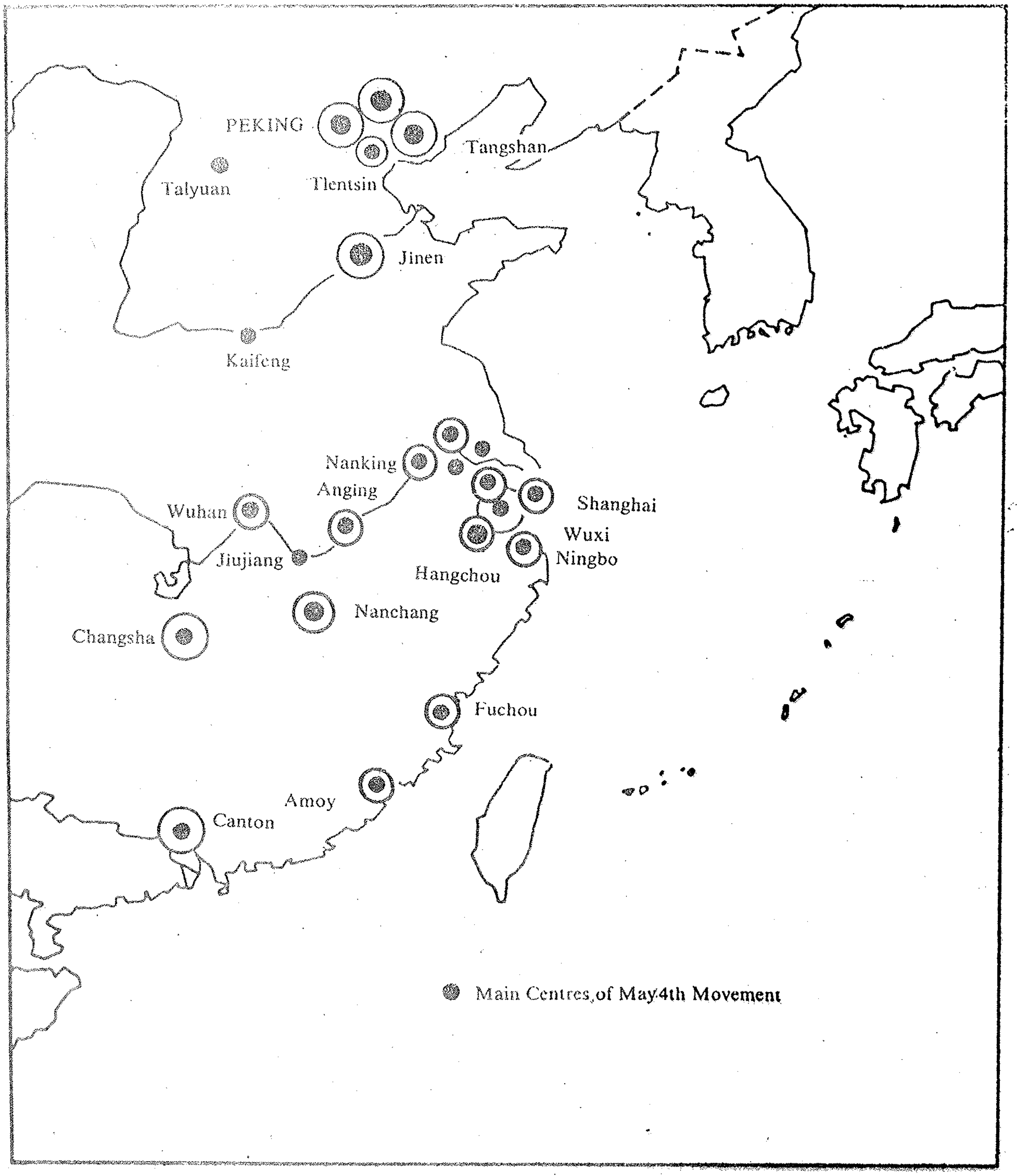

नक्शा-1 4 मई आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र

Notes

Notes

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय

UGHY-06
इतिहास
चीन और जापान का
इतिहास : 1840-1949

खंड

8

चीन में कम्युनिस्ट आंदोलन

इकाई 31
चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) का निर्माण 5

इकाई 32
संयुक्त मोर्चा 15

इकाई 33
क्यांगसी सोवियत अनुभव 26

इकाई 34
चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जापान के साथ युद्ध 40

इकाई 35
चीन की क्रांति 56

चित्र 72

चीन में कम्युनिस्ट आंदोलन, 1921-49

यह इस पाठ्यक्रम का अंतिम खंड है और चीन में कम्युनिस्ट आंदोलन से संबंधित है। अभी तक हमने देखा कि किस प्रकार साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा चीन का शोषण किया जा रहा था। साम्राज्यवादियों के इस खेमे में अब जापान भी शामिल हो चुका था। इस दौरान चीन में दो मुख्य प्रवृत्तियों का उदय हुआ। पहली प्रवृत्ति का नेतृत्व चीनी राष्ट्रवादी पार्टी KUOMINTANG (जिसे इस खंड में क्वोमिंतांग, कुओमिंतांग या क्योमिंटांग के नाम से भी उद्धत किया गया है) द्वारा किया गया जो मुख्यतः राष्ट्रवाद से प्रेरित थी। दूसरी प्रवृत्ति का नेतृत्व चीनी कम्युनिस्ट पार्टी CPC (जिसे साम्यवादी दल भी कहा गया है) द्वारा किया गया जो न सिर्फ साम्राज्यवाद विरोधी थी बल्कि इसने "कम्युनिस्ट विचारधारा" के आधार पर चीनी समाज के पुनर्निर्माण का प्रयास भी किया। इन अलग दृष्टिकोणों से इन प्रवृत्तियों के बीच टकराव की स्थिति पैदा हुई। इस टकराव में अन्ततः 1949 में कम्युनिस्टों की विजय हुई।

इकाई 31 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (CPC) की स्थापना पर बहस करती है। मार्क्सवादी विचारों के उदय, चीनी कम्युनिस्टों के प्रारंभिक विचार तथा उनकी गतिविधियों पर भी इस इकाई में चर्चा की गई है।

1924 में युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवादी प्रभुत्व का मुकाबला करने के लिये के.एम.टी. (कुओ मिंतांग) और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) के बीच एक संयुक्त मोर्चे की स्थापना हुई। इकाई 32 इस मोर्चे की स्थापना के कारणों, इसकी प्रकृति, उपलब्धियों तथा इसके विघटन के कारणों पर चर्चा करती है।

इकाई 33 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अपने प्रभाव क्षेत्र में अपनाई गई नीतियों पर प्रकाश डालती है और कियांग्सी-सोवियत अनुभव पर विशेष चर्चा करती है।

इकाई 34 जापानी आक्रमण का चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा विरोध, कुओमिंतांग और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच टकराव — विशेष तौर पर महान अभियान (Long March) और दोनों के बीच में सहयोग का दौर अर्थात् दूसरा संयुक्त मोर्चा जैसे विषय वस्तुओं पर चर्चा करती है। यह "लाल आधार" की गतिविधियों पर भी विचार करती है और समाजवादी विचारों पर आधारित नये चीन के निर्माण हेतु चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अपनाई गई नीतियों पर बहस करती है।

इकाई 35 में हमने 1945-49 के दौरान चीन में गृह युद्ध पर बहस की है। यह इकाई कम्युनिस्टों की विजय की व्याख्या करते हुए, कम्युनिस्ट क्रांति की सफलता और चीन में जनता के गणतंत्र पर चर्चा करती है। इसके अतिरिक्त यह आपका परिचय उन समस्याओं से कराती है जिनका सामना नई सरकार को करना पड़ा और इन समस्याओं से निपटने के लिए जिन नीतियों का अनुसरण किया गया, उनसे भी आपको अवगत कराया गया है।

आभार : हम संस्कृति केन्द्र, चीनी दूतावास के आभारी हैं जिन्होंने इस खंड के लिए चित्र उपलब्ध करवाये।

इकाई 31 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य
31.1 प्रस्तावना
31.2 चीन में मार्क्सवाद का उदय
    31.2.1 अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि
    31.2.2 राजनीतिक वातावरण
    31.2.3 सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां
31.3 कम्युनिस्ट पार्टी : 1921
31.4 प्रारम्भिक विचार
31.5 प्रारम्भिक गतिविधियां
31.6 सारांश
31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

31.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप:

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सी.पी.सी.) के विषय में जान पायेंगे,
- सी.पी.सी. के प्रारम्भिक विचारों और
- गतिविधियों को समझ पाएंगे, और,
- उन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों को समझ सकेंगे जिनके अधीन सी.पी.सी. ने कार्य किया।

31.1 प्रस्तावना

स्वतन्त्रता के लिये भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की भांति चीनी क्रान्ति एक ऐसा लम्बा सतत् संघर्ष था जिसके अन्दर हज़ारों लोगों ने अपने जीवन की आहुति दी। चीनी क्रान्ति ने 1949 में निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त किया।

- इसने अपने देश को साम्राज्यवादी नियन्त्रण से मुक्त किया, और
- इसने अपनी जनता को चीन के शासक वर्गों के शोषण से मुक्ति प्रदान करने में सफलता प्राप्त की।

क्रान्ति की सफलता में परिणति के कारण सम्पूर्ण पुराना तन्त्र धराशयी हो गया। अब एक ऐसी नवीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण हुआ जिसको अधिक न्यायोचित समझा गया और वह जनता के हित में थी। यद्यपि उत्तर क्रान्ति काल में भी पुराने विचारों के विरुद्ध संघर्ष सतत् तौर पर चलता रहा फिर भी क्रान्ति ने चीनी जनता की मानसिकता में एक क्रान्तिकारी रूपांतरण किया। इस रूपांतरण में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने महत्वपूर्ण तथा अग्रिम भूमिका अदा की। इसी कारणवश यहां पर इस तथ्य पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिये कि 1921 में गठित चीनी साम्यवादी दल ने मात्र 28 वर्षों

में क्रान्ति को पूर्ण कर सरकार गठित की। इस क्रान्ति के महत्वपूर्ण नेतागण माओ त्सु-तुंग, चाऊ-ऐन-लाई, चु-तेह, ली शाओ ची, और चीन में प्रथम मार्क्सवादी महिला शियांग चींग-ची थे। इन सभी के अतिरिक्त पार्टी के ऐसे हजारों सक्रिय सदस्य थे जो पार्टी-तन्त्र का आधार थे और जो चीन के मज़दूर और किसान थे। इस तरह से चीम के साम्यवादी दल के विचारों तथा क्रान्तिकारी आंदोलन में उसके द्वारा दिये गये महत्वपूर्ण योगदान की जानकारी प्राप्त करना महत्वपूर्ण होगा।

इस इकाई में उन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है जिनके बीच मार्क्सवादी विचारों का उद्भव एवं विकास हुआ, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रारम्भ एवं उनके प्रारम्भिक विचारों का विकास हुआ। इन्हीं परिस्थितियों में चीन की मेहनतकश जनता को संगठित करने के प्रयास किये गये। इस इकाई में शिक्षित लोगों, बुद्धिजीवियों तथा छात्रों पर सी.पी.सी. के प्रभाव की भी विवेचना की गई है। चीन के साम्यवादी दल ने चीन की जनता को नई राजनीतिक चेतना प्रदान की और उनके संघर्षों को नयी दिशा प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण योगदान किया और 1923 तक क्रान्तिकारी आंदोलन के चरित्र को एक स्वरूप प्रदान करने में भी अपनी भूमिका अदा की। 1923 में मजदूर आंदोलन का दमन करने के लिये जो चक्र चला उसने चीन के साम्यवादी दल के इतिहास के प्रथम दौर का समापन किया। सी.पी.सी. की इस प्रथम पराजय के कारणों का विश्लेषण करते हुए यह इकाई साम्यवादी दल के उपरोक्त सभी आयामों का विवेचन करेगी।

3.2 चीन में मार्क्सवाद का उदय

चीन में मार्क्सवाद का उदय अचानक ही नहीं हुआ था। चीन के बुद्धिजीवियों के बीच राष्ट्रवाद, उदारवाद एवं लोकतन्त्र के लिये लम्बी बहसें हुई थीं (देखें इकाई-30)। लेकिन बौद्धिक गतिविधियों तथा राजनीतिक कार्यशैली एवं मज़दूरों के व्यापक हितों के स्वरूप को मार्क्सवाद के द्वारा निर्धारित किया जाना भी इस समय शुरू हो चुका था। एक गहन संघर्ष के बाद चीन के मार्क्सवादियों ने चीन में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के अपने लक्ष्य तथा मज़दूर वर्ग के आंदोलनों के बीच एक अटूट संबंध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

1921 तक 90 प्रतिशत चीन की जनता अशिक्षित थीं और इस वजह से विचारों का प्रसार काफी कम था। चीन के मज़दूरों एवं कृषकों को इस तरह के विचारों का कोई विशेष बोध न हो सका।

प्रारम्भिक क्रान्तिकारी उच्च मध्यम वर्गों से आये थे। इससे पूर्व की इकाइयों में हम देख चुके हैं कि चीन में राष्ट्रवादी तथा साम्राज्यवाद विरोधी विचारों के उद्भव में विभिन्न कारकों ने कैसे योगदान किया।

राष्ट्रवादी विचारधारा के तहत विद्यमान धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई और इस विद्यमान व्यवस्था को आधुनिक एवं स्वतन्त्र चीन के विकास में एक अवरोध समझा गया (देखें इकाई-28)। इस पुरानी व्यवस्था की आलोचना पश्चिमी लोकतन्त्रवादी समर्थकों के द्वारा की गई। इस तरह के बुद्धिजीवी पश्चिमी लोकतन्त्र को आधुनिक एवं शक्तिशाली विज्ञान तथा संस्कृति से परिपूर्ण मानते थे।

मज़दूर एवं कृषक जिन भयंकर परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे उनके फलस्वरूप उनकी स्वयं की परेशानियां काफी गम्भीर थीं। अपने स्वयं के संघर्षों के द्वारा उन्हें भी नये प्रकार के अनुभव हुए थे। जहां एक ओर चीनी बुद्धिजीवी उनको राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने का प्रयास कर रहे थे वहीं दूसरी ओर श्रमिकों एवं कृषकों के संघर्षों ने चीन के बुद्धिजीवियों के लिये नवीन दृष्टिकोणों को उजागर किया। यह दो तरह की प्रक्रिया थी और यह बड़ी ही निर्णायक भी थी क्योंकि इस प्रक्रिया के फलस्वरूप चीनी बुद्धिजीवियों तथा लोकतन्त्र, नयी संस्कृति और स्वतन्त्र चीन के लिये व्यवसायिक वर्गों तथा समाज में निहित स्वार्थों को चुनौती देने वाले मेहनतकशों के राजनीतिक संघर्षों के बीच की दूरी कम हुई। वास्तव में यह प्रक्रिया राष्ट्रीय स्वतन्त्रता एवं सामाजिक मुक्ति के लक्ष्यों का संयुक्त रूप से प्रतिनिधित्व करती थी। इस प्रक्रिया के चलते ये दोनों उस सामाजिक शक्ति के रूप में रूपांतरित हो गई जिसके कारण वह उच्च राजनीतिक कार्यवाही करने में सक्षम हो सकी। इस तरह सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके कारण वे समाज को संगठित करने के लिये समाजवादी प्रारूप को अपनाने की ओर अग्रसर हुए।
1920 के वर्षों में चीनी समाज में जो नवीन विचार उदित हो रहे थे और मेहनतकश जनता का जो संघर्ष चल रहा था उनको एक-दूसरे से नवीन चेतना ने जोड़ा और इनके संगठित स्वरूप 1921 में चीन के

साम्यवादी दल के गठन ने प्रदान किया। चीन के साम्यवादी दल का गठन इस नयी चेतना की अभिव्यक्ति थी। यह चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के भीतर उदित होने वाली वामपंथी लहर का आधार बन गई। वामपंथी गुट ने सम्पूर्ण व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का निश्चय किया और समाजवाद के निर्माण को अपना एक व्यापक लक्ष्य बना लिया।

31.2.1 अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि

जिस अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में चीन का क्रान्तिकारी आंदोलन विकसित हुआ उसने चीन में मार्क्सवादी विचारों के प्रसार एवं स्वीकृति में महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की अर्थव्यवस्था के औपनिवेशीकरण के कारण जो असंतोष उत्पन्न हुआ वह समय-समय पर विभिन्न स्वरूपों में व्यक्त हुआ। भारत, रूस तथा बाद में दक्षिण अमरीका एवं अफ्रीका के पिछड़े देशों के समाजों की तुलना जिस समय पश्चिम के विकसित देशों के साथ की गई तब इन पिछड़े देशों में गहन बौद्धिक बहस चली और इस तरह के बौद्धिक विवादों का आधार यह था कि क्या अपने समाजों के पिछड़ेपन की विशेषताओं का परित्याग कर पश्चिम के विकसित समाजों की विशेषताओं को ग्रहण किया जाये या फिर अपने समाजों की श्रेष्ठतम विशेषताओं को पुनस्थापित कर पश्चिम की दमनकारी एवं "भ्रष्ट" व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया जाये। चीन के अन्दर भी इन दो शीर्षकों के इर्द-गिर्द वाद-विवाद होता रहा (देखें इकाई-28)। चीन में मार्क्सवादियों ने नये एवं आधुनिक चीन का निर्माण करने की अवधारणा के द्वारा पश्चिमी तथा जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के मार्ग का अनुसरण किया। इस तरह एक मार्ग स्वीकृत किया गया जो चीन की जनता के व्यापक हिस्सों के लिये दोनों तर्कों के दृष्टिकोण से हितकारी था।

चीन में इन विचारों को निम्न दो अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने और अधिक स्वीकार्य बना दिया—

1) पेरिस के शांति सम्मेलन में शांतुंग प्रस्ताव के माध्यम से शांतुंग में जर्मनी के विशेषाधिकारों को चीन को हस्तांतरित करने के बजाय जापान को हस्तांतरित कर दिया गया और इसके कारण चीन की जनता का पश्चिम से व्यापक तौर पर मोह भंग हुआ। चीन की जनता को पश्चिमी लोकतन्त्र पाखंडी एवं झूठा लगने लगा और इस भावना का स्पष्ट तौर पर रूपांतरण पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हुआ। लेनिन की साम्राज्यवाद तथा क्रान्ति की अवधारणा ने चीनी बुद्धिजीवी वर्ग को और भी प्रभावित किया।
2) रूस में बोलशेविक क्रान्ति की सफलता ने भी चीन के बुद्धिजीवी वर्ग को समान रूप से आकर्षित किया। रूस एक ऐसे पिछड़े हुए देश का स्पष्ट प्रमाण था जिसने न केवल अपनी पुरानी जर्जर व्यवस्था को उखाड़ फेंका था बल्कि पश्चिमी साम्राज्यवाद को भी पराजित कर दिया था। अब मार्क्सवाद ने स्वयं को राजनीतिक कार्यवाही के लिये एक व्यवहारिक दर्शन के रूप में साबित कर दिया। इस तरह से मार्क्सवाद ने चीनी बुद्धिजीवी वर्ग को एक ऐसा दर्शन उपलब्ध कराया जिसके द्वारा वह "चीनी अतीत एवं वर्तमान के पश्चिमी प्रभुत्व — दोनों प्रकार की परम्पराओं का परित्याग कर सका"। इस तरह चीन के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में मार्क्सवाद एक शक्तिशाली स्रोत बन गया।

15 जुलाई, 1919 को रूस की नयी बोलशेविक सरकार ने चीनी जनता एवं चीनी सरकार को सम्बोधित करते हुए घोषणा की कि वह चीन के उन सभी क्षेत्रों पर अपने विशेषाधिकारों का परित्याग बगैर किसी हर्जाने के करती है जिन पर रूस के ज़ार ने अधिकार कर लिया था। रूस की नयी सरकार की यह घोषणा शांतुंग प्रस्ताव तथा इक्कीस मांगों के ठीक विपरीत थी।

ठीक भारत की भांति चीन एवं अन्य औपनिवेशिक देशों में सोवियत संघ का समर्थन पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले देश के रूप में बढ़ने लगा और पूर्व में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों तथा पश्चिम के समाजवादी संघर्षों के बीच आपसी हितों की पहचान को मान्यता दी जाने लगी। यह वही स्थिति थी जिसके लेनिन एवं चीनी मार्क्सवादी चेन तू-शू पक्षधर थे।

31.2.2 राजनीतिक वातावरण

चीन में राजनीतिक वातावरण को मार्क्सवाद की ओर रूपांतरित करने में 4 मई, 1919 के आंदोलन ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक चेन तू-शू तथा ली-ता-चाओ भी चार मई आंदोलन के नेता थे। लगभग आगामी पचास वर्षों तक चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व चार मई आंदोलन में भाग लेने वालों की पीढ़ी से आता रहा और इनमें चाऊ-ऐन-लाई तथा माओ त्से-तुंग प्रमुख थे। पार्टी के साधारण सदस्यों की एक बड़ी संख्या ने भी इस आंदोलन में अपना प्रथम क्रान्तिकारी

कन्फ्यूशियसवाद का विरोध, नयी शिक्षा का प्रसार, प्रेस तथा जन साहित्य में विशाल वृद्धि, प्रकाशन संस्थाओं, औषधि एवं आधुनिक न्यायालयों ने चार मई आंदोलन के दौरान आधुनिक विचारों के संवाहक बनने में महत्वपूर्ण योगदान किया। चीन की सामाजिक व्यवस्था में जो कुछ दमनात्मक था उसकी मूल आलोचना की गई थी और विज्ञान, लोकतन्त्र तथा साम्राज्यवाद विरोध में जो कुछ सकारात्मक था उन सभी का चीन के मार्क्सवादियों ने उचित समर्थन किया। इस सम्पूर्ण धरोहर को समाजवाद के उन विचारों के साथ मिश्रित कर दिया गया जिनके लिये मज़दूर वर्ग ने आंदोलन में अपना दावा किया। कम्युनिस्ट घोषणा पत्र, एंगेल्स की पुस्तक परिवार, निजी सम्पत्ति एवं राज्य का उदय, समाजवाद, उपयोगितावाद एवं विज्ञान जैसे मार्क्सवादी साहित्य का रूपांतरण 1919 के पहले ही चीन में पहुंच चुका था। ऐसे लोग जो जापानी या अन्य कुछ पश्चिमी भाषाओं का ज्ञान रखते थे वे और अधिक अध्ययन कर सकते थे और इस तरह पहले से ही समाजवादी विचारों के लिये चीन के बुद्धिजीवी वर्ग में कुछ सहानुभूति विद्यमान थी। लेकिन यह पश्चिमी उत्तरकालीन-युद्ध समझौतों एवं रूसी क्रान्ति के प्रति एक प्रतिक्रिया ही थी कि चार मई के आंदोलन ने एक ऐसी दिशा को सुनिश्चित किया जिससे मार्क्सवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा और 1919 तथा 1920 के वर्षों में तेजी से उनके विचारों का प्रसार हुआ। चार मई के आंदोलन के दौरान बुद्धिजीवी वर्ग का मज़दूर वर्ग के साथ घनिष्ठ सक्रिय सहयोग होने के कारण भी मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव बढ़ा। पीकिंग विश्वविद्यालय में ऐसे अनेक अध्ययन केन्द्रों का गठन हुआ जो समाजवाद के अध्ययन के प्रति समर्पित थे। ऐसी अनेक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होने लगा जो रूसी क्रान्ति तथा साम्राज्यवाद की बोलशेविक आलोचना से प्रभावित थी।

चार मई आंदोलन के दौरान चीन के अन्दर प्रथम आम हड़ताल हुई। 1919-21 के वर्षों के दौरान हड़तालों में बुद्धिजीवी वर्ग ने मेहनतकशों के साथ सक्रिय भाग लिया। वामपंथी बुद्धिजीवियों की अग्रणीय पत्रिका न्यू यूथ के अपने मई 1920 के सम्पूर्ण अंक में मज़दूरों की समस्याओं के विषय में लिखा। मई दिवस के आयोजनों में प्राध्यापकों, विद्यार्थियों एवं मज़दूरों ने भाग लिया। इस आंदोलन का अगला पड़ाव इस अंतःक्रिया को एक संगठित स्वरूप प्रदान करना था और यह कार्य उस समय सम्पन्न हुआ जबकि 1921 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ।

31.2.3 सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियां

लगभग पूरे चीन में मेहनतकशों की दरिद्र जीवन दशा ने ऐसा सामाजिक वातावरण तैयार किया जिसमें मार्क्सवाद का उदय हुआ।

दरिद्रता, गंदगी एवं शीघ्र मृत्यु देश के ग्रामीण अंचलों में 50 करोड़ जनता के जीवन का अंग थी। जिस समाज में चीन की जनता का अधिकतम भाग रहने के लिये बाध्य था उसकी निम्न विशेषतायें थीं—

- अपने बच्चों को मजबूरन बेचना,
- बुरे समय में घास एवं पेड़ों की छाल को खाना, और
- अपनी क्षमताओं के बाहर राजस्व एवं करों की अदायगी करना।

जहां एक ओर यह सभी घटित हो रहा था वहीं पर एक छोटा प्रबुद्ध वर्ग विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करता था। चीन के ग्रामीण क्षेत्रों के तेजी से होने वाले व्यापारीकरण एवं धन आपूर्ति (बाजार तथा धन अर्थव्यवस्था का उदय) के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था विश्व पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से जुड़ गई। लेकिन इसके कारणवंश किसानों का शोषण और बढ़ गया। अनाज व्यापारी, महाजन, तथा प्रशासनिक अधिकारी जैसे सभी लोग जमींदारों के बीच से आये थे और वे सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर छा गये।

ग्रामीण चीन पर किये गये सभी अध्ययनों से स्पष्ट है कि 20वीं सदी में चीन के एक कृषक का जीवन 18वीं सदी की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन हो गया था। आधुनिक युग में उसके जीवन स्तर में भारी गिरावट आयी। जनसंख्या की वृद्धि के कारण भूमि पर अधिक दबाव पड़ा। भूमि का स्वामित्व और सीमित हो जाने तथा अनाज के दामों में कमी होने के फलस्वरूप और अधिक किसान देहाड़ी मज़दूरों में बदल गये। बेरोजगारी के व्यापक तौर पर फैल जाने से मज़दूरी में भी गिरावट आयी। दरिद्रता, शोषण तथा युद्धों से ग्रसित किसान के लिये विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के क्रान्तिकारी रूपांतरण के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं था।

1920 के वर्षों में कृषि समस्या या किसान-भूमि समस्या एक महत्वपूर्ण सामाजिक सवाल बन गया। इस समय जमींदार व्यवस्था पर हमले लगातार बढ़ते जा रहे थे। 20वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में जो तूफान उत्पन्न हुआ उसने जमींदारों की स्थिति को काफी कमजोर बना दिया था। अब चीन का ग्रामीण क्षेत्र क्रान्तिकारी आंदोलनों की एक उर्वरक भूमि हो गई थी। अब वामपंथी बुद्धिजीवियों का यह कार्य था कि अपनी योजना के साथ ग्रामीण क्रान्तिकारियों को सूत्रबद्ध करें। एक अच्छी बात यह थी कि चीनी समाज का मुख्य भाग जनसंख्या के दृष्टिकोण के किसान ही थे। अब यह स्पष्ट था कि किसानों के जीवन एवं चेतना में रूपांतरण के बगैर चीन में कोई आधुनिक परिवर्तन सम्भव न था। लेकिन 1921 में भी किसानों का राजनीतिक क्षितिज काफी सीमित था। दूसरी ओर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को अभी किसानों के जबरदस्त हुए उभारों का भी अवलोकन करना था। यह केवल 1925 के बाद ही किया जा सका और इसी के बाद से चीन के कम्युनिस्ट आंदोलन ने किसानों से अपनी भारी शक्ति को प्राप्त किया।

मज़दूर वर्ग यद्यपि संख्या में कम था, लेकिन वह एक राजनीतिक शक्ति बन गया था क्योंकि बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र उन्हीं स्थानों पर थे जो चीन के मुख्य राजनीतिक केन्द्र थे। उच्च मज़दूरी एवं अन्य मांगों के लिये मज़दूरों के संघर्ष प्रतिदिन के जीवन से जुड़े थे और इसी के कारण वे राजनीतिक अधिकारियों एवं फैक्ट्री मालिकों के बीच अपने हितों की पहचान करने में सफल हुए। इसलिये उनका राजनीतिक अधिकारियों के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष हुआ।

उनकी हड़तालों का पुलिस के द्वारा बर्बरता पूर्ण दमन किया गया! पुलिस सीधे-सीधे राज्य का एक हथियार थी। मजदूरों की एक बड़ी संख्या विदेशी कारखानों में कार्यरत थी। इसके कारण वे प्रत्यक्ष तौर पर साम्राज्यवाद के विरोधी बन गये। इसलिये साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी संघर्ष तथा चीन की मेहनतकश जनता की चीनी शासक वर्गों से सामाजिक मुक्ति के संघर्ष की जटिलताओं का सामना उनको चीन में मजदूर आंदोलन के प्रारम्भिक चरण में ही करना पड़ा। औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरण में बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के केन्द्रीकरण के कारणवश एक फैक्ट्री में मजदूरों का भी केन्द्रीकरण हुआ और इसके कारण एक कारखाना मालिक के विरोध में मजदूरों की भी बड़ी तादाद एकत्रित हो गई। इससे मजदूर वर्ग का अपनी समस्याओं का संयुक्त तौर पर सम्मान करना सम्भव हो पाया और उनके बीच एकता भी कायम हुई तथा प्रारम्भिक चरण में ही उनके बीच वर्ग चेतना का उद्‌भव होना सम्भव हो पाया।

चार मई आंदोलन, प्रेस के विकास, सार्वजनिक सभाओं, नयी संस्कृति के विचारों एवं साहित्य के प्रसार तथा 1919-21 की घटनाओं में हिस्सेदारी के कारण शहरी क्षेत्रों में जो नया राजनीतिक वातावरण उत्पन्न हुआ उसने मजदूर वर्ग के सम्मुख एक नये परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत किया। मई 1919 में अध्यापक गण पीकिंग में मजदूरों के साथ हड़ताल में शामिल हुए यद्यपि उनको महीनों का वेतन न मिला था और ऊंची कीमतों के कारण उनका जीवन अधिक कठोर हो रहा था। 1920 में मजदूरों ने जापान-विरोधी बहिष्कार में भाग लिया। 1921 तक युद्ध के बाद फ्रांस से 28000 शिक्षित मजदूर वापस लौट चुके थे। उन्होंने चार मई आंदोलन को क्रान्तिकारी बनाने में सहायता की। इस तरह की परिस्थितियों में कम्युनिस्ट गुटों एवं इन मजदूरों ने एक दूसरे को अपने स्वाभाविक सहयोगियों के रूप में पाया। इस गठबंधन की अन्तिम परिणति चीन में एक कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के रूप में हुई।

बोध प्रश्न 1

1) उन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की विवेचना कीजिये जिनके कारण चीन में साम्यवादी विचारों का प्रसार हुआ। उत्तर 10 पंक्तियों में दे।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) 1919-20 के दौरान चीन में कैसा राजनीतिक वातावरण था? उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

31.3 कम्युनिस्ट पार्टी : 1921

4 मई आंदोलन के दौरान गठित अध्ययन केन्द्र चीन के बुद्धिजीवियों के बीच संगठित आधार पर मार्क्सवादी विचारों के प्रसार का प्रथम प्रयास थे। 1920 की गर्मियों से चीन के विभिन्न भागों में कम्युनिस्ट राजनीतिक संगठनों की स्थापना के कार्य का प्रारम्भ किया गया और इस तरह का प्रथम संगठन शंघाई में अस्तित्व में आया। चेन तू-शू ने शंघाई गुट की स्थापना की थी तथा उसने न्यू यूथ नाम के गुट के औपचारिक पत्र का प्रकाशन भी शुरू किया। इस गुट ने "कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल" के साथ अपना संपर्क कायम किया और रूस का कम्युनिस्ट ग्रेजोर वॉयतिंस्की इसके प्रतिनिधि के तौर पर चीन आया। अप्रैल, 1921 में इर्कुत्सुक में चीनी कॉमिंटर्न के कार्यालय की स्थापना की गई।

1920 के बसंत में ली ता-चाओ के नेतृत्व मे पीकिंग में कम्युनिस्ट गुटों की स्थापना हुई और शीघ्र ही उनका गठन अन्य नगरों में भी किया गया। अगस्त 1920 से शंघाई गुट ने *दि वर्ल्ड ऑफ लेबर* नाम के साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया और जनवरी 1921 तक इसके 23 अंकों का प्रकाशन हो गया। पीकिंग से ली ता-चाओ ने *दि वॉयस ऑफ लेबरर* प्रकाशित किया और कैन्टन गुट ने *दि वर्कस* तथा *वी मेन एट वर्क* को निकालना शुरू किया। इन सभी पत्रिकाओं में मार्क्सवादी सिद्धान्तों तथा चीनी मज़दूर वर्ग की समस्याओं के विषय में विवेचन किया गया। चाऊ-ऐन-लाई तथा माओ त्से-तुंग ने हुनान में अध्ययन केन्द्र को संगठित किया। बहुत से चीनी कम्युनिस्ट फ्रांस में सक्रिय थे। इन गतिविधियों के कारण अधिक से अधिक बुद्धिजीवी एवं विद्यार्थीगण कम्युनिस्टों के इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे।

पुलिस से छुपकर जुलाई 1921 में शंघाई में बालिका छात्रावास में इन गुटों की एक बैठक हुई। पुलिस को इस बैठक का आभास हो गया और फिर बैठक के स्थान को चैकियांग में एक पर्यटक स्थल पर एक नाव में रखा गया। इसको चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का प्रथम सम्मेलन कहा गया।

12 प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और वे 57 गुटों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के एक प्रतिनिधि ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन के द्वारा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का निर्णय किया गया। पुलिस द्वारा उन दिनों कम्युनिस्ट गुटों का जबरदस्त दमन किया जा रहा था। अतः चेन तू-शू एवं ली ता-चाओ ने पार्टी सम्मेलन न कह कर पार्टी के संस्थापकों का सम्मेलन घोषित किया। चेन तू-शू पार्टी का प्रथम महासचिव बना।

इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम, विकसित होते मजदूर आंदोलन, राजनीतिक वातावरण का बढ़ता पैमापन और एक क्रान्तिकारी विचारधारा तथा क्रान्तिकारी दल के विकास की अन्तिम परिणति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

(सी.पी.सी.) के गठन के रूप में हुई। इस प्रकार चीन के राजनीतिक दृश्य में पूर्ण रूप से एक नये तत्व का समावेश हुआ।

31.4 प्रारम्भिक विचार

सी.पी.सी. ने अपनी प्रेरणा को रूस की अक्तूबर क्रान्ति से प्राप्त किया था तथा यह स्वयं भी मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारों पर आधारित थी और पार्टी की "क्रान्तिकारी" भूमिका में विश्वास करती थी। मेहनतकश जनता के आंदोलनों विशेषकर मज़दूर वर्ग या सर्वहारा की अग्रिम भूमिका को निर्णायक समझा गया।

जैसा कि पहले भी कहा गया कि बुद्धिजीवी वर्ग के सभी भागों पर अक्तूबर क्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। लेकिन चीन के मार्क्सवादियों ने इसकी सफलता की सम्भावना को न केवल एक पिछड़े देश में समझा था बल्कि वे यह भी मान रहे थे कि इसके द्वारा वे पश्चिमी साम्राज्यवाद को उखाड़ने की सम्भावना को देख रहे थे। 1917 की क्रान्ति के बाद रूस ने जिस सामाजिक-राजनीतिक ढांचे को अपनाया था वे स्वयं भी अपने समाज के लिये उसी प्रारूप को अपनाना चाहते थे। वे अपने देश में जो कुछ निर्मित करना चाहते थे यह उनका एक सुस्पष्ट प्रारूप था अर्थात् वे एक ऐसा समाज बनाना चाहते थे जो वर्ग विहीन (वर्ग शोषण से मुक्त) होगा और जिसके अन्तर्गत –

- निजी सम्पत्ति जो कि वर्ग दमन का मूल कारण थी – तुरन्त नष्ट हो जायेगी, और
- राजनीतिक तन्त्र का दिशा-निर्देशन मेहनतकश जनता के हितों के द्वारा होगा (अर्थात समाजवाद)।

जैसा कि मार्क्स ने लिखा था और जो रूसी क्रान्ति ने साबित किया था उसी के अनुरूप उनका विश्वास था कि इस तरह का परिवर्तन क्रान्ति के द्वारा किया जा सकता था। मार्क्स के विचारों पर आधारित क्रान्ति को केवल वर्ग युद्ध या वर्ग संघर्ष के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था। उनका विचार था कि शासक वर्गों तथा मेहनतकश जनता के हितों के बीच निश्चित टकराव था (अर्थात् उनके बीच आन्तरिक संघर्ष निहित था)। ऐसा होने का यह कारण था क्योंकि शासक वर्गों के लाभ एवं विलासिता निश्चय ही मेहनतकशों के श्रम का फल थे और इसके लिये मेहनतकश जनता को पूर्ण अदायगी नहीं की जाती थी।

इससे आगे मार्क्स के विचारों पर आधारित उन्होंने यह भी समझा कि मेहनतकश वर्ग सबसे अधिक क्रान्तिकारी सामाजिक शक्ति है और सर्वहारा वर्ग की अग्रिम भूमिका होती है क्योंकि "इसके पास अपनी गुलामी को खोने के अलावा कुछ नहीं है"। क्योंकि यह केवल मेहनतकश वर्ग ही है जो अपने श्रम के द्वारा सम्पूर्ण आमदनी को पैदा करता है, लेकिन उसके पास कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है यही एक मात्र ऐसा वर्ग है जिसका निजी सम्पत्ति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं है। यह स्वाभाविक ही था कि मेहनतकश जनता का अधिक हित समाजवाद में निहित था और यह एक ऐसी व्यवस्था होगी जिसके अन्तर्गत वह अपने श्रम के सम्पूर्ण परिणाम का उपभोग कर सकेगा। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक था कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग को संगठित करती और इसने अपनी भूमिका को मेहनतकश जनता को राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने के लिये निर्धारित किया क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी मेहनतकश वर्ग के अधिक विकसित हिस्सों का प्रतिनिधित्व करती थी।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये सी.पी.सी. की परिवर्तन एवं सामाजिक रूपांतरण की अवधारणा कुओ मिन तांग के अधीन राष्ट्रवादियों से कहीं अधिक विकसित थी। साम्यवादियों के लिये केवल पश्चिमी साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकना पर्याप्त न था बल्कि चीन में युद्ध सामंतों के प्रभुत्व को भी समाप्त करना आवश्यक था। उनके लक्ष्य कहीं अधिक सामाजिक एवं आर्थिक समानता के पक्षधर थे।

लेनिन की अवधारणा साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरमपराकाष्ठा तथा रूसी क्रान्ति के अनुभव ने चीन के साम्यवादियों को बहुत अधिक प्रभावित किया और उनको यह विश्वास हो गया कि रूस में पूंजीवाद का अपेक्षाकृत कमजोर आधार था और इसी कारण उनके देश में पूंजीवाद व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की अधिक सम्भावनायें थीं। इसी के साथ-साथ वे यह अनुमान लगाने में भी सफल हुए कि रूस की भांति उनको भी अपने स्वयं के देश में युद्ध सामंतों की व्यवस्था का सफाया करना होगा। इसको कृषक वर्ग तथा राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग (मध्यम वर्ग) के साथ गठबंधन करने ही किया जा सकता था तथा इन वर्गों के हित भी

सामन्तवाद का विरोध करने में ही निहित थे। दूसरे शब्दों में चीन की क्रान्ति का प्रथम चरण रूस की क्रान्ति की भांति न होगा। पहले लोकतन्त्र को विकसित करने की आवश्यकता थी। लेकिन इस स्थिति को भी मेहनतकश वर्ग के द्वारा किसानों के गठबंधन के साथ सम्पन्न किया जाना था क्योंकि पूंजीपति वर्ग भी कमजोर था।

हमें यहां पर इस तथ्य को भी याद रखना चाहिये कि इन विचारों को रूसी क्रान्ति के सफल अनुभवों के आधार पर अंधाधुंध तरीके से स्वीकार नहीं किया गया था। उन्होंने अपने मार्क्सवादी विचारों तथा रूसी क्रान्ति के अनुभवों की शिक्षाओं को चीन की परिस्थितियों में लागू करने का प्रयास किया। ऐसा अपने स्वयं के राजनीतिक अनुभवों के परिवेश में किया गया था। 1923 तक भी वे चीनी समाज की जटिलताओं को समझने का प्रयास करते रहे। इन जटिल परिस्थितियों में सुस्पष्ट स्थिति मज़दूर वर्ग का जबरदस्त उफान था। इसी कारणवश इन वर्षों में उन्होंने स्वयं को मज़दूर वर्ग के आंदोलन को विकसित करने में प्राथमिक तौर पर व्यस्त रखा।

31.5 प्रारम्भिक गतिविधियां

चीन में 1920 में 46 मज़दूर हड़तालें हुईं और 1921 में 50। यह मुख्यतः कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयास ही थे कि मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना पैदा हो गई थी। अध्ययन केन्द्रों तथा मज़दूरों के लिये पत्रिकाओं के अलावा कम्युनिस्ट गुटों ने मजदूरों की विशाल सभाओं को सम्बोधित किया। इन प्रयासों में निम्न प्रयास भी शामिल थे –

- शंघाई मैटल मैकेनिक्स यूनियन की स्थापना
- हुनान वर्कंग मैन्स एसोसियेशन के साथ सम्पर्क
- चैंग-सिन-तेन में रेलवे मैन्स यूनियन का गठन।

मज़दूरों के लिये बहुत से शाम के समय चलने वाले स्कूलों को संगठित किया। इस सन्दर्भ में माओ तथा उनकी पत्नी के द्वारा चांगसा में चलाये गये शैक्षिक आंदोलन का उदाहरण दिया जा सकता है। अगस्त 1921 में एक स्व-चालित कालिज का प्रारम्भ किया गया। 1922 तक 30,000 से लेकर 40,000 तक की मज़दूरों की संख्या को इस तरह की गतिविधियों में शामिल कर लिया गया था। अन्यान के खान मज़दूरों के बीच माओ त्से-तुंग ने 7 खान मज़दूरों की एक पार्टी इकाई की स्थापना की। इस पार्टी इकाई ने उन खान मज़दूरों के मध्य एक यूनियन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

कैन्टन में छपाई, तम्बाकू तथा कपड़ा उद्योगों में मज़दूरों को संगठित करने के उद्देश्य से श्रमिक आंदोलन के लिये एक कमेटी की स्थापना की गई। प्रथम चीनी मज़दूर यूनियन का सम्मेलन 1 मई, 1922 को हुआ। चीन के इतिहास में पहली बार अगस्त 1922 में महिलाओं के द्वारा पूडोंग के रेशम कताई मिल में महिला मजदूरों की एक व्यापक हड़ताल हुई।

इस तरह की गतिविधियों का युद्ध सामंतों ने विरोध किया और इनका पूरी बर्बरता के साथ दमन हुआ। यूनियनों को बन्द कर दिया गया, हड़तालों में बाधा उत्पन्न की गई, तालाबंदी को घोषित कर दिया गया और मज़दूरों की व्यापक स्तर पर हत्या की गई। इस तरह से कम्युनिस्ट गतिविधियों तथा मज़दूर वर्ग के आंदोलन के प्रथम बहादुराना चरण का अन्त हुआ। यद्यपि मज़दूरों की ये सभी हड़तालें सफल न हुई थीं फिर भी सी.पी.सी. ने मज़दूर वर्ग के मध्य राजनीतिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मज़दूर वर्ग की इस असफलता का कारण यह था कि मज़दूर वर्ग स्वयं ही इन युद्ध सामंतों की तथा इनकी सरकारों की पूरी ताकत के अनुरूप तैयार न था। मज़दूरों को सहयोगियों की आवश्यकता थी। इसलिए कम्युनिस्टों ने किसानों को संगठित करने के अपने प्रथम प्रयास किये, लेकिन ऐसा केवल कैन्टन में किया गया। यद्यपि वे अभी तक एक ऐसे मज़दूर किसान गठबंधन को प्राप्त करने में सफल न हो सके थे जो मजबूत मज़दूर तथा किसान आंदोलनों पर आधारित होगा। राष्ट्रवादी पूंजीपति वर्ग ने साम्राज्यवाद तथा युद्ध सामंतों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए स्वयं को संगठित तौर पर सी.पी.सी. की गतिविधियों के साथ संबंधित न

किया था। वे अलग से कार्यरत थे और अव्यवस्थित भी। यह एक ऐसा समय था जबकि सी.पी.सी. एवं कुओ मिन तांग दोनों की अपनी राजनीतिक शिक्षा को प्राप्त करते हुए निम्नलिखित बातों को सीखना था—

- स्वयं को पुनः संगठित करना,
- चीन में स्वयं को एक ऐसे मजबूत गठबंधन में संगठित करना जिसके अन्दर सभी प्रगतिशील सामाजिक शक्तियां शामिल हों, और
- सामान्य शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष करने की एक संयुक्त नीति को तैयार करना।

बोध प्रश्न 2

1) अपने गठन के काल में सी.पी.सी. के क्या विचार थे? उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) लगभग 10 पंक्तियों में सी.पी.सी. की प्रारम्भिक गतिविधियों की विवेचना कीजिये।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

31.6 सारांश

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का गठन 1921 में हुआ और उसने चीन की जनता को एक नयी विचारधारा उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान किया। चार मई आंदोलन को मार्क्सवादी विचारों को संगठित तौर पर प्रसारित करने का प्रथम प्रयास माना जा सकता है। चार मई आंदोलन के साथ ही छापाखाने, सार्वजनिक सभाओं तथा नवीन साहित्य आदि का भी प्रसार हुआ और इसने विचारों के विकास में भी योगदान किया। मज़दूर वर्ग में राजनीतिक चेतना की वृद्धि करने के लिये सी.पी.सी. उत्तरदायी थी। मज़दूर वर्ग तथा सी.पी.सी के प्रथम क्रान्तिकारी आंदोलन का अन्त बर्बर दमन के कारण हुआ।

31.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर का आधार उपभाग 3.2.2 को बनायें।
2) आपका उत्तर उपभाग 3.2.3 पर आधारित होना चाहिये।

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर का आधार भाग 3.5 होना चाहिये।
2) आप अपने उत्तर का आधार भाग 3.5 को बनाये।

इकाई 32 संयुक्त मोर्चा

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य
32.1 प्रस्तावना
32.2 संयुक्त मोर्चे का गठन
32.2.1 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी
32.2.2 क्वोमिंतांग
32.3 वार्ताएं
32.4 संयुक्त मोर्चे की प्रकृति
32.5 उपलब्धियां और सफलताएं
32.6 जन आंदोलन और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी
32.7 विघटन और दमन
32.8 विघटन के कारण
32.9 सारांश
32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

32.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- यह जान पायेंगे कि चीन में संयुक्त मोर्चे का विचार क्यों बना,
- संयुक्त मोर्चे के गठन के लिये उत्तरदायी कारकों को समझ सकेंगे,
- संयुक्त मोर्चे के दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- यह जान सकेंगे कि क्वोमिनतांग चीनी राष्ट्रीय आंदोलन में किस प्रकार एक मजबूत सामाजिक शक्ति के रूप में उभरा, और
- संयुक्त मोर्चे की उपलब्धियों और असफलताओं के विषय में जान सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

"संयुक्त मोर्चे" का शाब्दिक अर्थ होता है गठबंधन। कम्युनिस्ट शब्दावली में उसका प्रयोग उस रणनीति के लिये किया जाता है जहाँ कम्युनिस्ट पार्टी किसी समान उद्देश्य के लिये अथवा किसी समान शत्रु के विरुद्ध दूसरे राजनीतिक दलों अथवा समूहों के साथ गठबंधन कर लेती है। कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस रणनीति का प्रयोग तब-तब किया है जब-जब उन्हें लगा है कि वे अकेले अपने बूते पर संघर्ष को आगे नहीं बढ़ा सकते और दूसरे ऐसे समूह अथवा दल हैं जो उनके समूचे कार्यक्रम से सहमत न होते हुए भी उनके कुछ ऐसे उद्देश्यों से सहमति रखते हैं जो कहीं अधिक आसन्न है। इस तरह, संयुक्त मोर्चे का आधार एक समान न्यूनतम कार्यक्रम होता है। फिर भी, किसी "संयुक्त मोर्चे" का अर्थ कम्युनिस्ट पार्टियों का दूसरे समूहों के साथ विलय हो जाना नहीं होता। इसका कारण यह है कि उनके कुछ व्यापकतर लक्ष्य भिन्न होते हैं। वे यह मानते हैं कि उनके आसन्न लक्ष्य पूरे हो जाने के बाद, हो सकता हैं दूसरे समूह (अथवा, गुट) और आगे संघर्ष न चलाना चाहें। वास्तव में तो यह भी हो सकता है कि वे एक-दूसरे से ही लड़ चलें। संयुक्त मोर्चे का उद्देश्य समान संघर्षों के दौरान जनता के बीच अपना स्वाधीन प्रभाव कायम करना भी होता है। इसका कारण यह है कि न्यूनतम समान लक्ष्य पूरे होने के बाद जनता उनके प्रभाव में बनी रहेगी और अधिक व्यापक लक्ष्यों के लिये संघर्ष को जारी रखना चाहेगी।

चीन में पहला संयुक्त मोर्चा 1924-1927 के दौर में रहा। इस दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्वोमिनतांग के साथ मिल कर एक संयुक्त मोर्चे का गठन किया जिसका उद्देश्य:

- साम्राज्यवादी पश्चिमी ताकतों और जापान द्वारा निरूपित उपनिवेशवाद, और
- चीन के युद्ध नेताओं द्वारा निरूपित सामंतवाद का अंत करना था।

इस तरह, चीन में 1924 से 1927 तक संयुक्त मोर्चे की रणनीति के समान ध्येय थे राष्ट्रीय मुक्ति और चीन में एक जनतांत्रिक सामाजिक और राजनीतिक ढांचे की स्थापना।

यह संयुक्त मोर्चा 1927 तक ही चल पाया। इसका अंत कम्युनिस्टों और मज़दूर वर्ग के विरुद्ध दमन के साथ हुआ। इस बार दमन (1923 की तरह) केवल युद्ध सामंतों ने नहीं किया, बल्कि उसके अपने पूर्ववर्ती मित्र क्वोमिनतांग ने किया, और इसमें उसकी सहायता चीन में विद्यमान साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतों ने की।

इस इकाई में हम निम्नलिखित पर चर्चा करेंगे:

- सबसे पहले, संयुक्त मोर्चे की नीति बनने के कारण, अर्थात् चीन में ऐसी कौन-सी स्थितियां थीं जिनके कारण क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करने का निर्णय लेना पड़ा,
- दूसरे, वे अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव जिन्होंने इस नीति को आकार दिया, संयुक्त मोर्चे की प्रकृति और उसकी उपलब्धियां,
- तीसरे, संयुक्त मोर्चे की रणनीति और चीन में मज़दूर और किसान आंदोलनों की प्रगति के बीच संबंध, राष्ट्रीय शक्तियों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की उपलब्धियां, और
- अंत में, संयुक्त मोर्चे के कारण और चीनी क्रांतिकारी आंदोलन के भीतर की समस्याएं और उसके अंतर्विरोध।

इसके अतिरिक्त, इस इकाई में यह भी चर्चा की जायेगी कि इस प्रयोग से कौन सी समस्याएं उठीं, और चीनी क्रांतिकारी नेताओं ने उन समस्याओं का किस प्रकार समाधान किया।

32.2 संयुक्त मोर्चे का गठन

चीन में संयुक्त मोर्चे का गठन सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में विश्व की सभी कम्युनिस्ट पार्टियों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन कम्युनिस्ट इंटरनेशनल, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग की पहल पर हुआ। इसके गठन के कारण आंशिक रूप से वैचारिक और आंशिक रूप से व्यावहारिक थे। जैसा कि आप इकाई 31 में पढ़ चुके हैं, प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् के वर्षों में निम्नलिखित तथ्य देखने में आये:

- चीन में सोवियत रूस के लिये अत्यधिक सहानुभूति का बनना,
- चीनी बुद्धिजीवी वर्ग का आमूल परिवर्तन, और
- मजदूर और किसान आंदोलनों और मार्क्सवाद का उदय।

पश्चिमी ताकतों से पूर्ण मोह भंग की स्थिति थी। सोवियत संघ के कम्युनिस्टों ने तमाम विशेषाधिकारों और प्रादेशिक क्षेत्रों पर दावों को छोड़ने में पहल की थी। इनमें चीन में पूर्ववर्ती जार शासन के नियंत्रण वाला मंचूरियाई रेलमार्ग भी था। इसलिये, यह स्वाभाविक था कि चीन के प्रमुख राजनीतिक गुट सोवियत सरकार और वहां की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मैत्री संबंध स्थापित करते।

इसलिये, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त, क्वोमिनतांग ने भी सोवियत संघ के साथ सीधे और मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये।

दूसरी ओर, सोवियत सरकार, वहां की कम्युनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का दृढ़ मत था कि केवल चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ही नहीं, बल्कि क्वोमिनतांग भी एक प्रगतिशील और क्रांतिकारी राजनीतिक संगठन था। यह समझ इस विश्लेषण पर आधारित थी कि राष्ट्रीय मुक्ति के लिये संघर्ष कर रही उपनिवेशी

और अर्ध-उपनिवेशी देशों की तमाम राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों को विश्व की राजनीति में एक सकारात्मक भूमिका निभानी थी। वे यह मानते थे कि साम्राज्यवाद के विरोध में खड़े होने वाले तमाम राजनीतिक गुट नवोदित समाजवादी देश रूस के समान शत्रु के विरुद्ध विश्व व्यापी संघर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। इन गुटों में शेष यूरोप के मज़दूर और कम्युनिस्ट आंदोलन, और भारत और चीन जैसे उपनिवेशी और अर्ध-उपनिवेशी देशों के मज़दूर और कम्युनिस्ट आंदोलन शामिल थे। इसलिये, सोवियतों और कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के मन में यह एक आदर्श स्थिति थी कि वे अवसर मिलते ही समान शत्रु के विरुद्ध आपस में सहयोग करें।

मार्क्सवाद के विचारों पर आधारित कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का भी दूसरे देशों में क्रांतियों को बढ़ावा देने में लाभ था, क्योंकि ये क्रांतियां आवश्यक रूप से चीन अथवा भारत की जनता के एक बड़े वर्ग के हितों का वहां के निहित स्वार्थों के हितों के विरुद्ध प्रतिनिधित्व करती। चीन में उन्होंने देखा कि केवल मज़दूर और किसान ही नहीं बल्कि बूर्जुआ और मध्यम वर्ग भी युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध थे। वहां युद्ध सामंतवाद का यह विरोध इसलिये था क्योंकि युद्ध सामंत चीन में सामंतवाद का मुख्य आधार थे। उनका सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव न केवल किसानों के हितों के विरुद्ध ज़मीदारों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था, बल्कि यह चीन में आधुनिकीकरण और पूंजीवाद के विकास में भी बाधक था। बूर्जुआ वर्ग के हित आधुनिक चीन के विकास में निहित थे, इसलिये ये युद्ध सामंतों के विरुद्ध थे। उनके हितों का प्रतिनिधि युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाला क्वोमिनतांग था। चीनी बूर्जुआ वर्ग के स्वार्थ साम्राज्यवाद का विरोध करने में भी निहित थे क्योंकि साम्राज्यवाद भी चीन में उन्नत पूंजीवाद के विकास में बाधक था। पश्चिमी ताकतें सारे लाभ खींच ले जाती थीं और चीनी बूर्जुआ उनसे होड़ करने की स्थिति में नहीं थे। इसलिये क्वोमिनतांग ने पश्चिमी ताकतों का विरोध किया (देखिये इकाई-30)।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने भी इस स्थिति को महसूस किया, और उसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त क्वोमिनतांग के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किये। क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों के साथ इस मैत्रीपूर्ण सहयोग के बूते पर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग के संयुक्त मोर्चे के गठन की पहल में मध्यस्थ का काम कर सकी।

32.2.1 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर संयुक्त मोर्चे के गठन को लेकर कुछ मतभेद थे। फिर भी विश्व राजनीति पर जोर देने की आवश्यकता को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने स्वीकार किया। वास्तव में, चीन में कम्युनिस्ट आंदोलन का उदय राष्ट्रवाद के विकास और जनतंत्र के लिये चलाने वाले आंदोलन के संदर्भ में हुआ था। इसलिये, राष्ट्रीय मुक्ति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का एक प्राथमिक लक्ष्य था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को यह एहसास हो गया था कि चीन को साम्राज्यवादी ताकतों के चंगुल से मुक्त कराये बिना न तो जनतंत्र आ सकता है और न ही जनता के जीवन को बेहतर बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, समय-समय पर इन ताकतों और सामंतों के बीच राजनीतिक समझौता भी रहा। इसलिये, राष्ट्रीय मुक्ति को चीन में सामाजिक मुक्ति के लिये चलने वाले संघर्ष से अलग नहीं किया जा सकता था।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने देखा कि क्वोमिनतांग साम्राज्यवाद और युद्ध सामंतवाद दोनों के विरुद्ध था। इसके नेताओं ने यह भी महसूस किया कि 1924 में चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा क्वोमिनतांग कहीं अधिक मजबूत शक्ति थी। उसके पास:

- चीनी जनता का कहीं व्यापक आधार और समर्थन था,
- सदस्यों के रूप में कहीं अधिक बुद्धिजीवी और व्यावसायिक लोग थे,
- प्रशासन सेनाओं के भीतर कहीं अधिक प्रभाव था, और
- कहीं अधिक कोश और सैनिक साज-सामान था।

इसलिये, क्वोमिनतांग समान शत्रु, के विरुद्ध संघर्ष में एक उपयोगी मित्र हो सकता था। चाहे वह मजदूरों और किसानों की दैनिक मांगों का प्रतिनिधित्व न करता हो। इसके अतिरिक्त, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की क्वोमिनतांग के नेता, सन यात सेन, के विषय में अच्छी राय थी। उनके सामने आसन्न राजनीतिक कामों के संदर्भ में, वे इस बात से सहमत थे कि मतभेद की अपेक्षा सहयोग के लिये कहीं अधिक संभावना थी। उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस सहयोग का अर्थ आवश्यक रूप से वह नहीं था

कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अपनी गतिविधियों को समान कामों तक ही सीमित रखे। इसलिये, उन्होंने इस स्पष्ट समझ के साथ संयुक्त मोर्चे के पक्ष में निर्णय लिया कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय मुक्ति के लिये युद्ध सामंतों के विरुद्ध क्वोमिनतांग के साथ मिल कर लड़ने के साथ-साथ स्वाधीन मांगों को बनाये रखेगी।

इस प्रकार, संयुक्त मोर्चा शत्रुओं को अलग-अलग करने के वास्ते चीनी जनता के व्यापकतम वर्ग को एकजुट करने का एक मात्र तरीका था।

32.2.2 क्वोमिनतांग

सन् 1911 की क्रांति के बाद के दशक में जो गणतंत्रवाद का प्रयोग हुआ उससे चीन में न तो आर्थिक स्थिरता ही आई और न ही राजनीतिक। गणतंत्रीय सरकार के राजनीतिक रूप से बेअसर होने के कारण सन यात सेन को साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों से लड़ने के नये तरीके निकालने के बारे में सोचना पड़ा। वामपंथ और मज़दूर आंदोलन की उठती लहर ने राष्ट्रवादी मुक्ति के लिये होने वाले संघर्ष को नये मोड़ पर खड़ा कर दिया। उसका अर्थ यह होता था कि राष्ट्रवादी शक्तियों के सामाजिक आधार को और भी व्यापक करके उनमें चीन के मज़दूरों और किसानों को शामिल किया जा सकता था।

सन यात सेन की अपनी प्रभावकारिता, बढ़ते साम्यवादी आंदोलन और मज़दूर आंदोलन में उसके प्रभाव ने मिल कर सन यात सेन के सामने दो बातें स्पष्ट कर दीं:

1) यह अनिवार्य था कि क्वोमिनतांग को फिर से संगठित किया जाये।
2) साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों से अकेले अपने दम पर और आगे लड़ना संभव नहीं था।

सन यात सेन को लगा कि इसका जवाब बस एक ऐसा पुनर्गठित क्वोमिनतांग था जिसमें चीनी जनता के सभी तबकों के समर्थन को लिया जाये। इसके लिये कम्युनिस्टों के साथ एक संयुक्त मोर्चा बनाना और सोवियत रूस की मित्रतापूर्ण सहायता लेना अनिवार्य था।

32.3 वार्ताएं

सन् 1921 के बसंत में उच्च अभिकर्ता एच मैरिंग, ने कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के प्रतिनिधि के रूप में सन यात सेन से मुलाकात की। यह संयुक्त मोर्चे के लिये होने वाली वार्ताओं की शुरुआत साबित हुई। उसके बाद, इस मसले पर जनवरी 1922 में मास्को में हुए कम्युनिस्ट पार्टियों के एक सम्मेलन में, और उसके बाद अगस्त 1922 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति में विचार किया गया। उसी महीने में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का एक और प्रतिनिधि, एडोल्फ जौफ, सोवियत-क्वोमिनतांग-चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सहयोग का आधार तैयार करने के लिये चीन आया। लंबी बातचीत के बाद, एडोल्फ जौफ, ने सन यात सेन को इस बात के लिये तैयार कर लिया कि वह सोवियत रूस के साथ गठबंधन और क्वोमिनतांग में साम्यवादियों के प्रवेश की नीति को अपनाये। इस नीति का अनुमोदन 53 राष्ट्रवादी नेताओं ने 4 सितम्बर, 1922 को शंघाई में हुए एक सम्मेलन में किया। यह नीति संयुक्त मोर्चे की नीति के लिये, और क्वोमिनतांग के पुनर्गठन के लिये भी, आदर्श बन गयी। दूसरी ओर जून 1923 में कैंटन में आयोजित चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के तीसरे राष्ट्रीय सम्मेलन में क्वोमिनतांग के साथ एक संयुक्त मोर्चा बनाने के बारे में औपचारिक निर्णय ले लिया गया।

जून 1924 में, क्वोमिनतांग ने कैंटन में अपना पहला राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया। ली ता-चाओ, माओ त्से-तुंग और अन्य साम्यवादी नेताओं ने भी इस बैठक में भाग लिया। इस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को उनकी व्यक्तिगत हैसियत में क्वोमिनतांग में प्रवेश दिया जाये। इसमें एक नये पार्टी कार्यक्रम और संविधान को अपनाया गया। इसमें क्वोमिनतांग के पुनर्गठन से संबंधित कुछ ठोस उपायों पर भी निर्णय लिया गया। क्वोमिनतांग के पहले राष्ट्रीय सम्मेलन के घोषणापत्र को भी नहीं अपनाया गया। सन यात सेन ने घोषणापत्र में अपने तीन सिद्धांतों की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की। सम्मेलन ने अपने तीन सिद्धांत इस प्रकार रखे:

- सोविगत संघ के साथ मित्रतापूर्ण संबंध,
- चीन में मज़दूर और किसान आंदोलनों का विकास, और

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सहयोग।

इस तरह, राष्ट्रीय मुक्ति और जनतंत्र के लिये संयुक्त मोर्चा 1924 में क्वोमिनतांग के इस पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में अस्तित्व में आया। मैटिंग ने 1921 से लेकर 1924 तक की तमाम वार्ताओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

32.4 संयुक्त मोर्चे की प्रकृति

संयुक्त मोर्चे की नीति की पहली और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी क्वोमिनतांग का एक ऐसे क्रांतिकारी संगठन के रूप में उदय जो चीन में राष्ट्रीय मुक्ति के पक्ष में और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व करने में सक्षम था। क्वोमिनतांग में साम्यवादियों के प्रवेश का अर्थ यह होता था कि असंख्य अति समर्पित क्रांतिकारियों की क्षमताओं और अनुभव को राष्ट्रवादी संघर्ष में जोत लिया गया था। क्वोमिनतांग की स्थायी समिति (प्रिसिडियम) के लिये चुने गये पांच सदस्यों में एक साम्यवादी, ली ता-चाओ, भी था। केंद्रीय समिति के लिये चुने गये 24 सदस्यों में पांच वामपंथी थे और तीन कम्युनिस्ट। बहुमत में न होते हुए भी, वामपंथी और साम्यवादी नीतिगत निर्णय लेने के संदर्भ में कहीं अधिक प्रभावशाली थे। इसके परिणामस्वरूप क्वोमिनतांग के भीतर एक मजबूत वामपंथ का उदय हुआ। अर्थात् अपने समूचे रूप में क्वोमिनतांग अपनी नीतियों और मज़दूर और किसान आंदोलन को समर्थन देने में इतना अधिक क्रांतिकारी हो गया जितना वह 1924 से पहले के वर्षों में कभी नहीं रहा था।

तीन सिद्धांतों को जो नयी व्याख्या दी गयी उससे भी यही संकेत मिलता है।

i) राष्ट्रवाद में साम्राज्यवाद विरोधी तत्व अब और भी मजबूत हो गया जिसमें एक स्वाधीन संघर्ष पर जोर दिया गया और चीन के भीतर तमाम राष्ट्रवादियों के लिये पूरी समानता की वकालत की गयी।
ii) जनतंत्र के नये सिद्धांत में इस बात पर जोर दिया गया कि न केवल विशेषाधिकार प्राप्त और शिक्षित व्यक्तियों को, बल्कि तमाम कामगारों का और सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करने वाले तमाम व्यक्तियों और संगठनों को भी, जनतांत्रिक अधिकार दिये जायें। व्यवहार में, इसमें भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार और बेहतर जीवन के लिये संगठन और संघर्ष करने का अधिकार आते थे।
iii) सभी के लिये आजीविका के संबंध में, इसमें भूमिस्वामित्व के समानीकरण, खेतिहरों को भूमि, पूंजी का नियंत्रण, और मज़दूरों के रहन-सहन की स्थितियों में सुधार जैसी सामंत-विरोधी मांगें शामिल थीं। व्यवहार में, इसका अर्थ होता था चंद पूंजीवादियों और ज़मीदारों के हाथों में राष्ट्रीय संपदा के नियंत्रण का विरोध करना।

क्वोमिनतांग के नेतृत्व वाले संयुक्त मोर्चे ने एक जनतांत्रिक संयुक्त सरकार की स्थापना की दिशा में काम करने के लिये राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग और मज़दूरों और किसानों के गठबंधन की मांग की। यह वास्तव में, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में रेखांकित आसन्न कामों को पूरा करने की दिशा में उठाया गया कदम ही था। इसका अर्थ यह भी होता था कि चीन के किसी भी राजनीतिक गुट द्वारा प्रस्तुत इस सबसे क्रांतिकारी कार्यक्रम को संयुक्त मोर्चे की नीतियों के ढांचे के भीतर कार्यान्वित किया जा रहा था।

बोध प्रश्न 1

1) संयुक्त मोर्चे के गठन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के क्या उद्देश्य थे? लगभग दस पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) संयुक्त मोर्चा किस वर्ष अस्तित्व में आया?
   क) 1922
   ख) 1924
   ग) 1923
   घ) 1926

3) लगभग दस पंक्तियों में संयुक्त मोर्चे की प्रकृति की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

32.5 उपलब्धियां और सफलताएं

संयुक्त मोर्चा नीति की पहली सफलता तो उसी समय सामने आ गयी थी जब बातचीत अभी चल रही थी। सनयात सेन ने कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से मार्च 1923 में क्वीनतुंग में एक क्रांतिकारी सरकार का गठन किया। सोवियतों ने क्वोमिनतांग को फिर से संगठित करने में मदद देने के लिए माइकेल बोरोदिन को और सेना के प्रशिक्षण में मदद के लिए जनरल गालेन को भेजा, उनके साथ 40 अन्य सलाहकार भी आये। अगस्त 1923 में, एक युवा जनरल, च्यांग काई शेक, को सोवियत सैनिक प्रणाली का अध्ययन करने के लिये सोवियत संघ भेजा गया। सोवियतों की मदद से, सन यात सेन को कैंटन के निकट वाम्पो सैनिक अकादमी स्थापित करने में भी सफलता मिली। राष्ट्रवादी सेना का गठन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, क्योंकि इससे कुछ युद्ध सामंतों की सेनाओं के विरुद्ध पहली महत्वपूर्ण जीत हासिल हो सकी। कैंटन अड्डे पर कब्जे का काम 1925 तक पूरा हो गया। राष्ट्रवादी सरकार को अक्तूबर 1926 में वूहान ले जाया गया और क्वोमिनतांग के सैनिकों ने चीन के एकीकरण के लिये एक सैनिक अभियान शुरू कर दिया। इसे उत्तरी अभियान के नाम से जाना गया। कुछ ही समय में क्वोमिनतांग ने आधे चीन पर नियंत्रण कर लिया। इसके परिणामस्वरूप क्रांतिकारी सेनाओं के नियंत्रण के क्षेत्र में संयुक्त मोर्चे के दौर में तेजी से विस्तार हुआ, दोनों पार्टियां भी साम्राज्यवाद — विशेषकर जापान और इंग्लैंड के साम्राज्यवाद का मिल जुल कर कड़ा प्रतिरोध करने में समर्थ रही।

संयुक्त मोर्चे की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी 1925-26 के दौरान जनप्रिय आंदोलनों के विकास को बढ़ावा देने में उसकी निर्णायक भूमिका, 1925 के 13 मई के आंदोलन ने विशेषकर पूरे चीन में अनेक हड़तालों, बहिष्कारों और साम्राज्यवाद विरोधी प्रदर्शनों को जन्म दिया। इसे शंघाई की अंतर्राष्ट्रीय बस्ती की पुलिस के हाथों दस प्रदर्शनकारियों के मारे जाने की घटना ने और बल दिया। मज़दूरों ने इस आंदोलन में

एक प्रमुख भूमिका निभायी। कुछ विद्वानों के अनुसार, इस आंदोलन ने चीनी राजनीतिक जीवन में इतना आमूल परिवर्तन कर दिया कि इसे एक सच्चे क्रांतिकार दौर की शुरुआत करने वाला कहा जा सकता है। अंग्रेज़ी व्यापार इस आंदोलन के दौरान मज़दूर वर्ग के कार्यों के कारण ठप्प पड़ गया। इस क्षेत्र पर नियंत्रण रखने वाले क्वोमिनतांग ने हड़ताली मज़दूरों का समर्थन किया और उनके लिये धन की व्यवस्था की। धाम संघों, शंघाई वाणिज्य मंडल और (लघु व्यापार के प्रतिनिधि) नुक्कड़ व्यापारियों के संघों और शंघाई के महासंघ ने साम्यवादियों के इस आह्वान का जवाब दिया कि वे विरोध जताने के लिये खुल कर सामने आ जायें। इस व्यापक विविधता में सयुंक्त मोर्चे की राजनीतिक प्रकृति और संयुक्त मोर्चे की सफलता परिलक्षित हुई। आंदोलन का समर्थन करने वाले सौदागरों और व्यापारियों को विदेशी कारखानों में काम बंद हो जाने से आर्थिक लाभ हुआ क्योंकि इन कारखानों से उनकी होड़ थी। शंघाई के अलावा, युद्ध सामंतों के नियंत्रण वाले तमाम क्षेत्रों में एकजुटता की हड़तालें हुईं : विदेशी कंपनियों पर धावे बोले गये, विदेशी सामान का बहिष्कार किया गया, और राजनीतिक आंदोलन हुए। चीनी जनता के विभिन्न तबकों की एकता इन क्षेत्रों में उसी तरह व्यक्त हुई जिस तरह से शंघाई में हुई थी।

32.6 जन आंदोलन और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

क्रांतिकारी आंदोलन के विकास ने मज़दूरों में जागृति को भी जन्म दिया। कैंटन की नयी सरकार ने आधिकारिक तौर पर मज़दूरों के संघर्ष का समर्थन किया। अनेक नये मज़दूर संघ अस्तित्व में आये; बड़े शहरों में जन आंदोलन हुए, राजनीतिक मांगें आम हो गयी; किसान संघों की संख्या भी बढ़ी — ऐसा विशेषकर हुनान, पुर्वी क्वानतुंग और पश्चिमी क्यांगसी में कैंटन सरकार के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में हुआ। लगान कम कराने के लिये संपत्ति स्वामियों के विरुद्ध एक आर्थिक संघर्ष छेड़ने के अलावा, किसानों ने अनाज के वितरण पर नियंत्रण का दावा भी पेश किया, कर देने से इंकार कर दिया और जमींदारों की सामाजिक और राजनीतिक सत्ता को भी चुनौती दी। सशस्त्र सेनाओं का गठन भी किया गया। क्वोमिनतांग ने एक किसान आंदोलन प्रशिक्षण संस्थान का प्रयोजन किया जहां माओ त्से-तुंग शिक्षक था। किसान आंदोलन के 1926 में आयोजित पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में दस लाख से भी अधिक सदस्यों का प्रतिनिधित्व हुआ। युद्ध सामंतों के गढ़, उत्तर, में भी किसान आंदोलन की प्रगति देखने में आयी। जून 1927 तक पूरे देश में कुल मिलाकर किसान संघों के लगभग 9,150,000 सदस्य थे।

इन जनप्रिय आंदोलनों को आयोजित करने में क्योंकि कम्युनिस्ट ही सबसे अधिक सक्रिय थे इसलिए 1921-27 के बीच के दौर में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य संख्या और उसकी राजनीतिक शक्ति में भी जबरदस्त वृद्धि देखने में आयी। 1925 के 13 मई के आंदोलन के परिणामस्वरूप उसकी सदस्य संख्या छह महीनों में दस गुनी बढ़ गयी। नवम्बर 1925 में यह संख्या 10,000 हो गयी, जबकि उस वर्ष के प्रारंभिक महीनों में यह केवल 1,000 थी, जुलाई 1926 तक सदस्य संख्या बढ़ कर 30,000 हो गयी और 1927 के प्रारंभिक महीनों में यह 58,000 हो गयी। युवा कम्युनिस्ट लीग का गठन भी बदल गया। 1925 से पहले, 90 प्रतिशत सदस्य छात्र हुआ करते थे, लेकिन नवम्बर 1926 तक केवल 35 प्रतिशत छात्र रह गये।

अधिक संख्या मज़दूरों की हो गयी। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की जनता को लामबंद करने की क्षमता में भी जबरदस्त वृद्धि हुई, जब च्यांग काई शेक़ की क्रांतिकारी सेना ने अपना अभियान छेड़ा तो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने ही उस सैनिक अभियान को एक ठोस जनाधार और राजनीतिक शक्ति देने के लिये 1,200,000 मज़दूरों और 800,000 किसानों को संगठित किया।

सोवियत लाल सेना के स्वरूप पर, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने क्रांतिकारी सेना में राजनीतिक कार्य की व्यवस्था लागू की, इस अभियान की अततः सफलता में यह एक महत्वपूर्ण कारक था। क्रांतिकारी सेना अपने उत्तरी अभियान में जहां-जहां से निकली, उसे मज़दूरों और किसानों का सक्रिय समर्थन मिला। जब सेना ने कूच किया तो कैंटन-मेंगकांग हड़ताल में हिस्सा ले चुके मजदूरों ने परिवहन, प्रचार और चिकित्सा एककों का आयोजन किया, हज़ारों लोगों ने सेना के साथ प्रयाण भी किया। हुनान और हुपे में भी मज़दूरों और किसानों ने इन प्रांतों पर कब्ज़े को संभव करने में काफी साथ दिया।

संयुक्त मोर्चे के दौरान क्रांतिकारी विकास अपने शीर्ष पर शंघाई के साहसिक मज़दूर विद्रोह में पहुंचा। मज़दूर विद्रोहों की शृंखला में यह तीसरा विद्रोह था जिसकी शुरुआत 21 मार्च 1927 को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में एक आम हड़ताल के आह्वान के साथ हुई। अगले दिन तक शहर क्रांतिकारियों के हाथों में था; और यह काम जनरल च्यांग काई शेक की सेना के शहर में घुसने या एक भी गोली चलने से पहले हो चुका था।

मज़दूरों ने रेलगाड़ियों को रोक दिया था, पानी और बिजली की आपूर्ति काट दी थी, पुलिस मुख्यालय, दूरभाष और तारघर पर कब्जा कर लिया था। समूचे मज़दूर वर्ग के समर्थन के बूते पर चीन के सबसे बड़े व्यापारिक और आद्यौगिक शहर को ठप्प कर दिया गया था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने शंघाई के नागरिकों की एक विशाल रैली आयोजित की और शंघाई जनता की सरकार का निर्वाचन किया। अंततः, 24 मार्च, 1927 को नानकिंग को मुक्त करा लिया गया।

32.7 विघटन और दमन

संयुक्त मोर्चे के ढांचे के भीतर क्रांतिकारी आंदोलन के इस शीर्ष के परिणामस्वरूप 24 मार्च, 1927 को खुद मोर्चे का ही विघटन हो गया, इंगलैंड, अमेरिका, जापान और फ्रांस के युद्धपोतों ने नानकिंग पर बमबारी करके 2,000 सिपाहियों और नागरिकों को या तो मार दिया या घायल कर दिया। यह घटना चीनी क्रांति को कुचलने के लिए साम्राज्यवादी देशों के व्यापक स्तर के और संकल्पित हस्तक्षेप की शुरुआत की द्योतक थी।

दूसरी ओर, इस जनप्रिय आंदोलन के आगे बढ़ने के साथ-साथ, एक दक्षिणपंथी, प्रतिक्रियावादी शाखा भी क्वोमिनतांग के भीतर उभर आयी थी जो इन आंदोलनों के विरुद्ध थी। सन यात सेन की 1925 में मृत्यु हो चुकी थी, उसकी मृत्यु के बाद च्यांग काई शेक क्वोमिनतांग के सबसे महत्वपूर्ण नेता के रूप में उभरा। च्यांग काई शेक सेना का प्रधान सेनापति भी था, इसलिये उसकी राजनीतिक स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। उसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जनप्रिय आंदोलनों के विरोधियों का साथ देने का निर्णय लिया और दक्षिणपंथी शाखा का नेतृत्व संभाल लिया। 12 अप्रैल 1927 को उसने शंघाई के मज़दूर संघों पर अचानक हमला करवा दिया। मज़दूरों के हथियार जब्त कर लिये गये और हज़ारों की संख्या में उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। इसके बाद दूसरे क्षेत्रों में भी उसी प्रकार की पाशविक घटनाएं हुईं। हड़तालों पर पाबंदी लगा दी गयी, किसान संघों को समाप्त कर दिया गया, साम्यवादियों की धर-पकड़ शुरू हो गयी, पीकिंग स्थित सोवियत दूतावास पर हमला किया गया और सोवियत सलाहकारों को निकाल बाहर किया गया। 15 जुलाई, 1927 को, क्वोमितांग ने क्वोमिनतांग से साम्यवादियों के औपचारिक निष्क्रसन की घोषणा कर दी। साम्यवादियों को पाशविक बल के आगे बाध्य होकर भूमिगत होना पड़ा। निहत्थी क्रांतिकारी सेनाएं इस मार-काट का जवाब नहीं दे पायीं। एक बार फिर साम्राज्यवादी शक्तियों और चीन के सामंती और पूंजीवादी तबकों के बीच एक राजनीतिक और आर्थिक सांठगांठ कायम हो गयी। क्वोमिनतांग के भीतर इस सांठगांठ की प्रतीक "दक्षिणपंथी शाखा" चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के लिये बहुत अधिक शक्तिशाली साबित हुई।

32.8 विघटन के कारण

संयुक्त मोर्चे के टूटने और इस चरण पर क्रांतिकारी सेनाओं के पराजित होने के कारण संयुक्त मोर्चे के अपने अनुभवों और उसके भीतर चलने वाली होड़ में निहित थे, संयुक्त मोर्चे की एक धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले क्वोमिनतांग के सदस्यों में केवल छोटे बूर्जुआ (निम्न मध्यम और मध्यम वर्ग) ही नहीं बल्कि जमींदार, शहरी सौदागर और वित्तदाता वर्ग के लोग भी शामिल थे जो क्रांतिकारी सेनाओं के बनाये क्रांतिकारी कार्यक्रम के विरुद्ध थे क्योंकि इस कार्यक्रम का अर्थ होता था विद्यमान सामाजिक व्यवस्था में बदलाव। वास्तव में, संयुक्त मोर्चे की आर्थिक सफलता से उन हताश तत्वों के छिपे विरोध सामने आ गये जिन्हें राष्ट्रीय एकीकरण के कार्यक्रम ने अस्थायी तौर पर एक कर रखा था।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि संयुक्त मोर्चा कोई स्थिर गठबंधन नहीं था। इसके अलग-अलग घटक युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुट होते हुए भी सामाजिक मुद्दों पर अलग-अलग दृष्टिकोण रखते थे। इससे पहले संयुक्त मोर्चे में वामपंथी और साम्यवादी घटक मजबूत और विकासशील थे, लेकिन वे इतने मजबूत नहीं थे कि किसी आमूल सामाजिक बदलाव को सुनिश्चित कर सकते। जमीदारों और उद्योगपतियों के लिये मज़दूर और किसान साम्राज्यवादियों से उनको कम से कम अपने विशेषाधिकारों के लिये तो कोई खतरा नहीं था। इसलिये, जब मज़दूरों और किसानों के आंदोलनों ने जोर पकड़ा तो, उसी अनुपात में चीन के विशेषाधिकार प्राप्त तबकों का प्रतिनिधित्व करने वाली दक्षिणपंथी शाखा चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और मज़दूरों और किसानों के विरोध में साम्राज्यवादियों और युद्ध सामंतों के शिकंजे में आ गयी।

क्रांतिकारी आंदोलन के मुख्य आधार, बड़े शहर, अपमान संधियों की व्यवस्था के भी मुख्य आधार थे, क्रांति का विरोध भी शहरों में बहुत तगड़ा था। च्यांग काई शेक को समर्थन देने वाली सशस्त्र सेनाओं और सामाजिक सेनाओं का भी जमाव यहीं था। मज़दूरों की हड़तालों की सफलता ने ही चीनी बूर्जुआ वर्ग को अपने 1924 के गठबंधन की उपादेयता पर संदेह प्रकट करने को बाध्य कर दिया। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि 1924 के कार्यक्रम के पीछे चलने वाले राष्ट्रवादी आंदोलन ने उन सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के स्तंभों पर खुल कर प्रहार किया जिन पर विदेशी प्रभुत्व टिका हुआ था।

विघटन का कारण बनने वाला एक निर्णायक मुद्दा कृषि का मसला भी था, सामंतवाद के विरुद्ध ग्रामीण अंचलों में होने वाला संघर्ष एक कटु वर्ग संघर्ष था। जमीदारों ने किसान आंदोलन पर प्रहार करने में कोई देरी नहीं की और क्वोमिनतांग की अफसर कोर के वे तबके भी जल्दी ही उनके साथ हो लिये जो उसी सामाजिक वर्ग से थे, वे कृषि सुधारों के विरोध में खुल कर सामने आ गये। मज़दूरों और किसानों के विरोध करने या संघ बनाने के अधिकारों पर पाबंदी लगाने के लिये कानून लागू कर दिये। क्वोमिनतांग भी अब राजनीतिक जनतंत्र की पोषक नहीं रह गयी। कामगारों के आंदोलनों की संभावी शक्ति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ अपने संबंधों का इस्तेमाल करके, क्वोमिनतांग अब राजनीतिक दृष्टि से एक मजबूत स्थिति में था। उसके नियंत्रण में अच्छा खासा क्षेत्र था और सामंतों से मुक्त पश्चिमी ताकतों के साथ उसके संबंध भी थे। उसे लगा कि वह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी मज़दूरों और किसानों के बिना भी अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता था। क्वोमिनतांग भविष्य के घटनाक्रम को जो दिशा देना चाहता था उसमें सामाजिक व्यवस्था को बदलना शामिल नहीं था।

क्वोमिनतांग के हाथों जनतांत्रिक शक्तियों पर प्रहार के साथ ही पहले संयुक्त मोर्चे का अंत हो गया। चीनी क्रांति को तो एक जबरदस्त धक्का लगा, लेकिन संघर्ष का यह अनुभव कीमती रहा। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को कई राजनीतिक सबक सीखने को मिले। असफलता के कारणों पर व्यापक बहस हुई और उनका विश्लेषण भी किया गया। सच में तो खुद असफलता ने ही क्रांतिकारी शक्तियों के पुनर्गठन और क्रांति के लिये एक नयी नीति के निर्माण की प्रक्रिया को गति दी।

बोध प्रश्न 2

1) लगभग 10 पंक्तियों में "संयुक्त मोर्चे" की उपलब्धियों की विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) संयुक्त मोर्चे का विघटन किस वर्ष हुआ?
   क) 1925
   ख) 1926
   ग) 1927
   घ) 1928
3) लगभग 10 पंक्तियों में संयुक्त मोर्चे की विफलता के कारणों का विवेचन कीजिये।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

32.9 सारांश

संयुक्त मोर्चे का एक सामाजिक शक्ति के रूप में उदय उसके घटकों की रणनीति अधिक थी, वैचारिक गठबंधन कम। मज़दूर आंदोलन और बूर्जुआ वर्ग के बीच क्वोमिनतांग की पहल पर होने वाले संयुक्त प्रयासों का ध्येय एक ही था – और वह था युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करना। इस तरह, संयुक्त मोर्चा साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध, साम्राज्यवादियों और राष्ट्रवादियों का एक गठबंधन था।

राष्ट्रीय मुक्ति और एक जनतांत्रिक राज्यतंत्र की स्थापना इस संयुक्त रणनीति के महत्वपूर्ण तत्व थे, इस संयुक्त मोर्चे ने शुरुआत में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्वोमिनतांग दोनों गुटों के हितों को साधा। लेकिन, आगे चल कर चीन में अनेक और भी बड़े जनप्रिय आंदोलनों के विकास ने वास्तव में इस मोर्चे की बुनियाद को ही हिला कर रख दिया और इसके पीछे के समान उद्देश्य को भंग कर दिया। 1925-26 के बीच उठने वाले जनप्रिय आंदोलन कैंटन में क्रांतिकारी आधार की मजबूती से जुड़ गये और दक्षिणी सेनाओं ने युद्ध सामंतों के विरुद्ध जो विरोधात्मक रवैया दिखाया उससे इस गठबंधन के सांगठनिक ढाँचे का संकट और भी गहरा हो गया। क्रांतिकारी लहर की जीत ने दक्षिणपंथी शाखा की शक्तियों में असंतोष भर दिया। इस तरह, भीतर एक विघटन हुआ जो बाहर 1927 में वूहान सरकार के पतन के रूप में सामने आया, वास्तव में यह संयुक्त मोर्चे के पूरे सांगठनिक ढांचे के लिये ही घातक साबित हुआ। क्वोमिनतांग ने मज़दूरों, किसानों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति एक दमनकारी नीति अपनायी।

32.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) इस चरण में, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय मुक्ति था, कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रवाद के विकास के साथ और भी मजबूत हो कर उभरी। वे एक जनतांत्रिक आंदोलन के पोषक थे। देखिये उपभाग 32.2.1
2) ग

3) संयुक्त मोर्चे का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष था युद्ध सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरोधी एक क्रांतिकारी संगठन के रूप में ववोमिनतांग का उदय। पांच सदस्य प्रधान परिषद् के लिये चुने गये और 24 का निर्वाचन केंद्रीय समिति के लिये हुआ। देखिये भाग 32.4

बोध प्रश्न 2

1) साम्राज्यवादी शक्तियों और युद्ध सामंतवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे के संघर्ष को अत्यधिक सफलता मिली। चीन में राष्ट्रवादी सेना का गठन एक अच्छी-खासी उपलब्धि थी क्योंकि इसने युद्ध सामंती शक्तियों से लड़ने में मदद की। देखिये भाग 32.5.
2) ग
3) कटु अनुभव और राजनीतिक दबाव ने संयुक्त मोर्चे की विफलता के लिये पर्याप्त कारण जुटा दिये। संगठन की एक धारा ने संयुक्त मोर्चे के क्रांतिकारी कार्यक्रमों के प्रति अपनी असंतुष्टि प्रदर्शित की। देखिये भाग 32.8

इकाई 33 क्यांगसी सोवियत अनुभव

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 पृष्ठभूमि
33.3 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा एक नयी रणनीति का विकास
33.4 उनके प्रारंभिक उपाय और क्रांतिकारी कार्य
33.5 क्यांगसी सोवियत गणतंत्र
33.6 क्यांगसी अड्डे में नया राजनीतिक संगठन
33.7 लाल सेना की भूमिका
33.8 राजनीतिक चेतना और सामाजिक प्रगति
33.9 शहरी वातावरण
33.10 पराजय
33.11 सारांश
33.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह समझ सकेंगे कि:

- क्यांगसी सोवियत ने क्या नीतियां अपनायी और ये नीतियां क्वोमिनतांग की नीतियों से किस प्रकार भिन्न थी,
- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने नेतृत्व में एक देशव्यापी किसान आंदोलन चलाने के लिये क्या रणनीति अपनायी,
- किस प्रकार क्वोमिनतांग और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच होने वाला संघर्ष दो अलग-अलग समाजों के निर्माण के लिये होने वाला संघर्ष था,
- क्यांगसी सोवियत ने एक जनतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था कायम करने के लिये क्या प्रयास किये, और
- क्यांगसी सोवियत की विफलता के क्या कारण थे।

33.1 प्रस्तावना

जिस ढंग से 1927 में संयुक्त मोर्चे का विघटन हुआ उससे यह बिल्कुल सुनिश्चित हो गया था कि आने वाले वर्षों में चीनी राजनीति का विकास दो बिल्कुल अलग-अलग और स्पष्ट धाराओं में होगा। संयुक्त मोर्चे के दौर में क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों ही राजनीतिक बदलाव और सामाजिक रूपांतरण के पक्ष में थे। विघटन के बाद, नानकिंग स्थित चीनी सरकार का प्रतिनिधि, क्वोमिनतांग, स्थापित व्यवस्था का एक माध्यम बन गया, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी क्रांतिकारी बदलाव के लिए संघर्ष करती रही, अमूल कृषि सुधार इस बदलाव का प्रमुख आधार था, इसके अतिरिक्त उसने एक रणनीति अपनायी जिसमें उन विशिष्ट क्षेत्रों या अड्डों पर नियंत्रण शामिल था जहां उसकी नीतियों को लागू किया जा सकता था। इसलिये, व्यवहारिक दृष्टि से जैसा स्वाभाविक था, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नियंत्रण वाले क्षेत्रों का सामाजिक इतिहास नानकिंग स्थित क्वोमिनतांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों से भिन्न था। 1947 में समूचे चीन के साम्राज्यवादी प्रभुत्व से मुक्त हो जाने तक यही स्थिति रही। मुक्ति संघर्ष के विभिन्न चरणों में चीन में साम्यवादी आंदोलन का भी विकास होता रहा। राष्ट्रीय मुक्ति और साम्यवादी विजय दो जुड़वां उपलब्धियां थीं, और साम्यवादियों ने जैसा सोचा था उसी के अनुसार सामाजिक रूपांतरण राष्ट्रीय मुक्ति के साथ-साथ

ही आया। 1928 से 1932 तक साम्यवादियों के नियंत्रण में रहने वाला एक लाल "अड्डा" या क्षेत्र था क्यांगसी सोवियत। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों के क्रियान्वयन की दिशा में होने वाला यह पहला प्रयोग था। चीनी जनता को इससे जो राजनीतिक अनुभव हासिल हुआ और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने इससे जो सबक सीखे उनके कारण इसका अपना महत्व है।

इस इकाई में हम क्यांगसी सोवियत अड्डे के निर्माण की पृष्ठभूमि पर विचार करेंगे, जिसमें निम्नलिखित बातें शामिल हैं:

- क्वोमिनतांग के साथ पहले संयुक्त मोर्चे से चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को मिले सबक,
- मज़दूर और किसान आंदोलन, और
- चीनी बूर्जुआ वर्ग की स्थिति में सापेक्ष बदलाव।

इस संदर्भ में इस इकाई में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर इस अनुभव को लेकर चलने वाली बहस पर भी विचार किया गया है। इस बात पर भी विचार किया गया है कि इन बहसों ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राजनीतिक दृष्टिकोण में आने वाले बदलाव में किस प्रकार योगदान दिया।

इस इकाई में इस बात पर महत्व दिया गया है कि क्यांगसी सोवियत की नीतियां क्या थीं और वे क्वोमिनतांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में क्वोमिनतांग की नीतियों से किस प्रकार भिन्न थीं।

इस इकाई में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नीतियों में विद्यमान जनप्रिय तत्वों की विवेचना भी की गयी है। इसके साथ क्यांगसी सोवियत अनुभव के सामाजिक आधार के अंतर को भी रेखांकित किया गया है। क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच चलने वाले संघर्ष में दो विभिन्न प्रकार के समाजों के निर्माण के लिए था, अर्थात् एक ऐसा चीन जो:

- स्थापित व्यवस्था को जैसा का तैसा रखते हुए एकीकृत, स्वतंत्र और स्वाधीन होगा, और दूसरा
- स्थापित व्यवस्था में पांव जमाये निहित स्वार्थों के विरुद्ध विरोध कर देगा।

क्यांगसी सोवियत इनमें से दूसरे विकल्प का प्रतीक था। इस इकाई में उसकी पराजय के विषय में और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने भविष्य के लिये जो सबक सीखे उनकी भी चर्चा की गयी है।

33.2 पृष्ठभूमि

1927 में वूहान की वामपंथी सरकार की सत्ता ढह गयी परन्तु सैन्यवादियों की सत्ता उत्तरी चीन में जैसी की तैसी बनी रही। फरवरी 1928 में दूसरे उत्तरी अभियान के बाद जाकर ही क्वोमिनतांग अपना नियंत्रण बना पाया, पीकिंग का नाम बदल कर बीजिंग रख दिया गया, और केंन्द्रीय सरकार नानकिंग में कायम कर दी गयी। क्वोमिनतांग का राजनीतिक और सामाजिक रूप काफी बदल गया। 50 प्रतिशत सैनिकों के अतिरिक्त उसमें 21 प्रतिशत अधिकारी थे और 10 प्रतिशत भूस्वामी। संगठन के भीतर जनतांत्रिक कार्यप्रणाली समाप्त हो गयी। क्षेत्रों पर इसका नियंत्रण सैनिक शक्ति, और चीन स्थित पश्चिमी राजनीतिक और सैनिक तंत्र और युद्ध सामंतों जैसी क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों के साथ समझौते पर आधारित था। जहां तक विचारों का सवाल है, च्यांग काई शेक खुले आम पारंपरिक कन्फयूशियसी गुटों के पक्ष में बोल रहा था। जिसका सीधा मतलब यह था कि वर्तमान स्थापित व्यवस्था समाज में जारी रहे। इस समय सन यात सेन के बुनियादी सिद्धांतों की व्याख्या संयुक्त मोर्चे के दौर की तुलना में कहीं अधिक रूढ़िवादी ढंग से हो रही थी, और फासीवादी इटली को अनुसरणीय उदाहरण माना जा रहा था।

अब मुख्य शत्रु साम्यवादियों को समझा जा रहा था क्योंकि मजदूरों और किसानों के आंदोलन को बेदर्दी के साथ दबाया गया। उदाहरण के लिये:

- जनवरी और अगस्त 1928 के बीच एक लाख मज़दूर और किसान मार डाले गये,
- मज़दूरों ने संयुक्त मोर्चे के दौर में जो आर्थिक लाभ और जनतांत्रिक अधिकार हासिल किये थे वे उनसे छीन लिये गये,

- उनके पारिश्रमिक में जबरदस्त कटौती कर दी गयी,
- काम के घंटे बढ़ा दिये गये और काम की स्थितियाँ बदतर हो गयीं, और
- साम्यवादियों के नेतृत्व वाले श्रमिक संघों पर पाश्विक प्रहार किये गये और उन्हें भूमिगत हो जाने को बाध्य कर दिया गया।

इस दमन के बावजूद मज़दूरों की हड़तालें चलती रहीं। लेकिन, वे केवल आर्थिक मुद्दों तक सीमित, असंगठित और व्यापक तौर पर रक्षात्मक ढंग की रही। संयुक्त मोर्चे के दौर की तुलना में, उनकी गतिविधियां दबी दबी सी रही।

यही हाल किसानों का भी रहा। क्वांगतुग, हूनान, हूये और क्यांगसी के किसान आंदोलन पहले ही एक जनव्यापी आंदोलन और सशस्त्र संघर्ष का रूप धारण कर चुके थे, कुछ क्षेत्रों में अब किसानों ने अपनी सरकारें कायम करने की कोशिश भी की, लेकिन जमींदारों के संगठित आतंक का दबाव बने रहने के कारण आंदोलन बहुत आगे नहीं बढ़ पा रहा था। इसके अतिरिक्त चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और क्रांतिकारी शक्तियों की शक्ति विभिन्न जनपदों में अलग-अलग होने के कारण किसान आंदोलन का विकास प्रत्येक जगह समान रूप से नहीं हो रहा था।

साम्यवादियों के दमन के बावजूद, क्वोमिनतांग का शासन भी अस्थिर ही था। गृह युद्ध और स्थानीय संघर्ष की स्थिति निरंतर बनी रही। प्रथम विश्व युद्ध के बाद विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों ने जो समझौते किये थे उनमें बाजारों की विकट समस्याओं के कारण पहले ही तनाव बना हुआ था। पूर्व, विशेषकर चीन, का बाजार किसी एक विदेशी ताकत के नियंत्रण में नहीं था, और वह 1927 के बाद विभिन्न ताकतों के बीच झगड़े तेज होने का कारण बना। चीनी युद्ध सांमत और क्वोमिनतांग इन झगड़ों में पड़े बिना नहीं रह पाये, अगस्त 1927 और 1930 के बीच, छह बड़े गृह युद्ध लड़े गये। च्यांग काई शेक अंततः विजेता के रूप में उभरां क्योंकि उसके पास अधिक श्रेष्ठ सेना और अमेरिका का समर्थन था।

लेकिन चीन के स्वाभाविक हितों का समझौता करने वाली ये राजनीतिक शक्तियाँ जनता से पूरी तौर पर अलग-थलग पड़ गयी थीं। उनके शासन और चीनी जनता के हितों के बीच के अंतर्विरोध प्रतिदिन प्रखर होते जा रहे थे, संयुक्त मोर्चे ने राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों का जो पुनर्गठबंधन किया था उसमें एक नये ध्रुवीकरण की स्थिति बन रही थी। यह नया ध्रुवीकरण क्वोमिनतांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच, साम्राज्यवादी शक्तियों और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाले मज़दूरों और किसानों के बीच विकट राजनीतिक संघर्ष के रूप में परिलक्षित हो रहा था। जिन साम्यवादियों की धर-पकड़ हुई, जिन्हें सजा दी गयी और जिन्हें एक संगठन के रूप में भूमिगत होना पड़ा, वे ही साम्यवादी अब मज़दूर वर्ग और शहरों से कट गये थे। उन्हे दूर-दराज के और पहाड़ी देहातों में शरण लेने को बाध्य कर दिया गया। इसी पृष्ठभूमि में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी शक्ति वापस अर्जित की. संघर्ष के तरीकों को बदला और उसके बाद सोवियत "लाल" अड्डे को कायम किया।

33.3 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा एक नयी रणनीति का विकास

सन् 1927 में कैंटन और शंघाई में मज़दूर वर्ग के विद्रोहों की पराजय के बाद, और संयुक्त मोर्चे के विघटन के साथ, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने यह निष्कर्ष लिया कि किसान के बीच किया गया काम अत्यधिक फलदायी साबित हुआ था। हूनान और क्वोमिनतांग की सफलताओं को अपना आधार बनाते हुए चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने "किसान क्रांति" की नयी रणनीति को अपनाया। उसका सोचना था किः

- रूस के विपरीत, चीन की क्रांति देहातों से शहरों की ओर जायेगी, शहरों से देहातों की ओर नहीं,
- दूसरी साम्यवादी पार्टियों के विपरीत, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा पार्टी न होकर किसानों की पार्टी होगी, और
- चीन में राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक रूपांतरण का आधार किसानी राष्ट्रवाद होगा।

संक्षेप में, यह नयी रणनीति चीन में किसान को क्रांति की अग्रणी शक्ति के रूप में स्वीकार करती थी। उस संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि संयुक्त मोर्चा "मास्को अनुदायी" था (क्योंकि यह सोवियत नेतृत्व और

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की सलाह पर था) और नयी रणनीति ''मास्को अनुदायी'' नीति से अलग होने की प्रतीक थी। यह क्रांति का एक विशिष्ट ''चीनी मार्ग'' था। किसान वर्ग पर माओ त्से-तुंग के लेखों, विशेषकर 1926 में लिखित ''हूनान में किसान आंदोलन पर रपट'', को इस नयी नीति का आधार बताया जाता है।

फिर भी, स्थिति इतनी सरल नहीं थी। पहले तो, प्रत्येक नया क्रांतिकारी संघर्ष किसी पूर्ववर्ती संघर्ष की नकल नहीं हो सकता, और 1927 से पहले चीनी साम्यवादी या सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी भी ऐसा नहीं सोचते थे। इसके अतिरिक्त, ''मास्को अनुयायी नीति'' या ''चीनी मार्ग'' जैसा कोई स्पष्ट विभाजन भी नहीं था। चीनी साम्यवादी जिन सवालों या मसलों पर बहस करते थे वे वही मसले थे जिन पर रूसी साम्यवादियों ने अपने संघर्ष के दौरान बहस की थी। इनमें से कुछ मसले इन मुद्दों से संबंधित थे:

- अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था या ढांचे में उनके देश की भूमिका और स्थान,
- उनके देशों में राज्य का वर्ग चरित्र
- देश में विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों का यह संबंध और संतुलन,
- पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा उनके समाजों का पिछड़ापन,
- उनके क्रांतिकारी आंदोलन पर उसके विभिन्न चरणों में इस पिछड़ेपन के परिणाम, और
- इस मुद्दे पर उनके विचार-विमर्शों में किसान मज़दूर गठबंधन का मसला एक महत्वपूर्ण पहलू होना।

जब चीनी साम्यवादी (या सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी भी) चीन में क्रांतिकारी बदलाव के लिये अपने कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते थे तो रूसी अनुभव की भिन्नताओं और समानताओं पर गौर करते थे – ठीक वैसे ही जैसे रूसी साम्यवादियों ने उससे पहले अपनी क्रांति करते समय रूस और पश्चिमी यूरोपीय देशों के बीच भिन्नताओं और समानताओं पर गौर किया था। या, ठीक वैसे ही, जैसे जर्मनी में पूंजीवादी विकास के अध्येताओं ने इंगलैंड और जर्मनी में आर्थिक विकास के बीच भिन्नताओं और समानताओं पर गौर किया था। जैसे इंगलैड पूंजीवादी विकास का अध्ययन करने के लिए एक पक्का आदर्श था, ठीक उसी तरह सोवियत रूस सफलतापूर्वक समाजवादी क्रांति करने वाला पहला और एकमात्र देश था। इसलिए, वह उन सभी के लिये एक आदर्श था जिनका अंतिम लक्ष्य अपने देशों में समाजवाद का निर्माण करना था।

चीनी साम्यवादियो ने यह तो गौर किया ही कि रूसी अनुभव की तरह उनके देश का सामान्य पिछड़ापन एक कमजोर बूर्जुआ वर्ग का कारण बना, साथ ही उन्होंने यह देखा कि उनके पास साथ देने वाला सोवियत संघ जैसा एक विशाल देश था जबकि रूस अपनी क्रांति के समय अकेला ही था। उन्होंने यह भी देखा कि रूस तो अपनी क्रांति से पहले एक साम्राज्यवादी देश था, जबकि चीन एक उपनिवेश था। इन दो महत्वपूर्ण कारकों ने क्रांति की उनकी रणनीति में नये आयाम जोड़े।

फिर भी, चीनी साम्यवादियों ने क्वोमिनतांग के साथ सयुक्त मोर्चे के अपने अनुभव से जो सबक लिये वे उनकी राजनीतिक गतिविधि की भावी दिशा तय करने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारक रहे।

उन्होंने यह महसूस किया कि क्रांति के पहले-जनतांत्रिक-चरण, अर्थात् राष्ट्रीय एकीकरण और जनतंत्र के लिये होने वाले संघर्ष, का नेतृत्व वर्ग के हाथों में ही होना चाहिये, माओ त्से तुंग ने हूनान आंदोलन पर अपनी रपट में किसान वर्ग के निर्णायक, और पूरी तौर पर आवश्यक, रूप से इसमें शामिल होने की बात कही। साथ ही माओ ने उन अनेक सामाजिक, राजनीतिक, वैचारिक और धार्मिक बेड़ियों को भी रेखांकित किया जो किसानों को अंधकार और पिछड़ेपन से जकड़े हुए थीं। माओ ने भी यह समझ लिया था कि बेहद दमन के बावजूद मज़दूर वर्ग के पास अपने राजनीतिक पिछड़ेपन को दूर करने के कहीं आसान अवसर थे, क्योंकि उनके पास शहरों में संगठन के लिये नये विचारों और अवसरों के संपर्क में आने के लिये कहीं अनुकूल स्थितियाँ थीं।

इसलिये, यह मान लेना गलत होगा कि माओ किसान वर्ग के अग्रणी शक्ति होने की बात सोचता था, चीनी साम्यवादी भी यह महसूस करते थे कि जहां तक समाजवाद के उनके अंतिम लक्ष्य का संबंध था, किसान वर्ग निजी संपत्ति की समाप्ति के लिये होने वाले किसी भी आंदोलन में नेतृत्वकारी भूमिका नहीं ले सकता था। उसका बहुत अधिक दांव पर था। और उद्योग के क्षेत्र में निजी संपत्ति की समाप्ति करने में जितना समय और संघर्ष लगता था, उससे कहीं लंबा समय और संघर्ष संपत्ति के समूहीकरण की समूची प्रक्रिया में लगने वाला था। ऐसा इसलिये था क्योंकि मज़दूर वर्ग का संपत्ति पर कोई दावा नहीं था। उसका दावा तो

केवल उसकी मेहनत के पूरे फल पर था। इसलिये, जब चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने किसान वर्ग की ओर अपना ध्यान मोड़ा तो, वह अपनी पहले की अपेक्षा में केवल भूल-सुधार कर रही थी : हूनान के प्रयोगों के समय तक चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने केवल मज़दूर वर्ग पर ही ध्यान केंद्रित किया था।

संयुक्त मोर्चे के दौर के बाद के समय में जो किसान वर्ग पर जोर दिया गया उसका आधार वास्तव में खुद संयुक्त मोर्चे के अनुभव से आने वाली मान्यता थी, यह बात महसूस की गयी किः

- अकेला मज़दूर वर्ग इतना मजबूत नहीं था कि वह जनतांत्रिक क्रांति कर पाता, और
- बूर्जुआ वर्ग की डांवाडोल स्थिति को देखते हुए मज़दूर-किसान गठबंधन जनतंत्र और सामजिक रूपांतरण की एक मात्र बुनियाद थी — जैसा कि रूस में हुआ था।

वास्तव में, चीन में सामंतवाद-विरोधी कामों में जमींदारी के विरुद्ध, और कृषि सुधार के पक्ष में, होने वाले संघर्ष की जो स्थिति थी उसमें क्रांति की जीत केवल तभी संभव हो सकी जब किसानों को क्रांतिकारी गठबंधन के एक भिन्न घटक के रूप में मिलाया जा सका।

यह भी महसूस किया गया कि अब के बाद क्रांतिकारी संघर्ष एक सशस्त्र संघर्ष होना चाहिये। क्रांतिकारियों को 1927 में इसलिये पराजय का मुंह देखना पड़ा था क्योंकि उनके पास अपनी सशस्त्र सेनाएं नहीं थीं, क्रांतिकारियों के शत्रु वर्ग में अब केवल पुराने युद्धनेता ही नहीं थे बल्कि क्वोमिनतांग के सैनिक भी थे, इसलिये अगर इस शत्रु को पराजित करना था तो यह महत्वपूर्ण था कि एक नयी जन सेना का गठन किया जाये। इसका गठन मज़दूरों और किसानों में से ही किया जा सकता था, लेकिन प्राथमिक तौर पर किसानों में से, जो चीन में बहुसंख्यक थे, वास्तव में, कृषि सुधार की गतिशीलता के लिये किसान वर्ग पर निर्भरता आवश्यक थी।

इसके अतिरिक्त, चीन के अभी तक विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों और युद्धनेताओं के प्रभाव क्षेत्रों में बंटे होने के कारण, भौगोलिक क्षेत्रों, और इन क्षेत्रों में शत्रुओं के अलग-थलग होने, के संदर्भों में यह संघर्ष अक्सर स्थानीय रंग ले लेता था। राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल केवल स्थानीय स्तर पर और विभिन्न स्थानों में इन संघर्षों के सफल या असफल होने कि स्थितियों में ही हो सकता था। इस तरह के संघर्ष की तार्किकता को देखते हुए, हड़ताल की जगह छापामार युद्ध राजनीतिक कार्यवाही का प्रमुख रूप हो गया।

इसके परिणामस्वरूप विभिन्न कथित "लाल अड्डों", "सोवियत अड्डों" "मुक्त क्षेत्रों" और "क्रांतिकारी अड्डों", की स्थापना हो गयी। पहले लाल अड्डे दक्षिण में, दो या तीन प्रांतों की सीमाओं के भीतर दूर-दराज के और लगभग अगम्य क्षेत्रों में कायम हुए। पहले पहल तो, इन अड्डों को केवल सरकारी नियंत्रण के क्षेत्रों से दूर रह कर एक कार्यसाधन, जीवित रहने और शक्ति फिर से प्राप्त करने के एक साधन के रूप में देखा गया। लेकिन बाद में इसने एक नीति का रूप ले लिया जिसने अंततः 1949 में समूचे चीन का साम्यवादियों के नियंत्रण में आना संभव कर दिया।

संघर्ष के इन नये तरीकों पर रातों रात सहमति नहीं बन गयी। ये तरीके तो 1924-1927 के दौरान होने वाले मजदूरों और किसानों के आदोलनों के, और पराजय के कारणों के क्रमबद्ध विश्लेषण का परिणाम थे। साम्यवादियों को देहातों और शहरों में वर्ग संबंधों का कहीं अधिक व्यापक विश्लेषण करना पड़ा। उन्हें निम्नलिखित बातें भी सीखनी पड़ीं:

- बूर्जुआ वर्ग के विभिन्न तबकों में भेद करना,
- अपनी नीतियों के लिये कहीं अधिक व्यापक समर्थन बनाना,
- व्यापक समर्थन को ध्यान में रखते हुए नीतियां बनाना, इत्यादि।

उन्होंने निम्न बिंदुओं पर व्यापक बहस कीः

- मज़दूर वर्ग और किसान वर्ग के बीच गठबंधन का ठीक-ठीक क्या रूप होना चाहिये,
- शहरों और देहातों में अपनाये जाने वाले संघर्ष के विभिन्न रूप, और
- विभिन्न चरणों में मज़दूर वर्ग और किसान वर्ग का सापेक्ष महत्व।

33.4 उनके प्रारंभिक उपाय और क्रांतिकारी कार्य

1927 में क्वोमिनतांग द्वारा मज़दूरों और किसानों के दबाए जाने के उपरान्त माओ ने अक्तूबर 1927 में चिंग कांगशान पर्वतों में एक क्षीण सेना की सहायता से पहला क्रांतिकारी अड्डा स्थापित किया। क्रांतिकारी सेना का पुनर्गठन "मज़दूरों और किसानों की प्रथम डिविजन" के रूप में किया गया।

इस सेना के अन्तर्गत कुछ शहरों में हो रहे दमन से बचे मज़दूर, कुछ युवा खान मज़दूर, रेल कर्मचारी, स्थानीय किसान और कुछ ऐसे सैनिक शामिल थे जो क्वोमिनतांग सेना को छोड़ आए थे।

यह सेना एक नये किस्म की सेना थी और भाड़े के सैनिकों से भिन्न थी। इस का समर्थन ऐसे लड़ाकू किसानों के द्वारा किया जाता था जिनकी सहायता से सेना एवं आम जनता के बीच सम्पर्क बनाये रखा जा सका। नयी सेना को एक ऐसे सिद्धान्त के अनुसार संगठित किया गया जिसके अन्तर्गत आम जनता को सेना का मूल आधार एवं समर्थक बनना था। इसी ने ही "लाल क्षेत्रों" के राजनीतिक तन्त्र के मूलभूत आधार का निर्माण किया था। सूचना, भोजन की आपूर्ति, स्वच्छता बनाये रखना तथा घायलों की देखभाल करना जैसे आदि कार्यों को स्थानीय जनता के द्वारा ही किया जाता था। भूमि वितरण के जिन उपायों को अपनाया गया उनके फलस्वरूप किसानों का समर्थन प्राप्त हो सका। इस तरह के अनुभव के कारण सैनिकों एवं कृषकों के बीच राजनीतिक चेतना और अधिक सुदृढ़ हुई और इस प्रक्रिया के कारण जहाँ एक ओर चीनी जनता के बीच नवीन विचारों तथा अधिक विकसित परिकल्पना को लागू करने में मदद मिली वहीं इन दोनों को सामाजिक रूपांतरण करने एवं साम्यवादियों के प्रभाव क्षेत्रों को बढ़ाने के लिये भी शामिल किया जा सका। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सशस्त्र विद्रोह को किसान आंदोलन के साथ एकीकृत करने में सहायता मिली। इसको साकार करने में चू-तेह ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लाल क्षेत्रों की स्थापना के लिये चार कार्यों को निर्णायक माना गया था:

- कृषि क्रांति को,
- पीपुल्स आर्मी को शक्तिशाली बनाने को,
- मज़दूर एवं किसान सरकार की स्थापना करने को, और
- कम्युनिस्ट पार्टी के प्रसार को।

इन सभी कार्यों को पूरा करने का काम चिंग क्यांगशान पहाड़ियों के क्षेत्र में किया गया। रूसी मॉडल के अनुरूप मज़दूरों एवं किसानों के सोवियतों का गठन किया गया। इसके अंतर्गत:

- एक जनसभा में मज़दूरों एवं किसानों की सरकार का चुनाव किया गया और सभी भूमि का अधिग्रहण कर उसे पुनः वितरित किया गया,
- मज़दूरों तथा किसानों की एक सशस्त्र सेना का गठन किया,
- राजनीतिक शिक्षा व्यवस्था की गई, और
- पार्टी संगठन का निर्माण भी किया गया।

इस तरह पीछे हटने के समय को क्रांतिकारी तैयारियां एवं आक्रमण के चरण में रूपांतरित कर दिया गया।

अभी भी कम्युनिस्टों पर कड़ा दबाव बना हुआ था। 1928-29 की सर्दियों के उपरान्त क्रांतिकारियों को चिंग कांगशान की पहाड़ियों को छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। क्वोमिनतांग (के.एस.टी.) सेना ने नाकेबन्दी करके पीछे हटती सेना के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री की आपूर्ति में रूकावट डालकर गम्भीर समस्या पैदा की। लाल सेना ने ऐसे क्षेत्रों की ओर कूच किया जहाँ पर पहले से ही किसान आंदोलन विकसित थे और जिससे उनको मजबूत सामाजिक समर्थन उपलब्ध हो सकता था। 1930 की गर्मियों तक इस तरह के 15 क्षेत्र केन्द्रीय चीन में स्थापित हो चुके थे। चीन की सरकार के लिये इन दूर-दराज के क्षेत्रों में हस्तक्षेप करना कोई सरल कार्य न था और ये क्षेत्र बड़ी शक्तियों के सैनिक एवं वित्तीय प्रभावों से मुक्त थे। इन सभी में क्यांगसी क्षेत्र सबसे महत्वपूर्ण था और चीन का प्रथम सोवियत गणतन्त्र बना।

33.5 क्यांगसी सोवियत गणतन्त्र

इस तरह के प्रयोग के लिये क्यांगसी क्षेत्र का चुनाव अचानक ही नहीं किया गया था। क्यांगसी की अर्थव्यवस्था सामन्ती थी और जमीदारों की सशस्त्र सेनायें अन्य किसी दक्षिणी प्रांत की अपेक्षा काफी कमजोर थीं। यह अपेक्षाकृत किसी तरह के साम्राज्यवादी प्रभाव से मुक्त था और किसी भी क्षेत्र की तुलना में यहां का किसान आंदोलन काफी व्यापक था।

इस नये सोवियत गणतन्त्र का गठन नवम्बर 1931 में किया गया और माओ त्से-तुंग इसका अध्यक्ष बना। इसको "सर्वहारा तथा किसानों की जनवादी डिक्टेटरशिप" कहकर परिभाषित किया गया। इसके अस्तित्व का मूलभूत आधार कृषि क्रान्ति थी।

क्यांगसी सोवियत की कृषि नीति का आधार किसानों का वह वर्गीकरण था जिसका विश्लेषण माओ ने अपने हुनान प्रांत के अध्ययन में किया था। माओ के "चीन में लाल राजनीतिक शक्ति कैसे विद्यमान है" "चिंगकांग के पर्वतों में संघर्ष" और "एक चिंगारी क्रान्ति की आग को प्रज्जवलित कर सकती है" जैसे लेखों में चीनी कृषि क्रान्ति, इसकी वर्ग संरचना, तथा इस रणनीति का विश्लेषण किया गया था जिसका अनुसरण चीन में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने किया।

ग्रामीण चीन की वर्ग सरंचना का विश्लेषण करते हुए माओ ने स्पष्ट किया कि क्रान्ति के मुख्य शत्रु जमींदार थे क्योंकि कृषि की सामन्ती व्यवस्था तथा सामन्ती सम्पति व्यवस्था को बनाये रखने के लिये वे प्रत्यक्ष तौर पर दावेदार थे। ये ग्रामीण परिवारों के मात्र 10 प्रतिशत थे और इनके पास आधे से कुछ अधिक भूमि थी तथा ये ही अधिकतर ऐसे ग्रामीण थे जो खेती नहीं करते थे।

ग्रामीण मज़दूरों के साथ-साथ किसानों को धनी, मध्यम एवं गरीब किसानों की श्रेणी में रखा जा सकता था।

- धनी किसान ऐसे किसान थे जो कृषि कार्यों की व्यस्तता के समय परिवार से बाहर के लोगों को मजदूरी पर रखते थे और उनके पास औसतन मध्यम किसान की अपेक्षा कुछ अधिक भूमि होती थी।
- मध्यम किसान वे थे जो सामान्य वर्ष में अपनी आवश्यकताओं को किसी को मज़दूरी पर रखकर या फिर दूसरे के यहाँ पर कार्य को करके पूरा करते थे।
- गरीब किसान परिवार वे थे जो अपने भरण-पोषण के लिए एक या एक से अधिक सदस्य की मज़दूरी पर निर्भर करते थे और ऐसे किसानों के पास मध्यम किसानों की अपेक्षा कम भूमि होती थी।

गरीब किसान सामान्यतः कर्ज के बोझ से दबे होते थे जबकि मध्यम किसानों पर मौसमी कर्ज होता था और धनी किसानों पर अस्लामी था कभी-कभी कर्ज होता था। इस तरह ये ऐसी विशेषताएं थीं जिनके आधार पर क्यांगसी प्रयोग के दौरान कम्युनिस्टों ने अपनी कृषि नीति का निर्धारण किया। इसी विशेषता के आधार पर उन्होंने गरीब किसानों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया और उन्होंने ही कम्युनिस्टों के प्रति सबसे अधिक उत्साह दिखाया तथा ये गरीब किसान ही चीनी क्रान्ति की आधारशिला बने।

नवम्बर 1931 में चीनी सोवियतों के प्रथम सम्मेलन में कृषि कानून का निर्माण एंव उसको पारित किया गया। इससे उन नीतियों में बदलाव दिखायी पड़ता है जिनका अनुसरण 1926-28 के वर्षों में उस समय किया गया था जबकि माओ त्से तुंग ने जमींदारों सहित धनी किसानों की भूमि पूर्ण रूपेण तथा "समझौता विहीन" अधिग्रहण करने का आह्वान किया था। कुओमिनतांग के साथ संयुक्त मोर्चे के भंग हो जाने एवं पूंजीपति वर्ग के द्वारा इसके साथ सहयोग करने के कारण, माओ ने यह महसूस किया कि कम्युनिस्टों के इस अलगाव की भरपाई धनी किसानों के साथ सहयोग करने से पूरी की जा सकती थी और इस सहयोग को इस वास्तविकता के साथ प्राप्त किया गया कि निर्धन किसानों ने आंदोलन को मुख्य आधार उपलब्ध कराया था। किसानों ने एक वर्ग के रूप में क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वाह किया जो पूंजीपति वर्ग नहीं कर सकता था।

1931 के कृषि कानून द्वारा केवल जमींदारों की भूमि का अधिग्रहण किया जा सका। इस भूमि अधिग्रहण को बगैर किसी मुआवजे के किया गया। ये सोवियत किसानों एवं सैनिकों के निर्वाचित संगठन थे और उन्होंने निर्धन तथा मध्यम किसानों को अधिग्रहीत की गई भूमि का वितरण किया।

भूमि का पुनर्वितरण समान वितरण के आधार पर किया गया और इस वितरण का आधार किसान परिवार के सदस्यों तथा श्रम पर आधारित था। जो भूमि मंदिर एवं अन्य इस तरह की धार्मिक संस्थाओं से संबंधित थी उसको भी किसानों के बीच वितरित किया गया। धनी किसान को इस शर्त पर कुछ भूमि प्रदान की गई कि वह इस भूमि पर कार्य बिना किसी मज़दूर के करेगा और क्रन्तिकारियों के विरुद्ध होने वाली किसी भी तरह की गतिविधि में भाग नहीं लेगा। ऐसे धनी किसानों के लिये राहत की व्यवस्था की गई जो अपनी अधिग्रहित की गई भूमि को वापस खरीदना चाहते थे या ऐसे मध्यम किसानों के लिये भी जो अपनी जोत को और बढ़ाना चाहते थे। अन्ततः यदि किसानों का बहुमत इसको स्वीकार कर लेता है तब समान वितरण के नये कृषि सुधार को लागू किया जा सकता था।

यह महसूस किया गया कि ऐसा मध्यम किसान जो दूसरों का शोषण नहीं करता — वह भूमि के पुनर्वितरण की प्रक्रिया में विशेष रुचि रखता था क्योंकि इससे उसे कुछ और भूमि प्राप्त होने की सम्भावना थी। क्योंकि इस किसान का शोषण एवं दमन साम्राज्यवादी शक्तियों, जमींदारों एवं पूंजीपतियों के द्वारा किया जाता था इसलिये इस वर्ग को राजनीतिक तौर पर शिक्षित करने पर बल दिया गया जिससे वह जनवादी क्रान्ति की शक्तियों का समर्थन करने लगे। यही कारण था कि कृषि क्रान्ति की नीति के अन्तर्गत मध्यम किसानों के साथ एकता करने पर बल दिया गया। इसके अतिरिक्त जब भूमि के पुनर्वितरण को पूरा कर दिया जायेगा तब ग्रामीण अंचलों में वह भी साधारण जनता का एक भाग हो जायेगा। इस तरह की कृषि क्रांति से यह लाभ होगा कि यह मध्यम किसानों के हितों का उल्लंघन न कर सकेगी। धनी किसान दूसरों का शोषण करते थे परन्तु जमींदारों की तुलना में उनके पास न केवल कम भूमि थी बल्कि उनका राजनीतिक एवं सामाजिक प्रभाव भी बहुत कम था। उनका जो कुछ मजबूत सम्पर्क एवं प्रभाव था वह केवल गाँव के किसानों तक ही सीमित था न कि राज्य के ढांचे पर। इस नीति के द्वारा तथा धनी किसानों की शक्ति को सीमित करने, तथा धनी किसान अर्थव्यवस्था को उखाड़ने की अपेक्षा उसको निष्कासन का अवसर प्रदान किया गया।

इसी के साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिये कि जिस समय चीन के साम्यवादी जमींदारों को समाप्त करने या जमींदारी अर्थव्यवस्था को उखाड़ फेंकने की बात करते थे तब उनका यह तात्पर्य न था कि वे उनकी हत्या करना या उनकी भू-सम्पत्ति को नष्ट करना एवं लूटना चाहते थे। इससे केवल उनका यह तात्पर्य उनकी भूमि की अर्थव्यवस्था के आधार को परिवर्तित करने से था। इस भूमि का अधिग्रहण करके और उसे नये स्वामियों को प्रदान कर नयी अर्थव्यवस्था के नियमों के आधार पर उत्पादन के लिये उपयोग करना था अर्थात् मध्यम तथा निर्धन किसान इसके स्वामी होंगे और वे इस पर स्वयं अपने श्रम से कार्य करेंगे। जो बहुत से जमींदार हिंसा के दौरान मारे गये वे बदनाम किस्म के थे या फिर उस समय जबकि उन्होंने क्रांतिकारी प्रक्रिया का विरोध किया। वास्तव में बहुत बड़ी संख्या में निर्धन किसान एवं साम्यवादी सामाजिक रूपांतरण के लिये हुए संघर्ष के दौरान मारे गये।

संक्षेप में, सामाजिक संबंधों के दृष्टिकोण से ग्रामीण अंचलों में इस कृषि नीति का लक्ष्य स्वयं को निर्धन किसानों तथा खेतिहर मज़दूरों के समर्थन मध्यम किसानों के साथ एकताबद्ध करने, तथा शक्तिविहीन जमींदारों की अनुपस्थिति में धनी किसानों को नये शोषकों के रूप में उदित होने से रोकने की मजबूत नीति पर आधारित था। कृषि परिवर्तनों की सम्पूर्ण प्रक्रिया ग्रामीण अंचलों में स्वामित्व के प्रतिमान का रूपांतरण निहित होने के कारण यह एक वर्ग संघर्ष का स्वरूप ही था। इन परिवर्तनों के कारण निर्धन एवं मध्यम किसानों को अधिक भूमि प्राप्त हुई जिससे कि वे ग्रामीण अंचलों में महत्त्वपूर्ण कारक हो गये। निर्धन किसानों को अधिक भूमि प्राप्त हुई क्योंकि इन परिवर्तनों से पूर्व उनके पास काफी कम भूमि थी। अब वे सम्पत्ति विहीन न थे। अब उनके पास आमदनी को बढ़ाने एवं उत्पादन करने के स्रोत थे और न ही अब वे शोषित-पीड़ित थे। उन्होंने सम्पूर्ण प्रक्रिया में भाग लिया था जिसके कारण ग्रामीण अंचलों के राजनीतिक संगठन तथा प्रशासन में उनका महत्वपूर्ण स्थान हो गया था और यह पूर्ण रूप से एक नया अनुभव था।

कृषि क्रांति का लक्ष्य उत्पादन में वृद्धि करना भी था। वास्तव में स्वामित्व के संबंधों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन की प्रक्रिया में भी एक निर्णायक बदलाव आया। इसको निम्न प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है:

- उत्पादन के पिछड़े एवं सामन्ती तरीकों से भूमि की विशाल मात्रा को अलग करके,
- कड़े परिश्रम तथा उत्पादन में वृद्धि करने के लिये सम्पूर्ण किसान वर्ग को प्रोत्साहित करके, और

- किसानों के बीच बाजार को बढ़ाकर जिससे कि उनको कृषि उत्पादनों के बेहतर दाम प्राप्त हों और इस कारण से उनकी खरीदने की शक्ति अधिक हो जाये।

लेकिन इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये बहुत दिनों तक क्यांगसी में सोवियत गणतन्त्र को बनाये न रखा जा सका। परन्तु जब तक इसका अस्तित्व बना रहा तब तक इसने यह सुनिश्चित किया कि किसान अपने श्रम का पूरा फल प्राप्त कर सकते थे और कृषि परिवर्तनों से पूर्व के सभी कर्जों को इसने खारिज कर दिया था।

33.6 क्यांगसी अड्डे में नया राजनीतिक संगठन

न केवल क्यांगसी अड्डे में अपितु सभी लाल क्षेत्रों में कृषि सुधार का महत्वपूर्ण पक्ष खेतिहर मज़दूरों की यूनियनों तथा अन्य दूसरे संगठनों को संगठित करना था। इन जन संगठनों तथा यूनियनों ने कृषि सुधार को लागू करने में सक्रिय तौर पर भाग लिया। उन्होंने स्थानीय सोवियतों के साम्यवादी अधिकारियों तथा पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ क्षेत्र में कार्य किया था। भूमि का एक बार अधिग्रहण करने के पश्चात उसको श्रेणीबद्ध किया गया और फिर उसको वितरित कर दिया गया। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया खुली एवं सार्वजनिक थी। किसानों तथा सैनिकों को उन सोवियतों के लिए निर्वाचित किया गया जिसने मज़दूरों एवं किसानों की नई सरकार के लिये संगठनात्मक ढांचा तैयार किया। जो मध्यम वर्गीय किसान जिला तथा कस्बों के स्तरों की स्थानीय सरकारों में कार्य कर रहे थे उनकी संख्या 40 प्रतिशत थी। कस्बों के स्तर पर मुख्य कार्यकर्त्ता निर्धन किसान एवं मज़दूर थे। वे नयी सरकार की मुख्य आधारशिला भी थे। इस तरह राजनीतिक लाभ ने आर्थिक लाभ को बढ़ाया क्योंकि अब उन्होंने उस राजनीतिक शक्ति को प्राप्त कर लिया था जिसने उनको अपने स्वयं के भविष्य को निश्चित करने तथा निर्णय करने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्रदान किया।

बोध प्रश्न 1

1) "लाल आधार" को स्थापित करने के लिये कौन-कौन से मुख्य कार्यों को किया गया। पांच पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

2) **क्यांगसी सोवियत के दौरान स्थापित किये गये कृषि कानून की विवेचना 10 पंक्तियों में कीजिये।**

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) धनी, मध्यम तथा निर्धन किसानों पर कृषि नीति का क्या प्रभाव हुआ। इसका उत्तर लगभग 10 पंक्तियों में दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

33.7 लाल सेना की भूमिका

नवीन भूमि नीति तथा क्यांगसी एवं अन्य लाल आधारों के बने रहने की सफलता के लिये संघर्ष के तरीकों हेतु छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाना निर्णायक था। जैसा कि पहले भी बताया गया कि संयुक्त मोर्चे में आये विघटन एवं आगामी राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ऐसा करना आवश्यक हो गया था। इन अड्डों की स्थापना संगठित किसानों के द्वारा किये गये सशस्त्र संघर्ष का परिणाम थी। क्यांगसी सोवियत गणतंत्र के सम्पूर्ण निर्माण की प्रक्रिया में लाल सेना ने इस संघर्ष में एक औजार की भूमिका निभाई। सेना का राजनीतिकरण पार्टी के कृषि क्रांति के कार्यक्रम को लागू करने के लिये किया गया। सेना के अन्दर राजनीतिक कार्य की व्यवस्था को मजबूत किया गया। इस तरह से लाल सेना का कार्य केवल युद्ध करना न था अपितु इसने, राजनीतिक शिक्षा एवं प्रचार कार्य के अतिरिक्त जनता को संगठित करने, तथा कृषि क्रांति को लागू करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

सैनिकों के लिये भी निम्नलिखित कुछ महत्वपूर्ण नियम थे:

- आज्ञाओं का पालन करना,
- जनता से कुछ न लेना,
- अधिकार में किये गये सभी सामानों को अधिकारियों को वापस करना,
- फसल की कटाई को नुकसान न पहुँचाना, और
- महिलाओं को कष्ट न देना तथा कैदियों के साथ दुरव्यवहार न करना।

उनको यह स्पष्ट तौर पर समझा दिया गया कि:

- लाल सेना युद्ध के वास्ते युद्ध नहीं करती अपितु उसका कार्य जनता के लिये, जनता को सशस्त्र करना एवं क्रांतिकारी शक्ति को स्थापित करने में जनता की मदद करना है।

इस तरह लाल सेना क्वोमिनतांग की सेना से काफी भिन्न थी। यह सेना तकनीकी एवं हथियारों के दृष्टिकोण से अधिक मजबूत न थी किन्तु यह गरीब चीनी जनता के पक्ष में एवं आम जनता के निकट सम्पर्क में थी। सेना सहित लाल रक्षकों को स्थानीय जनता से भर्ती किया गया था और इन लाल रक्षकों ने सैनिकों के कार्यों को स्थानीय इकाइयों तथा लड़ाकू तंत्र के साथ जोड़ने में योगदान किया। युद्ध की छापामार प्रणाली को स्थानीय समर्थन के द्वारा ही सफल बनाया जा सकता था। इसलिए लाल सेना की यह भूमिका जनता के बीच अपनी ताकत को आम जनता के बीच इस तरह विस्तृत करने में बहुत अधिक महत्वपूर्ण थी जिससे कि जनता को सामन्ती जमींदारों एवं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध के लिए एक पार्टी बनाया जा सके। शत्रु पर आक्रमण करने में इस की शक्ति को केन्द्रित करने के लिये स्थानीय जनता ने

खाद्य सामग्री, संचार तथा घायलों की देखभाल करने जैसे सहायक कार्यों को पूर्ण करने में सहायता उपलब्ध करायी। पश्चिम के दो डॉक्टरों डॉ. ऐगनेज स्मेडलेई तथा डॉ. नोर्मन बेथ्यून और भारत के डॉ. कोटनीस ने उन मेडिकल इकाइयों को निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में लाल सेना को संघर्ष करने में सहायता प्रदान की।

33.8 राजनीतिक चेतना और सामाजिक प्रगति

इस विशाल संगठनात्मक ढांचे के अन्तर्गत विद्यमान लाल सेना, सोवियतों, खेतिहर मज़दूरों की यूनियनों, मैडिकल इकाइयों एवं किसान संगठनों ने नयी जनवादी सरकार के आधार स्तंभों को गठित किया। उन्होंने राजनीतिक शक्ति के नये अवयवों को बनाया। जमींदार साम्राज्यवादियों की शक्ति के समर्थन का मुख्य आधार थे और उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति को तहस-नहस कर दिया गया तथा उनके स्थान पर जनवादी संगठनों के प्रभुत्व की स्थापना हुई। इस प्रक्रिया ने जनता के विश्वास एवं राजनीतिक चेतना में वृद्धि की। राजनीतिक अध्ययन केन्द्रों को संचालित किया गया। इन अध्ययन केन्द्रों के द्वारा लोगों को यह ज्ञान हुआ कि उनका समाज कैसा था और उन्होंने यह भी महसूस किया कि वे ही स्वयं अपने भविष्य के निर्माता हैं। इस तरह से हुनान में उन्होंने निम्नलिखित कार्यों को किया:

- संघर्ष के दौरान काला बाजार एवं कीमतों में वृद्धि को रोकने के लिये कदम उठाये,
- जुआ एवं डकैती पर प्रतिबंध लगाया,
- उपभोक्ता बाजारों एवं ऋण-सहकारी समितियों को स्थापित किया,
- वंशीय प्रभुत्व तथा धार्मिक संस्थाओं के द्वारा किये जाने वाले दमन एवं शोषण जैसी सामाजिक बुराइयों का विरोध किया,
- महिलाओं की एकता के प्रश्न को उठाया जिससे सम्पूर्ण रूपांतरण की प्रक्रिया समान तौर पर हिस्सेदार हो गई, और
- किसानों के पढ़ने एवं लिखने के लिये रात्रि स्कूलों को खोला।

डॉ. नोर्मन बेथ्यून की मेडिकल इकाई में किसानों ने प्रथम बार एक प्राणी के रक्त को दूसरे में प्रवाहित करने में सफलता का प्रदर्शन किया और उन्होंने यह भी सीख लिया कि इसका क्या तात्पर्य था। इसी प्रकार से नये-नये अनुभवों ने उनके पिछड़े मस्तिष्क के बंधनों को तोड़ नये दृश्यों के लिये मार्ग को प्रशस्त किया। सभी कुछ रातों-रात बदलने वाला न था और इस तरह के मार्ग पर चलकर बहुत सी गलतियां भी हुई। फिर भी उस विशाल जन समुदाय के लिये चीजों में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो चुका था जो अभी तक विश्व की नयी प्रगति से अनभिज्ञ था।

इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों को इस तरह से एकताबद्ध किया गया कि चीन के ग्रामीण अंचलों की जनता के सबसे पिछड़े हिस्से भी इस सम्पूर्ण रूपांतरण का एक भाग बन गये। सबसे अधिक पिछड़े इलाके संगठन एवं सरकार की दृष्टि में क्रांतिकारी एवं राजनीतिक तौर पर सबसे अधिक विकसित हो गये। इस संघर्षों का नेतृत्व करने में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस दौरान विशेष रूप से माओ त्से-तुंग लोकप्रिय एवं सम्मानीय नेता हो गया।

33.9 शहरी वातावरण

अगर मज़दूर वर्ग के आंदोलन की सफलता के दृष्टिकोण से विचार किया जाये तब हम देखते हैं कि इन वर्षों में शहरों में कोई विशेष प्रगति न हुई थी। परन्तु ग्रामीण अंचलों में किये गये प्रयोगों ने राजनीतिक नैतिक व्यवस्था, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की विचारधारा एवं मज़दूर आंदोलन को प्रभावित किया। यद्यपि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में गहरे मतभेद एवं विभाजन थे, लेकिन लाल क्षेत्रों मे माओ की सफलता ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को एक नवीन दिशा प्रदान की। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी में निम्न दो प्रकार के दृष्टिकोणों की प्रमुखता थी:

1) प्रथम वे थे जिन्होंने शहरों में क्रांतिकारी आंदोलन को कुछ अधिक बढ़ा-चढ़ाकर समझा तथा उन शक्तियों की ताकत को कम करके देखा जो क्रांतिकारी शक्तियों का विरोध कर रहे थे, और
2) दूसरे वे थे जिन्होंने कृषि क्रांति की उपलब्धियों को कम करके देखा तथा प्रति क्रांतिकारी शक्तियों की ताकत को कहीं अधिक समझा। लेकिन माओ त्से तुंग की रणनीति की शुद्धता को मान्यता प्रदान की गई और प्रशंसा भी।

साम्यवादियों ने स्वयं अपने लिए क्यांगसी एवं अन्य लाल क्षेत्रों में जन समर्थन को प्राप्त किया। प्रथम जनवादी सरकार के दृष्टांत से उन्होंने यह समझा कि जहां एक ओर यह कृषि क्रांति का प्रतिनिधित्व करती थी, वहीं पर दूसरी ओर इसका निर्देशन वर्ग संघर्ष के सिद्धांतों एवं समाजवादी विचारधारा के द्वारा किया गया था। इस सच्चाई का श्रेय चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को ही जाता है कि यह क्रांति इस चरण में स्वयं किसानों पर आधारित थी फिर भी यह आर्थिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों के दृष्टिकोण से शुद्ध तौर पर कृषिवाद या अति लोकप्रियवाद का शिकार न बन पायी।

कुल मिलाकर यह एक ऐसी जागरूकता थी जिसकी अभिव्यक्ति राष्ट्रवाद के उभार के तौर पर हुई। जापानी आक्रमण ने चीनी समाज के सभी भागों में सक्रिय विरोध की एक प्रतिक्रिया को जन्म दिया। यद्यपि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने इन जापान-विरोधी आंदोलनों में व्यापक स्तर पर भाग न लिया था और न ही उनका नेतृत्व कर पायी थी फिर भी उसने इन आंदोलनों की क्षमता को रेखांकित किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सामन्तवाद, साम्राज्यवाद एवं बड़े पूंजीपतियों के विरुद्ध सम्भावित व्यापक आधार को सुदृढ़ करने की नीति का अनुसरण किया किन्तु सामन्त एवं बड़े पूंजीपति साम्यवादियों का विरोध करने के लिए साम्राज्यवादियों के साथ मिल गये। इसलिए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने छोटे व्यापारियों एवं उद्योगपतियों का विरोध न करने का निश्चय किया। उसने व्यर्थ के करों एवं शुल्कों को समाप्त करने की मांग की और इस तरह से बड़े पूंजीपतियों एवं साम्राज्यवादियों के विरुद्ध उनके समर्थन को सुनिश्चित कर लिया।

यह समय शहरी वातावरण में साहित्यिक गतिविधियों के उभार के लिए महत्वपूर्ण था। सजीव रचनाओं ने समय की सामाजिक वास्तविकताओं को अभिव्यक्त किया। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयासों के कारण 1930 में गठित चीनी वामपंथी लेखकों का संगठन सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। इन लेखकों ने साहित्य एवं समाज के एक प्रगतिशील दृष्टिकोण को सामने रखा और राष्ट्रवादी सरकार की जनविरोधी नीतियों के कारण उनकी आलोचना की। अपने बहुत से प्रकाशनों के द्वारा शहरों में बौद्धिक वातावरण को रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। सबसे अधिक महत्वपर्ण लेखक लू सून (1881-1936) था। उसने अपनी रचनाओं में पुरानी एवं विद्यमान व्यवस्था के पतन एवं अन्याय की आलोचना की और उसने परम्परागत जीवन के ढोंग तथा क्रूरता पर भी आक्रमण किया।

बहुत से महिला संगठन भी इन वर्षों में सक्रिय हो गये थे। ये संगठन केवल महिलाओं की समस्याओं तक सीमित न थे अपितु सम्पूर्ण समाज एवं परिवर्तन की प्रक्रिया पर भी उन्होंने अपना ध्यान केन्द्रित किया।

33.10 पराजय

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने जो परिवर्तन किये उनसे यह स्वाभाविक ही था कि उनको चीन के शासक वर्गों ने पसन्द नहीं किया। क्योमिनतांग ने पूर्णतः एक भिन्न प्रकार की नीति का अनुसरण किया और उसने कम्युनिस्टों का अथक विरोध भी किया। क्योमिनतांग का समर्थन जमींदारों के द्वारा किया गया था। 1930-1934 के बीच क्योमिनतांग ने च्यांग काई शेक के नेतृत्व में जमींदारों के द्वारा समर्थित कम्युनिस्टों के विरुद्ध उखाड़ फेंकने वाले पांच अभियानों को चलाया गया। पांचवां अभियान क्यांगसी क्षेत्र के विरुद्ध संचालित किया गया। महीनों तक घेरेबन्दी एवं अवरोधक तरीकों का अनुसरण करते रहने के कारण सोवियत गणतंत्र के लिये असहाय स्थिति पैदा हो गई। अन्ततः अगस्त 1934 में, स्थिति भयंकर तौर पर खराब हो गई और क्यांगसी क्षेत्र का परित्याग कर देना पड़ा। कम्युनिस्टों ने अवरोधों को चीरकर अपने मार्ग को बनाया और इस तरह महान अभियान का प्रारंभ हुआ (देखें इकाई 34)।

बोध प्रश्न 2

1) लाल सेना ने क्यांगसी गणतंत्र को बनाने में कैसे मदद की? इसकी विवेचना लगभग 10 पंक्तियों में करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) लाल सेना की विशेषताओं की 5 पंक्तियों में विवेचना कीजिये।

....

....

....

....

....

33.11 सारांश

1927 में संयुक्त मोर्चे के नाम से जाने गये क्वोमिनतांग-कम्युनिस्ट गठबंधन के टूट जाने से चीन के कम्युनिस्ट आंदोलन के अन्दर अनिश्चय, भटकाव एवं संगठनात्मक संकट पैदा हो गया था। पार्टी संगठन टूट के कगार पर था। इसके नेतागण ऐसे सैद्धान्तिक ढांचे की तलाश में थे जिससे कि वे राष्ट्रीय मुक्ति के आंदोलनों का संचालन, पार्टी ढांचे का पुनर्गठन तथा जनता एवं पार्टी के बीच की दूरी को कम कर सके। चीन इस समय जिस संकट का सामना कर रहा था उसका समाधान सोवियत मॉडल में ही दिखाई देता था।

क्यांगसी सोवियत निस्सन्देह इस सैद्धांतिक ढांचे का एक बड़ा प्रयोग था। उत्तर संयुक्त मोर्चे के वर्षों में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नीति सर्वहारा की चिन्ता एवं शहरी चीन के परित्याग के बीच के असमंजस्य की नीति थी। यह स्पष्ट है कि संयुक्त मोर्चे की असफलता के बाद शहरी चीन के अन्दर कम्युनिस्टों की नीतियों के पूर्ण केन्द्रण में काफी सीमा तक कमी आयी। क्यांगसी सोवियत को मुख्य तौर पर चीन के ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित किया गया। माओ त्से तुंग जैसे महत्वपूर्ण कम्युनिस्ट नेताओं ने नगर से ग्रामीण क्षेत्रों तथा सर्वहारा के साथ संगठनात्मक कार्य से किसानों के लिये कृषि क्रांति की ओर बढ़ना शुरू किया।

33.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक जनतान्त्रिक व्यवस्था कृषि विकास, किसानों एवं सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना करना। देखें भाग 33.4
2) कांग्रेस के द्वारा कृषि कानून को पारित किया गया। यह संयुक्त मोर्चे के काल से काफी भिन्न था। 1931 के कृषि कानून ने भूमि के अधिग्रहण करने के अधिकार को प्रदान किया। देखें भाग 33.5।
3) देश के अन्दर खेतिहर मजदूरों की यूनियनों एवं संगठन का विकास शुरू हुआ। बड़े-बड़े लाल आधारों में कृषि सुधारों को लागू करने के वे मुख्य संवाहक बन गये। इन सभी जन संगठनों ने एक साथ मिलकर सक्रिय रूप से कार्य किया। देखें भाग 33.6

बोध प्रश्न 2

1) संघर्ष के एक महत्वपूर्ण तरीके के रूप में छापामार युद्ध को अपनाया जाना लाल सेना में एक लोकप्रिय तरीका हो गया। इसके द्वारा काफी बड़ी सीमा तक किसानों को संगठित किया जा सका। इसने जनता को संगठित करने तथा कृषि सुधारों को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देखें भाग 33.7
2) लाल सेना की मुख्य विशेषता कड़ा अनुशासन, जनता से कुछ न ग्रहण करना, तथा बन्दी बनाये गये लोगों के साथ दुरव्यवहार न करना था। देखें भाग 33.7

इकाई 34 चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जापान के साथ युद्ध

इकाई की रूपरेखा

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 महान अभियान (लौंग मार्च) की पृष्ठभूमि
34.3 येनान की सामरिक नीति
    34.3.1 जापानी आक्रमण
    34.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति
    34.3.3 आर्थिक कारण
    34.3.4 जापान का सामाजिक एवं राजनीतिक विरोध
34.4 व्यवहार में संयुक्त मोर्चा
34.5 येनान क्षेत्र : विरोध करने के स्वरूप
34.6 लाल क्षेत्र : नये प्रकार का समाज
34.7 अन्तिम चरण
34.8 सारांश
34.9 शब्दावली
34.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

34.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्तः

- आपको साम्यवादियों के लौंग मार्च (महान अभियान) से जुड़ी विशेष घटनाओं की जानकारी होगी,
- साम्यवादियों द्वारा जापानी साम्राज्यवादियों के आक्रमण के सक्रिय विरोध को समझने का अवसर प्राप्त होगा,
- द्वितीय संयुक्त मोर्चे के दौरान साम्यवादियों द्वारा अपनायी गयी बहुत सी सामरिक नीतियों का ज्ञान भी होगा, और
- आपको यह भी ज्ञात होगा कि साम्यवादियों ने अपने अधीन क्षेत्रों के शासन का संचालन कैसे किया।

34.1 प्रस्तावना

जापान के साथ हुए युद्ध का समय दूसरे संयुक्त मोर्चे का समय भी था। प्रथम संयुक्त मोर्चे की भांति ही दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के साथ-साथ चीन के आन्तरिक राजनीतिक अनुभव की गतिशीलता के कारण हुआ था। आपको इस पर आश्चर्य होगा कि जबकि प्रथम संयुक्त मोर्चा असफल हो गया था तब जापान के विरुद्ध युद्ध में दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन क्यों किया गया? हम देख चुके हैं कि चीन के साम्यवादी दल का सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यक्रम न केवल क्योमिंनटांग से भिन्न था अपितु उसका विरोधी भी। इस तरह कुछ इस प्रकार की परिस्थितियां थीं कि चीन के साम्यवादी दल को जापान के विरुद्ध युद्ध करने को प्राथमिकता देनी पड़ी और यहां तक कि उसे इस लक्ष्य के लिये क्योमिंनटांग के साथ फिर एक संयुक्त मोर्चा बनाना पड़ा।

जहां एक ओर इस प्रकार की विशेष अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां थीं वहीं राष्ट्रीय स्थिति भी कुछ इसी प्रकार की

थी। इस इकाई में हम इन परिस्थितियों का उल्लेख करेंगे और उसी के साथ हम जापान के विरुद्ध युद्ध में चीन के साम्यवादी दल की भूमिका को भी समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में जापान के विरुद्ध लड़े गये युद्ध की प्रकृति पर भी प्रकाश डाला गया है। चीन के साम्यवादी दल क्योमिंनटांग के संबधों के लिए इसका क्या अर्थ था। उसका चीन के मजदूरों एवं किसानों के साथ कैसा संबंध था—इन सभी पक्षों की भी इस इकाई में विवेचना की गई है।

साम्यवादियों के दृष्टिकोण से चीन में दूसरा संयुक्त मोर्चा सफल रहा था क्योंकि इसने क्रान्ति की सफलता, चीन के एकीकरण और स्वतन्त्रता के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार की। चीन के अन्दर राजनीतिक तथा सामाजिक शक्तियों के एक ऐसे सह-संबंध का उद्‌भव हुआ जिसके अन्तर्गत मजदूर वर्ग एवं किसान एक निर्णायक शक्ति बने और चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन में साम्यवादी भी एक प्रधान राजनीतिक शक्ति बने। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच के दृश्य के साथ-साथ इस इकाई में उपरोक्त सभी पक्षों की विवेचना की गई है। उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति चीन के साम्यवादी दल तथा क्योमिंनटांग के संबंधों तथा जापान के विरुद्ध उनके युद्ध का एक अविभाज्य अंग थी। इसलिये सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी शक्तियों को अलग-अलग करने के लिये व्यापक लोकप्रिय मोर्चों का निर्माण करने का निर्णय केवल चीन के लिये अपनायी गई विशेष सामरिक नीति न थी। अपितु इसको राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने या जर्मन फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये सभी देशों में अपनाया गया। इस समय में लगभग सम्पूर्ण चीन पर अधिकार करने वाला जापान भी जर्मनी के साथ था परन्तु इग्लैंड और फ्रांस उनके संग न थे। इसलिये इस समय चीन में जो दूसरा संयुक्त मोर्चा बनाया गया वह जापान के विरुद्ध निर्देशित था।

चीन के क्रान्तिकारी संघर्ष के बहुत से पक्षों की विवेचना के साथ-साथ इस इकाई में इस पर भी बल दिया गया है कि ऐसे लोग जो विश्व भर में शोषण के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं वे एक दूसरे से अपृथक तौर पर जुड़े हैं। ठीक इसी तरह से बेहतर जीवन के लिये संघर्ष में लक्ष्य एवं कार्य की एकता ही अधिक सफलता की ओर ले जाती है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञान हो जायेगा कि विश्व भर में फासीवाद के विरुद्ध होने वाले संघर्ष में हिस्सा लेने से चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के हित और इस क्रान्तिकारी आंदोलन का मुख्य रूप से गठन करने वाले मज़दूर एंव किसानों के हित किस प्रकार आगे बढ़े।

34.2 महान अभियान (लौंग मार्च) की पृष्ठभूमि

इकाई-33 में उद्धत किये गये महान अभियान (लौंग मार्च) का प्रारम्भ उस समय हुआ जबकि साम्यवादियों को अपने क्यांगसी क्षेत्र को छोड़ने के लिये बाध्य किया गया। क्योमिंनटांग सेनाओं द्वारा प्रतिदिन की गई हवाई बमबारी एवं मशीन गनों से हजारों किसानों की हत्या कर दी गई। ताकत के बल पर किये गये जन विस्थापन तथा बड़े स्तर पर आम फांसियों के द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र को आबादी विहीन कर दिया गया। केवल लाल सेना के ही 60,000 सैनिक मारे गये। लाल सेना के मुख्य भाग को सुरक्षित तौर पर बाहर निकालने के लिये हजारों किसान समर्थकों ने अपनी अन्तिम सांस तक संघर्ष किया और इन लाल समर्थकों की अपार वीरता की स्मृति को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सदैव याद रखा है।

महान अभियान के वापस लौटते सदस्यों में केवल मुख्य सेना न थी अपितु उनके साथ हजारों गरीब किसान भी थे। वास्तव में इस अभियान में बूढ़े, जवान, पुरुष एवं स्त्री, बच्चे, साम्यवादी सभी शामिल थे। कुछ ऐसे हथियार और बारूद जिनको वे इस महान प्रस्थान के दौरान ले नहीं जा सकते थे, मार्ग के साथ-साथ दबा दिये गये। ऐसा इस आशा के साथ किया गया कि एक दिन बेहतर परिस्थितियों में संघर्ष के जारी रहते उनका उपयोग किया जा सकेगा। इस अभियान के दौरान इसमें भाग लेने वाले आधे लोग एवं आधी सामग्री नष्ट हो गये थे।

पराजित एवं अस्त-व्यस्त सेना के लिये यह अभियान शानदार वीरता का कार्य था। रास्ते पर उनको प्रकृति की कठोरताओं के साथ-साथ क्योमिंनटांग की सशस्त्र सेनाओं तथा युद्ध सामन्तों के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। इस विशाल अभियान के दौरान उन्होंने ग्यारह प्रांतों, दूर-दराज के इलाकों, अठारह पर्वतों की

शृंखलाओं तथा चौबीस बड़ी नदियों को पार किया। इस महान अभियान का प्रारम्भ 16 अक्तूबर, 1934 को हुआ था और इसका अन्त 1937 में येनान के ऊँचे-नीचे क्षेत्रों में 800 मील की दूरी को तय करने के साथ हुआ। केवल 30,000 लोगों से कम ही इस यात्रा को पूरी कर पाये। केवल 30 के करीब ही महिलायें जीवित बचीं। मृत्यु पाने वालों में माओ त्सु तुंग की पत्नी भी थी। जो लोग येनान के शेंसी क्षेत्र में पहुँचे थे वे विश्वसनीय एवं अनुशासित कठोर कार्यकर्ता थे। उन्होंने एक ऐसी शक्ति का गठन किया जो भविष्य के चीनी सोवियत गणतन्त्र का निर्माण करने वाली थी। उनमें माओ, चु-तेह, लिनपिओ तथा चाऊ ऐनलाई प्रमुख थे।

यह महान अभियान चीन के इतिहास में अत्याधिक महत्वपूर्ण और सबसे अधिक साहसिक घटना है। जिस समय इसका विवरण कुछ पृष्ठों में ही किया जाता है तब शायद यह अधिक वीरता का कार्य प्रतीत नहीं होता। लेकिन इसकी महानतम उपलब्धि को तभी पहचाना जा सकता है जब आप हजारों लोगों के एक साथ प्रस्थान करते हुए उस दृश्य की कल्पना करें जिसमें उन्होंने स्वयं की पर्याप्त हथियारों के बिना रक्षा की और न उनके पास पर्याप्त भोजन तथा दवाई थी। यद्यपि उनको कुछ सामग्री अपने समर्थकों द्वारा दूर-दराज के इलाकों को पार करते समय प्राप्त अवश्य होती थी। इस सन्दर्भ में आप यह भी कल्पना कर सकते हैं कि लम्बे, मुश्किलों से भरपूर रास्तों को पार करते समय हजारों लोगों, सैकड़ों बूढ़े एवं बीमार लोगों की देखभाल करना कोई सरल कार्य न था। माओ सहित कई अन्य ने अपने नजदीकी एवं प्रिय लोगों को खो दिया था। वे अपने साथ जिस एक मात्र वस्तु को लेकर गये वह दुर्जय राजनीतिक इच्छा एवं शक्ति थी और उसको उन्होंने, इस उच्चतम लक्ष्य से प्राप्त किया था जिसके लिये वे संघर्ष कर रहे थे। वे जानते थे कि वे एक ऐसे नये चीन के लिये संघर्ष कर रहे हैं जो शोषित-पीड़ित तथा निर्धन लाखों लोगों के लिये बेहतर जीवन को सुनिश्चित करेगा।

जिस किसी भी इतिहासकार या संवाददाता ने चीन के इतिहास पर जो कुछ भी लिखा है उन सभी ने इस महान यात्रा में भाग लेने वालों के प्रति भरपूर सम्मान व्यक्त किया है। ऐसे संवाददाता जो इस महान अभियान के साथ-साथ कुछ दूरी पर चल रहे थे और उनको समाचार पत्रों को इसके विषय में समाचार भेजने थे—वे सभी आजीवन इसके समर्थक हो गये।

> ऐग्निज स्मेडली, ऐडगर स्नो, डॉ. नोमेंन तथा बेथने ने महान अभियान का बड़ा सजीव एवं स्पष्ट विवरण किया है और इनसे हमें ऐसे लोगों के जीवन की जानकारी प्राप्त होती है जिनके विषय में कोई ज्ञान न होता। जब कभी भी आपको उनको पढ़ने का अवसर मिले आप अवश्य ही उनको पढ़ें।

जिस समय महान अभियान का प्रारम्भ किया गया था तब ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण चीन पर च्यांग काई शेक का नियन्त्रण है। लेकिन साम्यवादियों के द्वारा क्यांगसी एवं दक्षिण चीन में स्थित अन्य लाल क्षेत्रों को छोड़ना साम्यवाद की विजय के लिये एक निर्णायक घटना साबित हुई। अपनी मुश्किल एवं लम्बी यात्रा के अन्त में अन्ततः साम्यवादियों ने क्योमिंनटांग की सेनाओं के विरुद्ध एक वास्तविक शक्तिशाली आधार को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। इस तरह से क्रान्ति को बचाने के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया यद्यपि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उनको अपने हजारों कार्यकर्ताओं के जीवन का बलिदान कर भारी मूल्य चुकाना पड़ा।

इस महान अभियान से तीन ऐसे कारक संबंधित हैं जिनके कारणवश साम्यवादी क्रान्ति को जीवित रहने में मदद प्राप्त हुई :

i) लौंग मार्च ने "साम्यवादियों एवं जनवादी मुक्ति सेना" (People's Liberation Army) की साहसिक एवं सच्चे राष्ट्रवादी के रूप में सम्मान में वृद्धि करने में योगदान किया। क्योमिंनटांग लगातार यह दावा करती रही कि साम्यवादियों को हमेशा के लिये पराजित कर दिया गया है। वे ऐसा प्रचार इसलिये कर पाये कि उनका प्रेस एवं सार्वजनिक प्रचार माध्यमों पर नियन्त्रण था। इसके परिणामस्वरूप अधिकतर लोग यह न जान सके कि चीन के दूर-दराज के क्षेत्रों में क्या घटित हो रहा था। इसके बावजूद भी स्नो तथा स्मेडली के समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों के द्वारा पश्चिमी दुनिया को सूचनायें प्राप्त होती रहीं और पूरी दुनिया की जनतान्त्रिक शक्तियों ने धन एवं औषधि जैसी

आवश्यक चीजों का योगदान किया जिससे कि दूर-दराज के क्षेत्रों में मेडिकल इकाइयों को स्थापित करने में सहायता मिली। यद्यपि इस तरह की सहायता सागर में एक बूंद की भांति थी किन्तु इसने स्वयं चीन के अन्दर साम्यवादियों के सम्मान को बढ़ाने में बड़ी मदद की। यह लौंग मार्च गीतों एवं किंवदन्तियों का शीर्षक बन गया और साम्यवादी नये चेतनाशील चीन के स्वीकृत नेता हो गये।

ii) लौंग मार्च की बदौलत चीन के साम्यवादी आंदोलन में एक नयी एकता स्थापित हुई। इसके साथ ही पार्टी पर मांओ का नेतृत्व सुदृढ़ हो गया। जिस समय शत्रु के क्षेत्रों में आगे तक बढ़ना सम्भव न था तब मार्च के साथ-साथ छोटी-छोटी सभाओं का उपयोग राजनीतिक शिक्षा एवं नेतृत्व की राजनीतिक सभाओं के लिये किया गया। तत्कालिक वास्तविकताओं के अनुभवों की रोशनी में साम्यवादियों ने परस्पर विद्यमान मतभेदों को भी पूर्ण रूपेण मजबूती से इस अवधि में दूर कर लिया।

iii) साम्यवादियों का मानवीय एवं शारीरिक स्तर पर जो भी अनुभव रहा हो लेकिन लौंग मार्च के द्वारा उनको हजारों की संख्या में समर्पित कार्यकर्ता प्राप्त हुए। यह स्वयं में कठोर शारीरिक एवं राजनीतिक शिक्षा का प्रशिक्षण था। इसके द्वारा उनका चीन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों एवं वहां की जनता के साथ भी सम्पर्क हुआ।

जिस समय साम्यवादियों ने उत्तरी शांशी और येनान में अपना सशक्त अड्डा बनाया तो एक ओर उन्होंने अपने विचारों को मार्ग में विशाल जनसमुदाय के मध्य प्रसारित किया और दूसरी ओर उन्होंने चीनी किसानों, उनके दृष्टिकोण एवं आदतों के विषय में भी बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। इस समय हुनान या क्यागंसी वाली स्थिति की अपेक्षा साम्यवादी राजनीतिक तौर पर कहीं अधिक समझदार हो चुके थे। संक्षेप में लौंग मार्च ने साम्यवादियों को शत्रु के विरुद्ध अन्तिम आक्रमण करने तथा अपनी सम्भावित विजय प्राप्त करने के लिये तैयार किया। दूसरी तरफ क्योमिंनटांग के सैन्य बलों की तुलना में जनवादी मुक्ति सेना द्वारा जनता के साथ किये गये व्यवहार में जमीन आसमान का अन्तर था। जनता ने व्यवहार के इस अन्तर को पहचान साम्यवादी सेना को अपनी सेना माना। इस प्रकार सम्पूर्ण चीनी जनता ने साम्यवादियों को अपने नेताओं के तौर पर स्वीकार कर लिया। मार्च के दौरान उन्होंने अपने लाल समर्थकों एवं साथियों की संख्या को काफी बढ़ाया और यहाँ तक कि अपनी मुख्य सेना के लिये नयी भर्ती भी की। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि चीन के सभी क्षेत्रों की निर्धन जनता युद्ध सामन्तों एवं क्योमिंनटांग के द्वारा शोषित की जाती थी।

34.3 येनान की सामरिक नीति

जिन कारणों से साम्यवादियों ने क्यांगसी क्षेत्र का चुनाव किया था उन्हीं कारणों से उन्होंने येनान का नये क्षेत्र के रूप मे चुनाव किया। इसको स्पष्ट करते हुए एडगर स्नो ने लिखा "येनान रक्षा के लिये आदर्श तौर पर एकीकृत था। यह चट्टानों की ऊँची पहाड़ियों से घिरा था और जहां चट्टानों की प्रबल दीवारें ऊपर की ओर जाती हैं।"

पहले की ही भांति इस बार भी मुक्ति क्षेत्रों को सशस्त्र संघर्ष, किसानों के हितों के अनुरुप भूमि स्वामित्व में परिवर्तन और स्थानीय स्तर पर छापामार युद्ध के आधार पर स्थापित किया गया। इन क्षेत्रों को ऐसे स्थान पर बनाया गया जहां पर सरकारी सेनाओं के लिये पहुंचना आसान न था। लेकिन अब संघर्ष के इस चरण में साम्यवादियों का मुख्य शत्रु क्योमिंनटांग न होकर जापान हो गया। आप इकाई 33 में पढ़ चुके हैं कि किस तरह से जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन पर आक्रमण किया था। इस पक्ष के विषय में व्यवहारिक स्तर पर सोचा जाये तब हम देखते है कि पहले जिन लोगों को शत्रु के पक्ष में समझा जाता था अब उनमें से बहुतों को जापान विरोधी संघर्ष में शामिल किया जा सकता था। इसलिये पहले के चीनी सोवियत गणतन्त्रों की तुलना में इस बार के साम्यवादी नियन्त्रण के क्षेत्रों के सामाजिक आधार में व्यापक वृद्धि हुई थी।

सामाजिक रूपांतरण की एक ऐसी सामरिक नीति, जिसके द्वारा सामाजिक आधार में वृद्धि को सुनिश्चित किया जा सकता था, इस स्तर पर अपनायी जानी अति आवश्यक थी। ऐसा इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर किया गया कि इस बार चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को एक विभाजित एवं भ्रष्ट दुश्मन का सामना नहीं करना था। जापानी साम्राज्यवादियों की अनुशासित एवं शक्तिशाली सशस्त्र सेनायें क्योमिंनटांग की सेनाओं से बिल्कुल भिन्न थी। क्योमिंनटांग को ऐसे युद्ध सरदारों पर निर्भर रहना पड़ता था जो एक दूसरे के

विपरीत थे। अब यह ऐसा गृह युद्ध न था जिसमें कि क्योमिंनटांग बगैर किसी प्रकार के सामाजिक रूपांतरण के एकता का प्रयास कर रहा था और कुछ युद्ध सरदार नियन्त्रण के स्वतन्त्र साधनों में रुचि रखते थे। क्योमिंनटांग और चीन के मज़दूरों तथा किसानों के बीच जो युद्ध हुआ उसमें निहित जटिलताओं के कारण साम्यवादियों ने युद्ध के विषय में एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया था किन्तु अब परिवर्तित राजनीतिक सन्दर्भ में उसका कोई औचित्य न रह गया था।

इसलिये येनान की सामरिक नीति जापानी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संयुक्त मोर्चे की तत्कालिक सामरिक नीति थी। इस नीति के साथ-साथ सामाजिक रूपांतरण की नीति को भी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनाया क्योंकि उसको इस समय क्यांगसी दौर की अपेक्षा एक व्यापक आधार प्राप्त होने वाला था। वास्तव में उनकी सामरिक नीति के ये दोनों पक्ष एक-दूसरे के साथ अंतर्संबंधित एवं एकीकृत थे।

34.3.1 जापानी आक्रमण

प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के बावजूद पूंजीवादी विश्व 1929 तक भयंकर आर्थिक संकट में फंस गया। आगामी तीन वर्षों में यह संकट और भी भयावह हो गया। जापान एवं जर्मनी को इन अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों से कोई लाभ न हुआ था और इस आर्थिक संकट ने उनको जबरदस्त ढंग से प्रभावित किया। इन देशों में विश्व के "नये" विभाजन की मांग की गई। जापान के साम्राज्यवादियों ने देखा कि आक्रमण नीति ही इसका एक मात्र समाधान है। जापान ने नौ देशों की संधि की धाराओं के विरुद्ध अभियान चलाकर चीन से यूरोपीय शक्तियों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका को बाहर करने का प्रयास किया। इसके बदले वह चीन को अपना उसी प्रकार का उपनिवेश बनाना चाहता था जैसा कि ब्रिटेन का उपनिवेश भारत था। उन्होंने अपना पहला आक्रमण 18 सितम्बर, 1931 को किया। 1933 तक उनके प्रभाव में संपूर्ण उत्तरी चीन का मैदान आ गया, 1935 तक उन्होंने आन्तरिक मंगोलिया पर अधिकार कर लिया और 1937 तक वे चीन में सर्वोच्च शक्ति बन गये। इस समय में मारको पोलो ब्रिज पीकिंग से दक्षिण की ओर की एक मामूली सी घटना को बहाना बनाकर जापान ने युद्ध घोषित किये बगैर सम्पूर्ण चीन पर धावा बोल दिया।

जापानियों ने जिस बर्बरता से सर्वनाश किया वह रोंगटे खड़ा कर देने वाला था। इस सन्दर्भ में नानकिंग की सरकार के पतन का वह दृष्टांत दिया जा सकता है जबकि जापानी सेनाओं ने तीन लाख लोगों को मौत के घाट उतार दिया था। यांग्त्सी क्षेत्र में शरणार्थियों को मशीन गनों की गोलियों से भून डाला गया। ठीक इसी प्रकार से चीन के अन्य भागों में जान एवं माल का व्यापक नुकसान किया गया।

यूरोपीय शक्तियां पहले से ही जर्मनी के साथ युद्ध में फंसी थी। जर्मनी उनके लिए तत्कालिक खतरा था और इस कारण वे कोई हस्तक्षेप न कर सकीं। संयुक्त राज्य अमेरीका उस समय तक तटस्थ बना रहा जब तक कि जापान ने 1941 में पर्ल हार्बर पर आक्रमण न कर दिया। चीन में क्योमिंनटांग की सरकार भी पश्चिमी शक्तियों के प्रति समझौतावादी नीति का अनुसरण कर रही थी और उसने भी 1941 में पर्ल हार्बर पर जापान के आक्रमण तथा हांगकांग एवं सिंगापुर के पतन तक जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा न की। जापानियों का चीन पर लगभग स्वतन्त्र शासन कायम हो गया। चीन के अधिकारियों की अयोग्यता के कारण हजारों लोगों की जानें बिना किसी कारण के चली गई। भय के कारण उन्होंने हिनान की राजधानी चांगलिसा में आग लगा दी और वहाँ के निवासियों के साथ-साथ 8 लाख शरणार्थी मारे गये। जापानियों के आगे बढ़ने को धीमा करने के लिये उन्होंने पीली नदी के बांध को तोड़ दिया जिससे हजारों लोगों की जानें चली गई। इस प्रकार जापान के विरुद्ध संघर्ष चीन के लिये जीवित रहने का प्रश्न बन गया। चीन के इतिहास में इस राजनीतिक मोड़ पर साम्यवादियों के लियें जापान के विरुद्ध संघर्ष करना प्राथमिक कार्य हो गया।

34.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

इस लक्ष्य के लिये न केवल चीन के अन्दर व्यापक सम्भावित मोर्चे को गठित किया गया अपितु उन अन्य देशों के साथ भी गठबंधन किया गया जो जापान के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू हो जाने से फासीवादी शक्तियों—जर्मनी, इटली एवं जापान के विरुद्ध व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय मोर्चे का गठन किया गया। इस व्यापक मोर्चे में ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ और 1941 के बाद, संयुक्त राज्य अमेरिका शामिल थे। वे स्वयं को मित्र राष्ट्र कहते थे। राष्ट्रीय मुक्ति की सामाजिक शक्तियां भी इस

व्यापक मोर्चे में शामिल हो गईं। भारत के लिये चुनाव सरल एवं पूर्णतः स्पष्ट था क्योंकि मित्र राष्ट्र जापान के विरुद्ध संघर्षरत थे। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के लिये भी इसके साथ गहरे प्रश्न जुड़े थे। जर्मनी, इटली एवं जापान के विरुद्ध लोकप्रिय मोर्चा लोकतन्त्र तथा प्रथम समाजवादी राज्य सोवियत संघ के जीवित बने रहने के लिये हो रहे संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते थे। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपनी स्वयं की सफलता के लिये इन दोनों परिस्थितियों को आवश्यक मानती थी। इसलिये फासीवाद की विजय के अर्थ को जापान के हाथों होने वाली चीन की पराजय समझा गया और यदि फासीवाद की ताकतें पराजित हो जाती हैं तब चीन की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित माना गया। संक्षेप में उन्होंने विश्व राजनीतिक स्थिति और उसमें अपनी स्वयं की भूमिका तथा स्थान को ठीक उसी प्रकार से समझ लिया जैसा कि भारतीय नेताओं ने समझा था। परन्तु यह एक समान घटनाक्रम नहीं है कि उपनिवेशवाद के समाप्त होने की प्रक्रिया, भारत की स्वतन्त्रता एवं चीनी क्रान्ति दूसरे विश्व युद्ध में फासीवादी ताकतों की पराजय के कारण हुई।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी तथा क्योमिनटांग जिस अन्तर्राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के भाग थे, उसके निर्माण की प्रक्रिया लम्बी एवं दुःखदायी थी। चीन में जापानी आक्रमण का प्रारम्भ 1931 में हुआ और 1934 तक उसने विस्फोटक स्थिति ग्रहण कर ली। इस समय तक पश्चिमी शक्तियां प्राथमिक तौर पर सोवियत संघ का विरोध करना अपने हित में समझती थीं। चीन के अन्दर भी उनके अपने आर्थिक निवेश एवं नियन्त्रण के क्षेत्र थे। जिस समय जापान ने उनको चीन से बाहर निकालना शुरू किया और जर्मनी ने उनको यूरोप एवं विश्व के अन्य भागों में चुनौती देनी प्रारम्भ की तभी उन्होंने जर्मनी एवं जापान का गम्भीरता पूर्वक विरोध प्रारम्भ किया। जैसा कि पहले उद्धृत किया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका 1941 में ही युद्ध में शामिल हुआ। लेकिन इस समय तक चीन में जापान के विरुद्ध संयुक्त विरोध आंदोलन विकसित हो चुका था।

34.3.3 आर्थिक कारण

जापान एवं यूरोपीय शक्तियों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच बढ़ते संघर्षों का आधार चीन के अन्दर उनके आर्थिक विरोधों में निहित था। चीन की अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर पूर्ण रूप से साम्राज्यवादी नियन्त्रण था। सन् 1937 में चीन की रेलवे में 90.7 प्रतिशत विदेशी पूंजी लगी थी। चीन के कोयला उत्पादन का 55.7 प्रतिशत, यांग्तसी नदी में चलने वाले मालवाहक जहाजों का 18.9 प्रतिशत तथा विद्युत उत्पादन का 55 प्रतिशत विदेशी कम्पनियों के हाथों में था। सम्पूर्ण लोहा उत्पादन जापानियों के अधीन था। 1936 में चीन के सूत कातने वाले कारखानों का 46.2 प्रतिशत तथा कपड़ा मिलों का 56.4 प्रतिशत विदेशी पूंजी के अधीन था। बैंक नोटों को जारी करने की सुविधा भी विदेशी बैंकों के पास थी। उनका चुंगी तथा नमक पर भी नियन्त्रण था। इस प्रकार साम्राज्यवादी पूंजी ने चीन का आर्थिक शोषण उसी तरह से किया जैसा कि भारत का किया जा रहा था।

यदि 1930 के आंकड़ों के साथ तुलना की जाये तब 1936 तक ब्रिटेन के द्वारा किये गये निवेश में कोई वृद्धि न हुई थी। अमेरीकी निवेश की गई पूंजी में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यद्यपि इसका सम्पूर्ण धन कोई विशेष न था। इन वर्षों में चीन के अन्दर जापान द्वारा की गई निवेश पूंजी में 48 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह वृद्धि चीन में निवेश की गई विदेशी पूंजी की आधी थी। जापान ने विशेष रूप से उत्तरी-पूर्वी चीन के बाजार, भूमि, कारखानों, खानों, कच्चे औद्योगिक माल और संचार एवं परिवहन पर अपनी इजारेदारी कायम कर ली थी। इन सबका परिणाम यह हुआ कि चीन के उद्योगपतियों एवं व्यापारियों को जहाँ एक ओर चीन के अन्दर ही औद्योगिक लाभ में भारी नुकसान उठाना पड़ा वहीं उनको विदेशी व्यापार एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भी भारी नुकसान हुआ। चीन के तीन बड़े कपड़ा उद्योगों के केन्द्रों पर भी जापान का नियन्त्रण था।

इन सभी आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आंदोलन के सामाजिक आधार को व्यापक करने की सम्भावनायें काफी प्रबल थीं। इसी कारणवश जापान को प्रमुख निशाना बनाना आवश्यक हो गया था।

34.3.4 जापान का सामाजिक एवं राजनीतिक विरोध

जापान के आक्रमण का विरोध तत्काल शुरू हो गया था। 1932 में क्यांगसी सोवियतों ने मंचूरिया पर जापान द्वारा किये गये आक्रमण के विरुद्ध जापान युद्ध की घोषणा कर दी थी। यद्यपि यह प्रतीकात्मक विरोध से अधिक कुछ न था। लेकिन नगरों की जनता में जापानियों का विरोध करने की जबरदस्त प्रवृत्ति

बढ़ रही थी। नगरों में जन मत को सक्रिय करने एवं जापानी सामान के बहिष्कार को संगठित करने में बुद्धिजीवियों ने अग्रिम भूमिका अदा की। छात्र आंदोलन भी राष्ट्रीय विरोध आंदोलन के रूप में विकसित हो गया। 1931 के बसंत में हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालय के 15000 छात्र राजधानी की सड़कों पर सैनिक अभ्यास करते और सरकार को बातचीत करने से रोकने तथा जापान पर युद्ध घोषित करने के लिये दबाव डालने हेतु प्रदर्शन करते देखे गये। इन आंदोलनों की अपार शक्ति को पुर्नसंगठित करते हुए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने सम्पूर्ण देश से अपील की कि वे जापान के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये साम्यवादियों के साथ आ जायें। इस कार्य को 1935 में लौंग मार्च के प्रारम्भ करने से काफी समय पहले तथा अपने येनान अड्डे पर पहुँचने से पूर्व ही पूरा कर लिया गया था। चीनी संयुक्त मोर्चे की सामरिक नीति यूरोप में फासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे के समरूप थी और इसका जन्म पहले ही हो चुका था। यद्यपि इसको अपना स्वरूप ग्रहण करने तथा लागू करने में कुछ और अधिक समय लगा।

क्योमिंनटांग सरकार ने 1941 तक जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की और वह साम्यवादियों को अपना प्रमुख शत्रु मानती रही। लेकिन इन सबके बावजूद चीनी जनता के बीच जापान विरोधी बढ़ती भावनाओं ने 1935 में उसे बाध्य कर लिया। विद्यार्थी, बुद्धिजीवी, व्यवसायिक लोग और इनके साथ-साथ श्रमिक जनता भी विशेषकर चीन के पूर्वी भाग में बसने वाले लोग, काफी जोर से आवाज उठा रहे थे। उत्तरी चीन में जापान के हमलों के कारण व्यापक विद्यार्थी विद्रोह फूट पड़ा। अब इस विद्यार्थी आंदोलन को नौ दिसम्बर के आंदोलन (1935) के नाम से जाना जाता है। चीन की राजधानी पीकिंग में विशाल प्रदर्शन हुए। जापान शेष चीन से पांच प्रांतों को अलग करना चाहता था परन्तु विद्यार्थियों के इस आंदोलन ने इस योजना को पूरा होने से रोकने के लिये महत्वपूर्ण योगदान किया। बहुत से नगरों में व्यापारियों एवं कुलियों ने जापानी सामान के विरुद्ध बहिष्कार आंदोलन भी प्रारम्भ किया।

अन्त में मई 1936 में विद्यार्थियों की पहल कदमी पर **पान-चीन फेडरेशन ऑफ एसोशियेशन फॉर नेशनल सालवेशन** का गठन किया गया। यह शीघ्र ही शक्तिशाली राष्ट्रीय आंदोलन के लिये संगठित केन्द्र बन गया।

इस प्रतिष्ठित एसोशियशन से निर्देशकों के रूप में बहुत से वकील, पत्रकार एवं प्राध्यापक जुड़े थे और उन्होंने गृह युद्ध को समाप्त करने तथा जापान का संयुक्त विरोध करने का आहवान किया। इस आहवान को प्रभावी बनाने का यह तात्पर्य था कि नये संयुक्त मोर्चे की चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा कामिंटर्न को नीति को मान लिया जाना। चीन के पूर्वी नगरों में इस फेडरेशन ने साम्यवादियों के साथ सहयोग किया।

ये संगठन एवं आंदोलन जहाँ एक ओर जापान के विरुद्ध थे वहीं ये चीनी सरकार की समझौतावादी नीति एवं जापान के प्रति कमजोर नीति का भी विरोध करते थे। इस राजनीतिक पृष्ठभूमि में "सियान की घटना" हो गई जिसका बड़ा ही महत्व है। 12 दिसम्बर, 1936 को च्यिांग काई शेक का उसके एक जनरल के द्वारा अपहरण कर लिया गया। उस समय च्यिांग काई शेक सियान के दौरे पर था। चीनी सेना अपने देश की जनता के साथ युद्ध करने से खुश न थी चाहे वे साम्यवादी क्यों न रहे हों। सैनिकों ने उसके सम्मुख निम्नलिखित आठ मांगें रखीं:

1) नानकिंग की सरकार को पुनः संगठित किया जाये और ऐसे सभी दलों को उसमें शामिल किया जाये जो राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सामूहिक उतरदायित्व में भाग लें।
2) गृह युद्ध को तुरन्त समाप्त किया जाये और जापान के विरुद्ध सशस्त्र विरोध की नीति को अपनाया जाये।
3) शंघाई में जापान के विरुद्ध आंदोलन के नेताओं को रिहा किया जाये।
4) सभी राजनीतिक बंदियों को माफी दी जाये।
5) जनता को सभा करने की स्वतंत्रता की गारन्टी दी जाये।
6) जनता के देश भक्ति संगठन बनाने तथा राजनीतिक स्वतंत्रता के अधिकारों को सुरक्षित बनाया जाये
7) डॉ. सन यात सेन की इच्छाओं को प्रभावी बनाया जाये।
8) तत्काल एक राष्ट्रीय मुक्ति सम्मेलन बुलाया जाये।

इस कार्यक्रम को लागू करने के निम्नलिखित तरीकों पर जोर दिया गया:

- जापान के विरुद्ध सम्पूर्ण चीनियों का एक संयुक्त मोर्चा बने,

- साम्यवादियों के दमन को तुरन्त खत्म किया जाये, और
- व्यापक राजनीतिक सुधार किये जायें।

क्योमिंनटांग की समझौतावादी नीति ने लोगों को यह सोचने के लिये बाध्य कर दिया कि अपनी भावनाओं के प्रति उत्तरदायी एक लोकतान्त्रिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। राष्ट्रवाद एवं क्रान्ति के बीच की कड़ी चीनी जनता की चेतना में पैदा हो चुकी थी। यह महसूस किया जाने लगा कि राजनीतिक सुधार एवं अभिव्यक्ति तथा जनता की संगठित राजनीतिक इच्छा की स्वतन्त्रता के बगैर जापान का संयुक्त तौर पर विरोध नहीं किया जा सकता था। अब चीनी राष्ट्र को स्वतन्त्र राजनीतिक इच्छा तथा सामाजिक रूपांतरण की स्पष्ट घोषणा से अलग करके नहीं रखा जा सकता था।

1931 से 1937 तक आम जनता के मत की अभिव्यक्ति ने इस कड़ी को चीनी जनता के मस्तिष्क एवं राजनीतिक व्यवहार मे स्थापित करने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया। क्यांगसी काल में नगरों में जनता कोई विशेष राजनीतिक गतिविधियां न चला पायी थी लेकिन इस समय वे चीनी क्रान्तिकारी आंदोलन के साथ जुड़ गयी थी। अब दक्षिण में स्थित क्यांगसी तथा अन्य लाल क्षेत्रों के गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र हटकर उत्तर के उन क्षेत्रों में आ गया जहाँ पर जापान का आक्रमण एवं अधिकार था।

"आठ मांगों" के साथ-साथ फेडरेशन ऑफ एसोसियशन ऑफ नेशनल सालवेशन के द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यक्रम चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की तत्कालिक मांगों के साथ सामंजस्य रखते थे। चीनी लाल सेना, सोवियत सरकार तथा चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने क्योमिंनटांग से जापान के विरुद्ध जनता के संयुक्त मोर्चे में शामिल होने की अपील की। च्यिांग काई शेक को मुक्त कर दिया गया। पिछले छः वर्षों में घटित राजनीतिक घटनाक्रम के दबाव में च्यांग काई शेक को निम्न बातों के लिए बाध्य होना पड़ाः

- चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की वैधता,
- साम्यवादियों के दमन का अन्त, और
- उनके साथ सामूहिक तौर पर कार्य करना।

उसने कुछ राजनीतिक सुधारों का भी वायदा किया। इस प्रकार चीन में एक बार फिर दूसरे संयुक्त मोर्चे के गठन ने सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों के पुनः गठबंधन को सम्भव बनाया। लेकिन यह पहले संयुक्त मोर्चे से काफी भिन्न था।

बोध प्रश्न 1

1) लौंग मार्च (महान अभियान) के महत्व की 10 पंक्तियों में विवेचना करें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत है? उन पर (✓) या (×) का चिन्ह लगायें।

   i) च्यांग काई शेक ने लौंग मार्च (महान अभियान) का समर्थन किया।
   ii) साम्यवादियों के द्वारा येनान का नये क्षेत्र के रूप में चुनाव किया गया।

iii) क्यांगसी सोवियतों ने जापान के हमले का स्वागत किया।
iv) सियान में च्यांग काई शेक का गर्म जोशी के साथ स्वागत किया गया।

3) चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने दूसरे संयुक्त मोर्चे का गठन क्यों किया? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

34.4 व्यवहार में संयुक्त मोर्चा

जापान के विरुद्ध चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा क्योमिंनटांग का संयुक्त मोर्चा लगातार सरलता से कार्य नहीं कर पाया। व्यवहारिक तौर पर इसका तात्पर्य यह भी था कि जिस समय तक जापानी चीन की भूमि पर बने रहेंगे तब तक के लिये साम्यवादियों ने क्योमिंनटांग को शक्ति के बल पर सत्ताच्युत करने का इरादा त्याग दिया था। लेकिन यह एक समस्या पूर्ण विषय था। बहुत सी व्यवहारिक मुश्किलों एवं सामाजिक तनावों का निपटारा कियां जाना था क्योंकि संयुक्त मोर्चे के दौरान क्योमिंनटांग ने अपनी इन नीतियों में संशोधन नहीं किया था जबकि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी इन नीतियों में संशोधन कर लिया था। दूसरे साम्यवादियों ने अपनी सशस्त्र सेनाओं को बनाये रखा था जबकि वे नेशनल आर्मी (राष्ट्रीय सेना) के भी सदस्य बने हुए थे। इस प्रकार साम्यवादी "आठवीं मार्चिगं आर्मी" एवं "न्यू फोर्थ आर्मी" के सभी भाग बन गये इसमें क्योमिंनटांग के सैनिक अधिकारी भी थे।

प्रारम्भ में चियांग काई शेक ने जापानियों के विरुद्ध एक कड़ा रुख अपनाया। 13 अगस्त, 1937 को उसने शंघाई बन्दरगाह पर जापानी नौ सेना के विरुद्ध अपनी श्रेष्ठतम सेना को कार्यवाही के लिये नियुक्त किया। इस समय जापानियों ने महसूस किया कि अब उन्हें सम्पूर्ण चीनी जनता की अपार शक्ति के विरुद्ध मुकाबला करना था और इसी कारणवश उन्होंने भी अपने सम्पूर्ण संसाधनों को गतिशील करने का निश्चय किया। चीनियों के पास इतने श्रेष्ठ हथियार न थे जितने जापानी सेना के पास फिर भी चीनी सेना ने एक-एक इंच भूमि के लिये साहस के साथ संघर्ष किया। इसके परिणामस्वरूप चीनियों की हजारों की संख्या में हत्या हुई। शंघाई में हुआ यह संघर्ष सैनिक दृष्टिकोण से निरर्थक साबित हुआ लेकिन राजनीतिक दृष्टिकोण से इसके द्वारा किये गये साहस एवं वीरता का प्रदर्शन महत्वपूर्ण था। इस लड़ाई की कहानियां जब देश के दूसरे क्षेत्रों में गईं तब उसने देशभक्ति की भावनाओं को प्रज्जवलित किया।

जिन पत्रकारों ने इस लड़ाई के विषय में अपनी रिपोर्ट भेजी उन्होंने लिखा "1937-1938 की सर्दियों में चीन में अदभुत कार्य हुआ।" नानकिंग की पराजय के पश्चात सरकार को हंकाओ में स्थानांतरित कर दिय गया। इस समय उद्देश्य के प्रति पूर्ण एकता थी और ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण चीन आगे बढ़ रहा था। युद्ध सामंतों की सेनाओं ने दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम से युद्ध में शामिल होने के लिये प्रस्थान किया। साम्यवादी कार्यकर्त्ता, जापानी सेना के विरूद्ध बहादुरी से लड़े। युद्ध में जबरदस्त तरीके से भाग लेने के लिये हंकाओ में सरकार एवं साम्यवादियों ने एक साथ बैठकर योजनायें तैयार कीं। साम्यवादी सेना की एक

अन्य इकाई का गठन किया गया। अप्रैल 1938 में पहली बार जापान के इतिहास में उसकी सेना को चीन में पराजित होना पड़ा।

लेकिन ऐसा मात्र एक ही युद्ध में हो सका और इस एक मात्र विजय के उपरान्त चीन का एक के बाद दूसरा क्षेत्र जापान की आर्थिक एवं सैन्य सर्वोच्चता के सम्मुख घुटने टेकता चला गया। उन्होंने जिस चीज की इच्छा की वही उनके आंचल में आ गई, बड़े-बड़े बन्दरगाहों, औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रों, तीन मुख्य नदियों के मुहानों पर तथा राजधानी—इन सभी पर जापानियों का अधिकार हो गया।

परन्तु इस घटनाक्रम पर क्योमिनटांग एवं साम्यवादियों के विचार भिन्न-भिन्न थे। इसके फलस्वरूप जापान के विरूद्ध संघर्ष करने के लिये सामरिक नीति में दो भिन्न प्रकार के दृष्टिकोण उत्पन्न हो गये—प्रथम था ठहराव तथा दूसरा जनवादी युद्ध। च्यांग काई शेक का मानना था कि जिस समय तक अन्तर्राष्ट्रीय सहायता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक संघर्ष को रोक देना चाहिये और यह सहायता 1941 तक पश्चिमी शक्तियों से प्राप्त न हो सकी (इसका पहले भी उल्लेख किया जा चुका है)। च्यांग काई शेक की अवधारणा का यह अर्थ निकलता था कि संघर्ष को कुछ समय के लिये रोक दिया जाये। लेकिन साम्यवादियों ने अपने लाल क्षेत्र येनान से जापान के विरूद्ध संघर्ष को जारी रखा।

1938 तक च्यांग काई शेक को यह स्पष्ट होने लगा था कि साम्यवादी अपने छापामार युद्ध के द्वारा जापानियों के विरूद्ध जनता को बेहतर ढंग से संगठित कर रहे थे। इस कारण वे जनता की सहानुभूति भी जीत रहे थे। संयुक्त मोर्चे के अन्दर अब तनाव गहरे हो गये और च्यांग काई शेक ने अपने पहले की नीति के अनुसार लाल क्षेत्रों की नाकेबन्दी को पुनः प्रारम्भ कर दिया। 1939 के बसंत में उसकी सेनाओं ने साम्यवादियों के विरूद्ध पहले हुनान, फिर हुबई तथा हेबई में कार्यवाही की। नवम्बर में उसकी सेनाओं ने येनान के दक्षिणी भाग को लाल प्रभाव से अलग कर दिया। जनवरी 1941 में साम्यवादियों के मुख्यालय पर आक्रमण किया गया और उनके बहुत से नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया या उनकी हत्या कर दी गयी।

1941 में 50 करोड़ की अमेरीकी वित्तीय सहायता, चीन को दी गई और वह क्योमिनटांग को प्राप्त हुई। अब च्यांग काई शेक साम्यवादियों के विरूद्ध संघर्ष करने पर अधिक आतुर था। 1944 के प्रारम्भ में जापान का दूसरा प्रहार प्रारम्भ हो गया। जापानी सेनाओं ने एक सप्ताह के अन्दर ही क्योमिनटांग की सेनाओं को पराजित कर दिया। दक्षिण-पश्चिम की ओर होने वाली अपनी आगामी विजयों में उन्होंने शेष रहे अमेरीकी अड्डों को भी नष्ट कर दिया। युद्ध की स्थिति में भी च्यांग काई शेक साम्यवादियों की भांति जनवादी छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाने में असफल रहा। वास्तविकता यह है कि 1938 में ही क्योमिनटांग का जापान के विरूद्ध संघर्ष मृतप्राय हो चुका था।

34.5 येनान क्षेत्रः विरोध करने के स्वरूप

जुलाई 1939 में माओ त्से-तुंग का लेख "जापानी आक्रमण का सामना करने के लिये नीतियां, उपाय, तथा दृष्टिकोण" के नाम से प्रकाशित हुआ। अपने इस लेख में माओ ने बताया कि साम्यवादी नीति पूर्ण विरोध की नीति है और इसकी विशेषता यह है कि इस विरोध के लिये वह जनता के विश्वास पर आश्रित है। युद्ध स्वयं में कोई अन्त न था बल्कि साम्यवादियों का मानना था कि जनता को लामबन्द करना अति अनिवार्य था। यह एक स्वतन्त्र एवं समानता पर आधारित नये चीन का निर्माण करने की दिशा में एक साधन था। यही कारण था कि जहाँ एक ओर साम्यवादियों ने स्वतन्त्र रूप से छापामार युद्ध को जारी रखा वही उन्होंने दुश्मन द्वारा जीते गये क्षेत्रों में जापान विरोधी अड्डों को स्थापित करने की आवश्यकता पर भी बल दिया।

युद्ध के इस चरण में साम्यवादियों की आठवीं रूट आर्मी तथा न्यू फोर्थ आर्मी ने संघर्षपूर्ण युद्ध लड़ा और उसने उत्तर तथा केन्द्रीय चीन में बहुत से जापान विरोधी अड्डों की स्थापना की। 1938 की सर्दियों से 1940 के अन्त तक इन अड्डों में वृद्धि होती रही। इन क्षेत्रों में जापान विरोधी स्थानीय जनशासन की

स्थापना हुई। साम्यवादियों द्वारा अपनी सेनाओं को शत्रु के इलाके के पीछे भेजने के कारणवश ही केवल इन क्षेत्रों की स्थापना न हो पाई थी अपितु इसके अन्य कारण भी थे। जापान अधिकृत इलाकों में किसान आत्म रक्षा समूह, स्वायत्त छापामार, विद्यार्थियों के समूह और क्योमिंनटांग के असन्तुष्ट समूह जैसे संघर्षकारी दूसरे समूह स्वतः प्रकट होने लगे। ये दोनों प्रकार के प्रयास एक दूसरे के पूरक थे। इस तरह की युद्ध प्रणाली की अन्तिम परिणति बहुत से लाल अड्डों को स्थापना के रूप में होने के कारण सेना तथा नागरिकों के बीच का अन्तर लुप्त हो गया। सैन्य संगठन स्थायी सेना से लेकर क्षेत्रीय लड़ाकुओं, ग्रामीण रक्षा समूहों, तथा ऐसे किसानों तक फैला हुआ था जो अपने कृषि कार्यों को छोड़े बगैर अक्सर सैनिक कार्यवाहियों में भाग लेते थे। किसानों का समर्थन नये सिपाहियों की भर्ती कराने, सूचना देने, तथा परिवहन सुविधा, खाद्य सामग्री एवं आपात काल के दौरान अन्य प्रकार की सहायता उपलब्ध कराने में निर्णायक साबित हुआ।

सैनिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के बीच का विभेद भी समाप्त हो गया क्योंकि ये लाल क्षेत्र चीनियों द्वारा नियन्त्रित जापानियों का विरोध करने वाले केन्द्रों में परिवर्तित हो गये। दूसरी ओर ये ऐसे क्षेत्र थे जहाँ पर चीनी जनता की पहलकदमी पर स्वतन्त्र एवं नवीन चीन का निर्माण हो रहा था। ऐसा इसलिये सम्भव हो पाया क्योंकि चीन की जनता स्वयं इस युद्ध को लड़ रही थी।

जब च्यांग काई शेक ने संघर्ष को रोक दिया तब जापानी आक्रमण का भार पूर्णतः साम्यवादियों एवं लाल क्षेत्रों पर हो गया। जापानियों ने चीन के घरों एवं तैयार फसलों को नष्ट करने का अपना अनवरत अभियान जारी रखा। लेकिन जापानियों के द्वारा किये गये बर्बरता पूर्ण अत्याचार के फलस्वरूप चीन में साम्यवादियों का समर्थन लगातार बढ़ता रहा और जापान के विरूद्ध लाल क्षेत्र उनके एक मात्र शरण स्थल बन गये। ऐसे राष्ट्रों की सरकारें जो जापान विरोधी थीं चीन के अन्दर केवल क्योमिंनटांग का समर्थन कर रही थीं। इसलिये अमेरीकी सहायता या युद्ध के अन्त में जापान पर बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय दबाव से क्योमिंनटांग को ही लाभ पहुंचा। इन राष्ट्रों के द्वारा साम्यवादियों को अपना शत्रु माना गया। इन परिस्थितियों में लाल क्षेत्र पूर्णतः अलगाव की स्थिति में थे और वे केवल चीन की मेहनतकश जनता की शक्ति की बदौलत ही बने रह सके। इन लाल क्षेत्रों के बग़ैर चीन में न तो जापान के विरूद्ध समझौता विहीन संघर्ष किया जा सकता था और न ही स्वतन्त्र एवं संयुक्त चीन का अस्तित्व कायम हो पाता।

34.6 लाल क्षेत्रः नये प्रकार का समाज

यद्यपि लाल क्षेत्र अठारह जगहों में फैले हुए थे लेकिन इन क्षेत्रों में किये गये सामाजिक रूपांतरण के प्रयोग को येनान सामरिक नीति या येनान प्रारूप के नाम से जाना जाता है। येनान सामरिक नीति के पीछे जो विचार था उसको निम्न पंक्तियों के द्वारा स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता हैः "यदि आप एक ऐसे किसान को अपना साथी बनाते हैं जबकि उसको अपने काम के दिनों के दौरान सदैव धोखा दिया गया हो, उसकी पिटाई की गई हो और उसको लात मारी जाये, और आप उसके साथ मानवीय व्यवहार करें, उसके मत को जानें, उसको स्थानीय सरकार के लिये मत डालने दें, उसको स्वयं को अपने क्षेत्र की पुलिस का गठन करने दें, उसको अपने करों का स्वयं निर्धारण करने दें, तब किसान एक ऐसा आदमी बन जाता है जो कुछ प्राप्त करने के लिये संघर्ष करता है। वह इसकी सुरक्षा के लिये किसी भी शत्रु के विरूद्ध संघर्ष करेगा चाहे यह शत्रु जापानी हो या फिर चीनी।"

यही वह महत्वपूर्ण नीति थी जिसको साम्यवादियों ने लाल क्षेत्रों में अपनाया। इन क्षेत्रों के लिये इस योजना को 1940 में माओ त्से-तुंग द्वारा लिखित "नये लोकतन्त्र पर" नामक पुस्तिका में देखा जा सकता है। लेकिन इसका प्रयोग इससे पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था। जापानियों एवं चीन में उनके जमींदार सहयोगियों के विरूद्ध सम्पूर्ण चीनी जनता के संयुक्त मोर्चे का प्रारम्भ हो जाने के कारण आवश्यकताओं के अनुरूप भूमि नीति का स्थान लगान कम करने की उदार नीति ने ले लिया। भूमि लगान में 25 प्रतिशत तक की कमी की गई। अपनी इस नीति के द्वारा साम्यवादियों ने ऐसे धनी, मध्यम एवं गरीब किसानों के बहुमत का समर्थन प्राप्त किया जो खेती करने वाली भूमि पर काश्तकार थे। उनकी नीति का दूसरा पक्ष ब्याज की दरों में कमी करना था और उसको उन्होंने 10 प्रतिशत वार्षिक दर से तय कर दिया। इससे उनका और समर्थन बढ़ा। तीसरा पक्ष एक प्रगतिशील कर नीति को लागू करना था जिसका अर्थ यह था कि धनी जमींदारों पर

अधिक कर और निर्धनों पर कम कर। यह भी किसानों के पक्ष में किया गया सराहनीय कदम था क्योंकि उनको अपनी आमदनी की तुलना में बहुत अधिक कर अदा करना होता था। इस परिवर्तन का भी स्वागत किया गया। दक्षिण या केन्द्रीय चीन की अपेक्षा उत्तरी चीन के येनान क्षेत्र में बड़े भूस्वामी कम थे। भूमि अधिग्रहण की नीति को छोड़ दिये जाने का मतलब यह नहीं था कि वे मजबूत एवं शक्तिशाली बने रहे।

इन सुधारों के साथ-साथ उत्पादन को बढ़ाने के लिये भी उपाय किये गये। यह महसूस किया गया कि यदि जनता के रहन-सहन के स्तर को सुधारना है तो उत्पादन में भी वृद्धि करनी होगी। पार्टी, सरकार एवं सेना ने उत्पादन में वृद्धि करने के लिये जनता की मदद करने हेतु अपने प्रयासों को तेज किया। जापान विरोधी युद्ध के दौरान सेना एवं सरकारी संस्थाओं ने शैंसी-कांसू-सीमा क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिये दो अभियानों का संचालन किया। प्रथम का उद्देश्य (1938 में) रहन-सहन की परिस्थितियों को सुधारना था और दूसरे का लक्ष्य (1941 में) आत्म निर्भरता था। शत्रु की सीमाओं में बने लाल क्षेत्रों में गहन उत्पादन अभियान का प्रारम्भ 1942 में किया गया। 1943 तक इसने एक व्यापक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस अभियान को मुक्त क्षेत्रों में बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई। उत्पादन के क्षेत्र तथा अनाज उत्पादन में भी व्यापक वृद्धि हुई।

उत्पादन वृद्धि तथा उत्पादन संगठन की प्रणाली में सुधार सहित राजनीनिक शिक्षा के नये स्वरूपों को लागू करने के लिये किसानों को पारस्परिक सहयोग दलों एवं सहकारी समितियों के रूप में संगठित किया गया। इस सहयोग में जो सिद्धांत निहित था वह स्वतः कार्य करने एवं पारस्परिक लाभ पर आधारित था। इस प्रकार किसानों ने सामूहिक श्रम तथा औजारों के सामूहिक इस्तेमाल के माध्यम से एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया के नये स्वरूपों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। जिन तरीकों को अपनाया गया वे उदार एवं स्थानीय परिस्थिति के अनुरूप थे। सहकारी इकाइयों का आकार भिन्न प्रकार का था। उत्पादन इकाई का निर्माण एक गाँव के स्तर पर या एक गाँव के भाग के रूप में किया गया था जिससे कि एक प्रशासनिक इकाई की अपेक्षा वह स्थानीय लोगों के लिये सुविधाजनक एवं उनकी इच्छाओं के अनुरूप हो। आमदनी जो स्वाभाविक तौर पर एक महत्वपूर्ण मामला है, उसका निर्धारण किसी द्वारा खेत पर किये गये श्रम तथा उसके द्वारा खेती में निवेश की गई पूंजी के आधार पर किया गया इस तरह जो जितना अधिक श्रम करता उसको उतना ही अधिक प्राप्त होता। इस प्रकार सहकारी समितियों की व्यवस्था के द्वारा इस निर्णायक राजनीतिक मोड़ पर किसानों के बीच उत्पन्न होने वाली ईर्ष्या एवं विरोधाभास जैसी कमजोरियों को अलग रखा जा सका। इस प्रकार सामूहिक प्रयासों को लागू करते हुए भी व्यक्तिगत किसान पर आधारित अर्थव्यवस्था को बनाए रखा गया। इससे किसान को बिना भूमि पर उसके स्वामित्व को चुनौती मिले सहयोग की प्रेरणा मिली। ये प्रयोग ग्रामीण स्तर पर किसानों के आर्थिक जीवन में लोकप्रिय सहयोग के नये स्वरूपों एवं नयी संगठनात्मक संरचनाओं का प्रतिनिधित्व करते थे।

औद्योगिक सहकारिताओं को विकसित करने का हस्तशिल्पकारी के क्षेत्र में गांव के स्तर पर ही प्रयास किया गया। उन्होंने स्वयं के लिये कृषि यन्त्रों, कपड़ा, कागज़ आदि वस्तुओं का उत्पादन किया :

तेल शोधन, लोहा ढालने, मशीन बनाने, युद्ध सामग्री की मरम्मत करने, कपड़ा, जीवन उपयोगी वस्तुओं आदि का उत्पादन पूरे युद्ध काल में जारी रहा।

आर्थिक मोर्चे पर शत्रु से संघर्ष करने के लिये शत्रु द्वारा नियन्त्रित किये गये क्षेत्रों के साथ व्यापार करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। अनाज, कपास, लोहा तथा चमड़े के निर्यात को प्रतिबंधित कर दिया गया जबकि नमक, दियासिलाई, कपड़ा, बिजली के समान, सैन्य सामग्री एवं अन्य दूसरी आवश्यक वस्तुओं के आयात को बढ़ाया गया।

आर्थिक मोर्चे पर किये गये इन प्रयासों के कारण जापानियों द्वारा किये गए सर्वनाश, लूट एवं नाकेबन्दी का सफलतापूर्वक सामना किया जा सका। इसने लाल क्षेत्रों की रक्षा करने में मदद की और आर्थिक आत्म-निर्भरता को प्रोत्साहित किया। इस नीति के कारण ही स्थानीय आबादी से कर के रूप में लिये जाने वाले अनाज की मात्रा में कमी आयी नये प्रयोगों के लिये मजबूत आधार पैदा करने में भी इससे मदद मिली जिनका आगे चल कर साम्यवादी शासन ने अनुसरण किया।

आर्थिक संगठन के इन परिवर्तनों ने नये लोकतन्त्र के ढांचे को निर्मित करने के लिये दृढ़ आधारशिला के रूप में कार्य किया। लाल क्षेत्रों में स्थानीय स्तर पर राजनीतिक शक्ति का विभाजन, पार्टी, जनता के जन

संगठनों तथा जनवादी मुक्ति सेना के बीच किया गया। राज्य का वित्त, उत्पादन, शिक्षा तथा सामान्य प्रशासन जैसी सार्वजनिक सेवाओं पर नियत्रंण था। राज्य स्वयं में एक विकेन्द्रीकृत संस्था थी। राज्य के अधिकारीगण सक्रिय तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़े थे। नेतृत्व संगठनों के कार्य के बीच जो समय बचता था उसमें माओ त्से-तुंग स्वयं अपनी गुफा के आस-पास टमाटर एवं तम्बाकू का उत्पादन करता था। पार्टी का कार्य नये लोकतन्त्रीय ढांचे का निर्माण करने के लिये जनता के बीच सम्पर्क कायम करना एवं उसे राजनीतिक तौर पर गतिशील करना था। युवकों, महिलाओं, तथा किसान एवं मज़दूरों के जन संगठनों ने उत्पादन की देखरेख करने सहित जनता की राजनीतिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान किया। जैसा कि हम पहले ही सेना के विषय में उद्धृत कर चुके हैं, उसने युद्ध करने के साथ-साथ अन्य कई महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्यों को भी पूरा किया। इस सम्पूर्ण प्रयोग को "जनवादी लाइन" के नाम से जाना गया था क्योंकि इन नीतियों के अनुसरण के साथ-साथ जनता की पहलकदमी को बहुत सी गतिविधियों में शामिल किया गया था।

नये लोकतान्त्रिक ढांचे का आधार ग्रामीण, जिला एवं क्षेत्रीय—सभी स्तरों पर स्वतन्त्र तथा सार्वभौमिक चुनाव था। वे सभी जिनकी आयु अठारह वर्ष से अधिक थी सभी संस्थाओं के चुनाव में भाग ले सकते थे। लेकिन यह सुनिश्चित किया गया था कि निर्वाचित लोगों में 1/3 साम्यवादी, 1/3 स्वतन्त्र वामपंथी सदस्य, तथा 1/3 वे उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक सदस्य हो सकते थे जो कभी क्योमिंनटांग के सदस्य भी रहे हों। इस प्रकार संयुक्त मोर्चे को एक राजनीतिक स्वरूप प्रदान करने के लिये मेहनतकश मध्यम एवं निर्धन किसानों के गठबंधन, छोटे पूंजीपतियों, बुद्धिजीवियों एवं "राष्ट्रीय पूंजीपतियों" को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। संक्षेप में जापान के विरूद्ध दूसरे संयुक्त मोर्चे में उन सभी लोगों का स्वागत किया गया जो जापानी साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद का विरोध करना चाहते थे।

चुनावी प्रक्रिया एवं प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त सहकारिताओं के आर्थिक निर्णयों में, गाँव आत्म रक्षा लड़ाकू दस्तों में तथा नयी भूमि नीति को लागू करने में सभी सदस्यों की भागेदारी को सुनिश्चित करके लोकतन्त्र को अधिक व्यापक एवं गहन बनाया गया। साधारण व्यक्तिगत आत्म अभिव्यक्ति की अपेक्षा लोकतन्त्र ने स्वयं ही उच्च्य सम्पर्क ग्रहण करना शुरू कर दिया। इस प्रकार जापानियों के विरूद्ध सामूहिक संघर्ष को प्रभावशाली ढंग से संगठित करने के लिये यह एक साधन बन गया। लाल क्षेत्रों की लगभग सम्पूर्ण आबादी ने नये लोकतान्त्रिक शासन का समर्थन किया यद्यपि वह, जापानियों के विरूद्ध युद्ध के बहुत से तरीकों से फंसी हुई थी। लाल क्षेत्रों का ग्रामीण अंचलों में स्थित होने के कारण स्वाभाविक था कि नये शासन का मुख्य सामाजिक आधार किसान ही थे किन्तु इसमें मेहनतकशों, बुद्धिजीवियों एवं राष्ट्रीय पूंजीपतियों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित कर देने से केवल भूमि सुधार की अपेक्षा व्यापक कार्यों के लिए नीति गत ढांचे को तैयार करने को भी सुनिश्चित कर दिया गया था।

महिलाओं को लामबन्द करने के लिये भी विशेष प्रयास किये गये। महिला संगठनों को नयी नीति के ढंाचे के साथ तथा उनके समय की मांगों के साथ जोड़ते हुए केवल बल प्रयोग के द्वारा किये जाने वाले विवाहों, माता-पिता, तथा ससुराल एवं पति के सहायक के रूप में कार्य करने, या राजनीतिक एवं सामाजिक मांगों जैसी समस्याओं को हल करने तक सीमित न रखा गया। उन्होंने महिलाओं को कृषि कार्यों तथा सहकारिताओं में भाग लेने के लिये गतिशील बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। यद्यपि इन स्थानीय समितियों में राजनीतिक नेतृत्व के लिये मात्र 8 प्रतिशत महिलाएं ही चुनी गई फिर भी उनकी मुक्ति के कार्य का प्रारम्भ हो चुका था।

34.7 अन्तिम चरण

1941 में संकटात्मक स्थिति पैदा हो गई। मुक्त किये गये लाल क्षेत्रों में नये प्रकार की सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन रचना कर दिये जाने से सम्पूर्ण जनता के समर्थन को प्राप्त कर लिया गया था। लेकिन इस समय में जापानी आक्रमणों में और तेजी आ गई और लाल सेना की नाकेबन्दी एक बार फिर पूर्णतः कर ली गई। क्योमिंनटांग के साथ भी संबंध पूर्ण रूप से समाप्त हो गये थे। जापानियों ने "सभी की हत्या एवं सभी कुछ लूट लो" की नीति का अनुसरण किया। वास्तव में यह वर्ष साम्यवादियों के लिये जबरदस्त

कठिनाइयों वाला था। 1941 में पर्ल हार्बर पर बमबारी किये जाने के बाद अमेरीकियों तथा अंग्रेज़ों ने चीन के अन्दर जापानियों पर अपना दबाव बढ़ाना शुरू कर दिया। लेकिन वे अपने हितों को आगे बढ़ा रहे थे। साम्यवादी अमेरीका तथा ब्रिटेन को जापान के स्थान पर लाने का समर्थन नहीं करते थे। लेकिन क्योमिंनटांग ने उनका विरोध नहीं किया। इसलिये युद्ध की इन परिस्थितियों में चीन के अन्दर अमेरीका एवं ब्रिटेन के प्रवेश करने से केवल क्योमिंनटांग को लाभ मिला। क्योमिंनटांग भी 1941 तक पुनः साम्यवादियों का विरोध करने लगा था। इसी कारणवश 1941 के बाद मुक्त किये गये क्षेत्रों पर दबाव बढ़ने लगा।

1941 से 1943 तक जापानियों ने अधिकृत क्षेत्रों तथा मुक्त लाल क्षेत्रों के आस-पास जबरदस्त किले बन्दी की। इन नये जबरदस्त आक्रमणों के कारण हजारों लोगों का कत्लेआम किया गया और फसल एवं गाँवों को नष्ट कर दिया गया। मुक्त क्षेत्रों मे जनसंख्या में तेजी से कमी हुई और स्थायी सेना की संख्या 1942 में 300,000 मात्र रह गई।

इस प्रबंल धारा के प्रवाह को 1944 में ही बदला जा सका। किसानों के लड़ाकू दस्तों का विस्तार किया गया। अब संघर्ष एक निर्णायक मोड़ की ओर बढ़ रहा था। 1944-45 में संघर्ष का विस्तार किया गया। साम्यवादी क्षेत्रों का विस्तार शांटूंग, शैंसी, जियांगूस, हुनान की सीमाओं, हुबई एवं हेनान क्षेत्रों में किया गया। शत्रु द्वारा अधिकृत नगरों एवं गाँव में जापान विरोधी आंदोलन और अधिक व्यापक एवं गहरा हो गया। उत्तर, केन्द्रीय तथा दक्षिण चीन के शत्रु क्षेत्रों में स्थापित की गई सरकारों को उखाड़ फेंका गया परन्तु इन क्षेत्रों मे शत्रु द्वारा जबरदस्त लूटपाट भी की गई थी। अप्रैल 1945 तक पीपुल्स आर्मी की संख्या 910,000 तक, छापामारों की संख्या 2,00,000 तक तथा आत्म-सुरक्षा दस्तों की संख्या 10,000,000 सदस्यों तक हो गयी। 19 मुक्त क्षेत्रों की स्थापना की गई जिनका क्षेत्रफल 950,000 वर्ग किलो मीटर था तथा जनसंख्या 95,500,000 तक थी। मुक्त क्षेत्र अत्यन्त मंहत्वपूर्ण सामरिक स्थिति वाले क्षेत्र थे। जापानियों द्वारा अधिकृत किये गये अधिकतर क्षेत्रों, सम्पर्क लाइनों को जनवादी सेनाओं के द्वारा घेर लिया गया।

इसी बीच 7 मई, 1945 को जर्मनी के आत्मसमर्पण की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। जर्मनी के द्वारा बिना किसी शर्त के पूर्ण आत्मसमर्पण कर देने से जापान बड़ी ही अजीब स्थिति में आ गया और उसका सैनिक तौर पर पूर्णतः अलगाव भी हो गया। फिर भी जापान ने चीन में अपने अभियान को जारी रखा। 14 अप्रैल, 1945 को चीन एवं सोवियत संघ के बीच मित्रता एवं गठबंधन की संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि का तात्पर्य यह था कि दोनों देश उस समय तक मित्र राष्ट्रों का समर्थन करते रहेंगे जब तक कि जापान की अन्तिम पराजय नहीं हो पाती। 8 अगस्त, 1945 को सोवियत संघ ने जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इसका अनुसरण करते हुए लाल सेना ने भी जापान के विरूद्ध नये आक्रमणों को शुरू किया। दो माह के अन्दर ही पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने जापानियों से 315,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र, जिसकी जनसंख्या 18,712,000 थी और 190 शहरों को मुक्त करा लिया। मुक्त क्षेत्रों का पुनः विस्तार होने लगा।

2 सितम्बर, 1945 को अमेरीका द्वारा हिरोशिमा पर परमाणु बम गिरा दिये जाने से जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया।

इस प्रकार चीनी जनता के द्वारा जापान के विरूद्ध लड़े गये लम्बे एवं वीरता पूर्ण संघर्ष का अन्त हुआ। हजारों लोगों ने नये सिद्धान्त पर आधारित अपनी देश की मुक्ति के लिये अपने जीवन, अपने रोजगारों तथा जीवन के अपने परम्परागत मार्ग को बलिदान कर दिया। बाह्य शत्रु को पराजित कर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली गई। मुक्त किये गये क्षेत्रों में नये जीवन को रचा गया और इन नये क्षेत्रों ने उनको युद्ध में विजय प्राप्त करने में मदद की यद्यपि इनकी क्योमिंनटांग एवं उसके सहयोगियों से अभी रक्षा भी की जानी थी। इसका विवरण अर्थात चीनी क्रान्ति की सफलता का विवरण आगामी इकाई में किया जायेगा।

बोध प्रश्न 2

1) साम्यवादियों ने महिलाओं को लामबन्द करने के लिए जो प्रयास किये उनका 5 पंक्तियों में विवरण दें।

....
....
....
....
....

2) युद्ध में अमेरिका के शामिल होने पर चीन पर जो प्रभाव हुआ उसकी विवेचना लगभग 5 पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....
....

3) लाल क्षेत्रों की कार्य शैली की लगभग 15 पंक्तियों में विवेचना कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

34.8 सारांश

साम्यवादियों के लिये महान अभियान (लौंग मार्च) एक महान अनुभव था। लगातार पराजयों के बावजूद अन्ततः उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और जनता में उनका समर्थन बढ़ा। जैसे ही चीन में जापान

का आक्रमण शुरू हुआ वैसे ही तत्काल साम्यवादियों ने विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि क्योमिंनटांग के साथ संयुक्त मोर्चे का गठन किया गया था लेकिन इस समय में भी साम्यवादियों ने अपने प्रभाव क्षेत्रों में अपनी क्रान्तिकारी नीतियों एवं सुधारों को जारी रखा। लाल क्षेत्रों में ऐसे नये समाज की रचना की गई जिसने जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को रूपांतरित कर दिया। पीपुल्स लिबरेशन आर्मी एवं अन्य साम्यवादी संगठनों ने जापानियों का विरोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

34.9 शब्दावली

राष्ट्रीय पूंजीपतिः ऐसे पूंजीपति जिन्होने जापान के विरूद्ध युद्ध का समर्थन किया।

लौंग मार्च (महान अभियान): लौंग मार्च अग्रेज़ी भाषा का शब्द है और इसका प्रयोग क्यांगसी सोवियत को 1934 में लाल सेनाओं ने खाली करने के बाद जो प्रस्थान किया उसके लिये किया जाता है।

34.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर का आधार भाग 34.2 को बनायें।
2) i) × ii) ✓ iii) × iv) ×
3) अपने उत्तर का आधार उपभाग 34.3.4 को बनायें।

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर के लिये भाग 34.6 को देखें और उसके अन्दर सामाजिक सुधार उपायों, राजनीतिक शिक्षा तथा भागेदारी को शामिल करें।
2) संयुक्त राज्य अमेरिका ने साम्यवादियों का विरोध किया और क्योमिंनटांग का समर्थन उसके युद्ध में शामिल होने पर चीन के द्वारा जापान का विरोध करने की शक्ति बढ़ी, लेकिन इसने साम्यवादियों के विरूद्ध क्योमिंनटांग को भी ताकत प्रदान की। देखें भाग 34.7.
3) अपने उत्तर का आधार भाग 34.6 को बनायें।

इकाई 35 चीन की क्रांति

इकाई की रूपरेखा

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 कुछ टिप्पणियाँ
35.3 युद्धोपरांत स्थिति और राजनीतिक शक्तियाँ
35.4 गृह युद्ध का प्रारंभ
35.5 क्योमिंनटांग के आक्रमण और उसकी पराजयः 1946-47
35.6 साम्यवादी विजय (1948-49)
35.7 नई सत्ता की कठिनाइयाँ
35.8 राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचा
 35.8.1 भूमि सुधार
 35.8.2 उद्योग
 35.8.3 सामाजिक परिवर्तन
35.9 चीन की क्रांति की महत्ता
35.10 सारांश
35.11 शब्दावली
35.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

35.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आपः

- चीन में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त क्रियाशील राजनीतिक शक्तियों के बारे में जान सकेंगे,
- चीन के गृह युद्ध के बारे में जान सकेंगे,
- क्योमिंनटांग की पराजय के कारणों को जान सकेंगे,
- साम्यवादी शासन के सम्मुख उत्पन्न कठिनाइयों से परिचित हो सकेंगे,
- नई सत्ता द्वारा अपनाए गए आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक ढाँचे को समझ सकेंगे, और
- चीन की क्रांति के महत्व का मूल्यांकन कर सकेंगे।

35.1 प्रस्तावना

यह इकाई 1945 से 1949 के मध्य के घटनाक्रम का वर्णन करती है। यानी जापान द्वारा आत्मसमर्पण से लेकर उस समय तक जबकि चीन में जन गणतंत्र की स्थापना की गई। ये ऐसे चार वर्ष थे जिस दौरान क्योमिंनटांग और साम्यवादी सेनाओं के मध्य जमकर युद्ध हुआ। यह गृह युद्ध साम्यवादियों की विजय के साथ समाप्त हुआ। इस प्रकार चीन में जनतंत्र पर आधारित एक नवीन शासन की स्थापना हुई। इस घटनाक्रम के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए यह इकाई नई सत्ता के सम्मुख उत्पन्न समस्याओं का भी जिक्र करती है। इसके साथ-साथ नई सत्ता द्वारा अपनाए गए आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक ढांचों की भी चर्चा की गई है।

35.2 कुछ टिप्पणियां

चार वर्षों से कम की अवधि में नानकिंग में स्थित क्योमिंनटांग सरकार का धीरे-धीरे परंतु पूर्ण पतन हो गया। उसकी पराजय का कारण मात्र लड़ाइयों में हार या विश्व युद्ध के उपरांत चीन की अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन में उसका सक्षम न होना ही नहीं था। वास्तव में क्योमिंनटांग की इस राष्ट्रवादी सरकार ने किसी भी प्रकार के राजनीतिक या सामाजिक परिवर्तनों को प्रारंभ करने या अपनाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। इसके विपरीत साम्यवादियों द्वारा मुक्त कराए गए क्षेत्रों में चीनी जनता ने एक नए जीवन का आभास क्यांगसी व येनान के काल में किया था। अब चीनी जनता पुनः क्योमिंनटांग के प्रतिक्रियावादी शासन के अधीन लौटने को तैयार नहीं थी। इस प्रकार जनता की इच्छाओं को पूर्ण करने की असमर्थता भी क्योमिंनटांग की पराजय का उतना ही बड़ा कारण था जितना कि सैनिक मुठभेड़ों में उसकी हार। लेनिन ने एक बार यह संकेत किया था कि:

> "इतिहास में महान परिवर्तन तभी होते हैं जबकि बड़ी संख्या में लोग पुराने तौर-तरीके से जीने की इच्छा नहीं रखते और जब लोगों का एक ऐसा भाग जिसका पुराने तौर-तरीके में स्वार्थ है परंतु वह उन्हें बनाए रखने में असमर्थ होता है।"

चीन में वास्तव में 1945-49 के दौरान एक ऐसा ही ऐतिहासिक मोड़ देखने को मिलता है।

जापान की पराजय और चीन के राष्ट्रवाद की विजय के उपरान्त जो गृह युद्ध चीन में छिड़ा वह मात्र इस बात का फैसला करने के लिए नहीं था कि चीन में भावी शासक कौन होंगे। वस्तुतः इससे चीन के करोड़ों लोगों के भविष्य का निर्णय होना था। यानि कि उनकी राजनीतिक व सामाजिक स्थिति या प्रतिदिन का जीवन किस प्रकार का होगा। अतः हमारे लिए यहाँ केवल यही जानना महत्वपूर्ण नहीं है कि क्योमिंनटांग की हार क्यों हुई वरन् उतना ही महत्वपूर्ण यह जानना है कि साम्यवादी क्यों और कैसे जीते। संक्षेप में, हमें यही नहीं देखना चाहिए कि चीन के लोग किसके विरुद्ध लड़े वरन् यह भी कि वे किस बात के लिए लड़े। वास्तव में साम्यवादियों ने जो सकारात्मक विकल्प प्रस्तुत किया था वह एक ऐसे समाज की रूपरेखा थी जिसमें एक प्रजातंत्र और सामाजिक न्याय के लिए स्थान था। यह चीन के लोगों के लिए एक नई बात थी या जिसका कुछ-कुछ अनुभव उन्हें साम्यवादियों द्वारा "मुक्त क्षेत्रों" में छोटी अवधि तक चलाई गई व्यवस्था में हो चुका था।

यहाँ पर यह समझना भी महत्वपूर्ण है कि साम्यवादियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जो युद्ध चीन के लोग कर रहे थे, वह वास्तव में उनकी अपनी लड़ाई थी। यह केवल एक गृह युद्ध था, सैनिक मुठभेड़ न होकर एक क्रांतिकारी दौर था। इस दौरे में हिस्सा लेकर चीन की जनता न केवल अपने में बदलाव ला रही थी बल्कि संपूर्ण चीन के समाज को बदल रही थी। चीन की क्रांति को समझने के लिए आगे के खंडों में हम इन सामाजिक प्रक्रियाओं की चर्चा करेंगे।

क्रांति का अर्थ केवल सरकार के बदलने से ही नहीं है। क्रांति के अंतर्गत विद्यमान सामाजिक ढांचे की स्थापना शामिल है। अतः चीन में जो सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के संबंधों में बदलाव आया उनकी दृष्टि से क्रांतिकारी प्रक्रिया का अध्ययन करना महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार जन प्रजातंत्र की स्थापना के लिए जो आंदोलन हुआ उसको भी समझ लेना आवश्यक है।

1949 की चीन क्रांति ठीक उस प्रकार की सामाजिक क्रांति नहीं थी जो कि 1917 में रूस में हुई थी। स्वयं चीनी साम्यवादियों ने 1949 की विजय को जिन आयामों से देखा वे थे:

- कि यह सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम थी,
- कि यह किसान संघर्षों की जीत थी, और
- इसके द्वारा एक ऐसे राष्ट्र की एकता पुनःस्थापित हुई थी जो कि अनेक वर्षों से परस्पर विरोधी शक्तियों द्वारा बाँट दिया गया था। साम्यवादियों ने इसे एक ऐसी जनतांत्रिक क्रांति बताया जिसके द्वारा साम्यवादी, जो कि समाजवाद स्थापित करना चाहते थे, सत्ता में आए।

1 अक्तूबर 1949 को चीन के साम्यवादी दल के चेयरमैन माओ त्से-तुंग ने चीन के जनवादी गणतंत्र की स्थापना की घोषणा की थी। परंतु लाल (साम्यवादी) सेना की वास्तविक विजय का तिब्बीकरण इतना आसान

नहीं है। उत्तरी चीन के कई क्षेत्र तो 1936 में ही मुक्त करा लिए गए थे परंतु दक्षिण के कई क्षेत्र तो 1950 तक जाकर ही मुक्त कराए गए। अतः 1949 की विजय वास्तव में 1945 से 1951 तक के काल की प्रतीक है जिस दौरान जनवादी सरकार ने धीरे-धीरे संपूर्ण चीन में अपना नियंत्रण स्थापित किया। परंतु 1 अक्तूबर 1949 के दिन की प्रतीकात्मक महत्ता है। इस दिन चीन की जनता ने अपने भाग्य का निर्णय करने की सत्ता अपने हाथ में ली। एक के बाद एक तीव्रता से ऐसे कानून लागू किए गए जिन्होंने परम्परागत शोषक नीतियों को समाप्त कर दिया। प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये स्वतंत्रता के पैगाम थे जबकि पहली व्यवस्था में सबने कष्ट भोगे थे। ये कानून और संविधान चीन में नई सरकार और संगठन के आधार बने।

35.3 युद्धोपरांत स्थिति और राजनीतिक शक्तियाँ

दूसरे विश्व युद्ध के नतीजे साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए निराशाजनक थे। यद्यपि इटली, जर्मनी और जापान की हार हुई थी परंतु अब ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका जैसी विजेता शक्तियां भी उपनिवेशों में अपने विशेषाधिकारों को बनाए रखने में समर्थ नहीं थीं। वास्तव में रूस की विजय, पूर्वी यूरोप में जनवादी सरकारों की स्थापना और सशक्त राष्ट्रीय आंदोलनों ने एशिया में उपनिवेशवाद को समाप्त करने की प्रक्रिया का आधार बना दिया था। चीन से न केवल जापान बल्कि यूरोपीय शक्तियों को भी पीछे हटना पड़ा था। वास्तव में विश्व युद्ध की समाप्ति पर एक सशक्त साम्यवादी गुट के उभरने से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संतुलन परिवर्तित हुआ। समाजवाद व राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन बल पकड़ रहे थे। अतः युद्धोपरांत अंतर्राष्ट्रीय स्थिति इस हद तक चीन की जनता के पक्ष में थी कि वह विदेशी ताकतों और उन चीनी शक्तियों को जो कि विदेशियों से साठगांठ करती थी, चुनौती दे, संघर्ष कर सके। यद्यपि जापानी आत्मसमर्पण के बाद चीन में आंतरिक शक्ति संतुलन क्योमिंनटांग के पक्ष में दिखाई पड़ रहा था परंतु इसके बावजूद अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में चीनी साम्यवादियों के लिए फायदे की स्थिति थी। जापान विरोधी संघर्ष के दौरान उन क्षेत्रों का जो कि मुक्त लाल क्षेत्र समझे जाते थे, विस्तार हुआ था। परंतु 1945 के अंत तक चीन की अधिकांश भूमि पर क्योमिंनटांग का ही नियंत्रण था। सभी अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों ने क्योमिंनटांग को ही मान्यता दी थी। चीन के साम्यवादियों को विश्व शक्तियों के मध्य अभी इस बात की मान्यता हासिल करनी थी कि उन्हें चीन की जनता में व्यापक समर्थन हासिल है। साम्यवादियों के मुकाबले क्योमिंनटांग अभी भी निम्न कारणों से आगे था:

- उसके पास व्यापक वित्तीय साधन थे,
- उसके पास अधिक सैन्य सामग्री थी,
- प्रशासन, आवागमन के साधनों और अखबारों पर उसका नियंत्रण था और इसके साथ-साथ उसे चीनी समाज के प्रभुत्वशाली वर्गों का सहयोग भी प्राप्त था।

उस समय के कुछ युद्ध पत्रकारों की रिपोर्ट से ऐसा स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस सबके बावजूद भी क्योमिंनटांग साम्यवादियों का सफाया नहीं कर पाया। वास्तव में स्थिति फरवरी 1917 के रूस से कुछ मिलती-जुलती थी। वहाँ पर उस काल में दोहरी सत्ता मौजूद थी। एक उन लोगों की जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर थी और दूसरे वे लोग जिनकी ताकत जनप्रिय सहयोग पर आधारित थी। क्यांगसी और येनान काल में जो भूमि नीति अपनाई गई थी और जो प्रजातांत्रिक प्रयोग मुक्त क्षेत्रों में किए गए थे उनसे समाज में चीन के साम्यवादियों का लोकप्रिय आधार बना था। इसके द्वारा एक ऐसा समर्थन बना था जिससे राजनीतिक सत्ता की लड़ाई के परिणाम को पहले से नहीं बताया जा सकता था। जबकि क्योमिंनटांग के पास 1945 में बेजोड़ श्रेष्ठता मौजूद थी।

ऐसा नहीं था कि चीन के किसानों को मुक्त क्षेत्रों में सोवियत शासन प्रणाली से शिकायतें नहीं थीं या वे उसके आलोचक नहीं थे, या शहरों में निवासी समाजवादी भविष्य को पसन्द करते थे। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि वे साम्यवादियों के साथ अपने अनुभव को क्योमिंनटांग के साथ हुए अनुभवों से अधिक पसंद कर रहे थे। किसान विशेषतौर से क्यांगसी और येनान सोवियतों की व्याख्या ''अपनी सरकार'' कह कर करते थे और उन्हें पुराने दिनों के अनुभव से अच्छा मानते थे। वास्तव में साम्यवादियों के लोकप्रिय आधार

का एक प्रमुख कारण यह भी था कि "मुक्त क्षेत्रों" में पुलिस का कार्य किसान संगठनों द्वारा किया जाता था और स्थानीय स्वरक्षा में गाँव के किसान, दस्तकार और क्रांतिकारी शामिल थे।

दूसरी तरफ क्योमिंनटांग नियंत्रित क्षेत्रों में जन उत्साह न के बराबर था और सर्वत्र निराशा का माहौल था। सरकारी और सैनिक तंत्र में ऊपर से लेकर नीचे तक भ्रष्टाचार फैला था। इसके अतिरिक्त दूर-दराज के क्षेत्रों में केंद्रीय सरकार की पकड़ ढीली होती जा रही थी सरकार को अपनी अफसरशाही और सेना के लिए भोजन एकत्र करने में भी कठिनाई हो रही थी। किसानों में जबरन भर्ती, करों और कई अन्य लादी जाने वाली ज्यादतियों को लेकर रोष बढ़ रहा था। वेतन भोगी लोग मूल्य वृद्धि को लेकर आर्थिक संकट में थे और बुद्धिजीवी भी असंतुष्ट थे। अत्याधिक राजनीतिक नियंत्रण और दमन के कारण बुद्धिजीवी तेजस्विता और नेतृत्व में भी कमी आई थी।

वास्तव में साम्यवादी और क्योमिंनटांग के नियंत्रण वाले क्षेत्रों में जो परस्पर विरोधाभासी स्थिति मौजूद थी उसने उस सामाजिक वातावरण और पृष्ठभूमि को जन्म दिया जिसके अंतर्गत साम्यवादियों और क्योमिंनटांग के मध्य संघर्ष लड़ा गया। जापान की पराजय से यद्यपि राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम सफल रहा था परंतु अब इसने चीन में विद्यमान आंतरिक विरोधाभासों के संघर्ष का रूप ले लिया। यानि कि चीन और जापान के मध्य के विरोधाभास ने अब एक ऐसे विरोधाभास का रूप लिया जिसमें चीन की जनता का प्रतिनिधित्व साम्यवादी दल के हाथ में था और जमींदारों और बड़े बूर्जुआ वर्ग का नेतृत्व क्योमिंनटांग ने सम्भाल रखा था। अमरीका इस समय क्योमिंनटांग की मदद कर रहा था। जापानियों पर विजय के बाद अब चीन की जनता ने अपना मुख्य लक्ष्य आंतरिक शोषकों से मुक्ति पाना बनाया। इस प्रकार चीन के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में वर्ग संघर्ष मुख्य विरोध का रूप लेकर आंतरिक स्थिति पर छाया रहा। राजनीति के क्षेत्र में प्रजातंत्र और सामाजिक मुक्ति मुख्य मुद्दे बने। गृह युद्ध के विस्तार के साथ-साथ यह स्पष्ट हो गया कि इन मुद्दों की पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा क्योमिंनटांग है। अतः संघर्ष में जनता की हिस्सेदारी भी बढ़ती गई। इस संघर्ष में नियंत्रण के क्षेत्रों का आकार इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि नियंत्रित क्षेत्रों में जीवन का तरीका। और राजनीतिक शक्तियों के संबंधों में हो रहे परिवर्तनों में साम्यवादियों के पक्ष में यही बात निर्णायक बनी।

बोध प्रश्न 1

1) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चीन में राजनीतिक ताकतों की स्थिति की चर्चा 15 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन से वक्तव्य सही या गलत हैं? (√) या (×) का निशान लगाइए।

i) मुक्त क्षेत्रों के किसान पुराने समय की स्थिति में लौटना चाहते थे।

ii) क्रांति में केवल सरकार में ही बदलाव आता है।
iii) 1945-49 के दौरान क्योमिनटांग के पास साम्यवादियों के मुकाबले अधिक साधन थे।
iv) चीन के गृह युद्ध में अमरीका क्योमिनटांग का समर्थन कर रहा था।

35.4 गृह युद्ध का प्रारम्भ

चीन में जापान के आत्मसमर्पण के बाद सैन्य सामग्री, सम्पत्ति और क्षेत्र आदि पर अधिकार स्थापित करने के लिए छीना-झपटी प्रारंभ हो गई। चीनी सेना के अध्यक्ष ने चीन में जापानी कमांडर को यह आदेश भेजा कि वह अपने 1,090,000 सैनिकों और सैन्य सामग्री को युद्ध क्षेत्रों के केवल चीनी कमांडरों के सम्मुख ही समर्पित करे। यद्यपि साम्यवादी जापान के विरुद्ध संघर्ष में बराबर के हिस्सेदार थे। चीनी सेना के सभी कमांडर क्योमिनटांग के अधिकारी थे।

इस प्रकार इस आदेश के परिणामस्वरूप साम्यवादी जापानी सैन्य टुकड़ियों का समर्पण लेने से वंचित कर दिए गए। इसी समय च्यांग काई शेक ने साम्यवादी सेना की टुकड़ियों को तार द्वारा अपने स्थानों पर रहने का आदेश दिया और उन्हें जापानी शस्त्रों को जब्त करने से भी मना कर दिया।

साम्यवादी यह समझ गए कि क्योमिनटांग इस नीति के द्वारा चीन में एकमात्र राजनीतिक शक्ति बनना चाहता है। अतः माओ-त्सु-तुंग ने तुरंत लाल सेना की टुकड़ियों को अंदरूनी मंगोलिया, मंचूरिया और उत्तरी व दक्षिण शैंशी की ओर कूच के आदेश दिए। उन्हें दुश्मन की सेनाओं पर हमला करने और उनका आत्मसमर्पण लेने को तैयार रहने के लिए भी कहा गया। चू-तेह के नेतृत्व में लाल सेना ने ऐसा ही किया। क्योमिनटांग सरकार ने इस पर साम्यवादियों को जनता का शत्रु बताया। इसके जवाब में माओ ने क्योमिनटांग पर यह आरोप लगाया कि उसने चीन की जनता के विरुद्ध युद्ध छेड़ा है।

तत्काल युद्ध मंचूरिया को लेकर हुआ परंतु साम्यवादी वहाँ अपना प्रभुत्व स्थापित करने में कामयाब रहे। ऐसा तब हुआ जबकि लाल सेना में1 लाख से भी कम सैनिक थे जबकि क्योमिनटांग की सेना में 3 लाख से अधिक सैनिक थे। अमरीका की यह धारणा थी कि चीन में गृह युद्ध उसके स्वार्थों के विरुद्ध जाएगा अतः उसने दोनों के मध्य मध्यस्थता का प्रयास किया। राष्ट्रपति ट्रुमैन ने शांति स्थापना के लिए अपने विशेष दूत जनरल जोर्ज सी मार्शल को भेजा। च्यांग काई शेक मंचूरिया पर पूर्ण नियंत्रण से कम पर सुलह के लिए तैयार नहीं था जबकि वहाँ साम्यवादियों का कब्जा था। यह स्वाभाविक ही था कि साम्यवादियों ने इसे नहीं माना। 1946 आते-आते समझौते की समस्त संभावनाएं समाप्त हो गई और गृह युद्ध पूरे जोर शोर से प्रारंभ हो गया।

इस बीच मुद्रास्फीति और बढ़ती हुई कीमतों के कारण क्योमिनटांग क्षेत्रों में ही गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। जबकि "मुक्त क्षेत्रों" में साम्यवादियों ने गद्दारों के विरुद्ध अभियान छेड़ा। उदाहरण के लिए जिन जमींदारों ने जापानी सेनाओं का साथ दिया था, गाँव की सभाओं में उनकी भर्त्सना की गई। 1946 में पहले से ही जारी किए गए एक निर्देश के आधार पर लगान और ब्याज की दर में कमी करने के लिए एक जन आंदोलन चलाया गया। इसके साथ-साथ गरीब व मध्यम श्रेणी के किसानों के ऋण माफ कर दिए गए। मई 1946 में, "भूमि जोतने वाले की" का नारा लोकप्रिय हुआ। जमींदारों पर भारी कर लगाए गए। इस प्रकार क्योमिनटांग व मुक्त क्षेत्रों में हो रहे घटनाक्रम के कारण वर्ग संघर्ष (कृषि क्रांति के द्वारा) गृह युद्ध का एक प्रमुख मुद्दा, समझौता वार्ता के विफल होने से पहले ही बन चुका था। यद्यपि चीन की जनता युद्ध से परेशान थी तथापि इस मुद्दे को लेकर वह एक बार फिर युद्ध को तैयार थी। वास्तव में इस बार का युद्ध उनके अपने अधिकारों और जीविका की रक्षा को लेकर था।

35.5 क्योमिंनटांग के आक्रमण और उसकी पराजयः 1946-47

जून 1946 में क्योमिंनटांग ने दो लाख सैनिकों की सहायता से उत्तरी व मध्य चीन के बड़े साम्यवादी अड्डों पर हमले किए । इसके कारण साम्यवादियों को मध्य मैदानों और यांगसी क्षेत्र से पीछे हटना पड़ा । मार्च 1947 तक येनान जो कि लौंग मार्च के बाद सबसे बड़ा साम्यवादी अड्डा था, क्योमिंनटांग के कब्जे में आ गया ।

परंतु क्योमिनटांग की यह विजय भ्रामक थी । साम्यवादी अभी अपनी ताकत को एकजुट कर रहे थे और सीधे टकराव से बच रहे थे । इसीलिए उन्होंने आक्रामक रवैया नहीं अपनाया । न ही अभी उन्होंने अपने क्षेत्रों को बचाने का प्रयास किया । वास्तव में उन्होंने गुरिल्ला युद्ध की नीति अपनाई जिसमें यकायक आक्रमण कर पुनः सुरक्षा की स्थिति में आ जाना शामिल था । इस प्रकार की नीति के कारण उन्हें बहुत कम नुकसान उठाना पड़ा । दूसरी तरफ क्योमिंनटांग को अपनी सेना का एक बड़ा भाग साम्यवादियों से जीते गए क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए रखना पड़ा । उनके सामने कोई और रास्ता भी नहीं था क्योंकि इन क्षेत्रों की जनता साम्यवादियों की एक नवीन जीवन देने की नीति के कारण उनके पक्ष में थी और क्योमिंनटांग की विरोधी थी । इस प्रकार साम्यवादी अपनी सुविधा और साधनों के अनुसार अपनी मनमर्जी का रणक्षेत्र चुनते थे और अपनी समस्त शक्ति से उन क्षेत्रों में आक्रमण करते थे जहाँ क्योमिंनटांग की स्थिति कमजोर थी ।

1947 के बसंत में पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने लिन-पिआओ के नेतृत्व में लगातार ऐसे आक्रमण किए कि शहरों में केंद्रित क्योमिंनटांग की सेनाएं हैरान हो उलझन में पड़ गई । शहरों को छोड़ समस्त मंचूरिया को साम्यवादियों ने जीत लिया । फरवरी 1947 में साम्यवादी दल की केंद्रित समिति ने क्योमिंनटांग की राष्ट्रवादी सरकार को उखाड़ फेंकने का नारा दिया । 1947 के अंत तक साम्यवादी हिंबई, शानटुँग और शान्शी क्षेत्रों में पुनः अपना नियंत्रण करने में सफल रहे । उन्होंने फरवरी 1947 तक 56, मई में 90 और सितम्बर में 97 क्योमिंनटांग की सैन्य टुकड़ियों को हराया । इस प्रकार क्योमिंनटांग की लगभग एक चौथाई सेना पराजित हो गई ।

क्योमिंनटांग को इस समय सैनिक कठिनाइयों के साथ-साथ अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में अमरीका से सांठ-गाँठ के परिणामस्वरूप आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा । जापान ने आत्मसमर्पण के उपरान्त समस्त औद्योगिक सामग्री, बैंक व्यवस्था और वित्तीय संस्थाएं साम्यवादियों को न सौंपकर क्योमिंनटांग के हाथों में दी थी ; इस सब संपत्ति का मूल्य लगभग 1800 लाख अमरीकी डॉलर था और इस पर बड़े पूंजीपतियों के छोटे से गुट का नियंत्रण था । वास्तव में चीन के चार बड़े पूंजीपति परिवार 70 से 80 प्रतिशत औद्योगिक पूंजी के मालिक थे । जापानियों ने चीनी जनता की जो भूमि और अन्य सम्पति जब्त की थी उस पर भी अब क्योमिंनटांग का अधिकार था । इन चार बड़े परिवारों और उनके सहयोगियों ने, जो कि क्योमिंनटांग को नियंत्रित करते थे, एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का निर्माण करने के स्थान पर राष्ट्रवादी सरकार को साम्यवादियों के विरूद्ध अमरीकी सहायता के बदले में चीन की अर्थव्यवस्था को अमरीकियों को गिरवी रखने को बाध्य किया । अमरीकियों को साम्यवाद विरोधी ताकत को सहयोग देने में कोई एतराज न था । इसके अतिरिक्त उन्हें सोवियत रूस के विरूद्ध एक अड्डा भी मिल जाता ।

नवम्बर 1946 में गृह युद्ध के दौरान ही क्योमिंनटांग ने चीन-अमरीका वाणिज्य और जहाजरानी संधि पर हस्ताक्षर कर चीन के बाजार अमरीकी उत्पादों के लिए खोल दिए थे । इस प्रकार चीन के विदेश व्यापार में अमरीका को एक निर्णायक स्थान मिल गया था । उदाहरण के लिए चीन के 51 प्रतिशत आयात और 57 प्रतिशत निर्यात पर अमरीकी नियंत्रण था । जबकि 1936 में ये आँकड़े 22 और 19 प्रतिशत ही थे । कई उद्यमों में प्रबंध और प्रशिक्षण का कार्य अमरीकी नियंत्रण में रख दिया गया । अमरीकियों ने कई कारखाने भी लगाए और अनेक सुविधाएं या तो प्राप्त की या उन्हें दे दी गई ।क्योमिंनटांग के प्रशासन का पूर्ण लाभ उठाते हुए अमरीकियों ने करों से अपने को बचाया, कच्चे माल पर एकाधिकार स्थापित किया और बाजार व यातायात सुविधाओं पर अपना नियंत्रण स्थापित किया ।

इस सबका अर्थ था चीनी अर्थव्यवस्था का अमरीकी पूंजी द्वारा उपनिवेशीकरण । इस से चीन के राष्ट्रीय उद्योगों और वाणिज्य का विकास पूर्णतया रुक गया । परंतु यह स्थिति चीन के बुर्जुवा वर्ग और उद्यमियों के एक बड़े वर्ग के हितों के विरूद्ध थी । और गृह युद्ध की स्थिति में इसका नतीजा यह निकला कि व्यापारिक

और औद्योगिक बुर्जुवा वर्ग की एक बड़ी संख्या साम्यवादियों के साथ सहयोग करने को तैयार थी। अर्थात् अब साम्यवादियों के पक्ष में सामाजिक ताकतों का पुनः मिलन संभव था।

मूल्यों में असीमित वृद्धि ने क्योमिंनटांग क्षेत्रों में भयंकर सामाजिक व आर्थिक संकट उत्पन्न किया। मूल्य सूचकांक जो 1937 में 100 था 1947 में बढ़कर 210 हो गया। अतः चीनी जनता निराशाजनक स्थिति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार करने को तैयार थी। उसने यह भी महसूस किया कि जापानियों को देश से बाहर खदेड़ने के लिए जो कुर्बानियां दी गई थीं क्योमिंनटांग देश को फिर से एक विदेशी सत्ता (अमरीका) के हाथों में बेचकर उन्हें बेकार बना रहा था। विदेशी शासन से जो स्वतंत्रता उन्होंने हासिल की थी उसका धीरे-धीरे हनन हो रहा था। ऐसी स्थिति में जनता को केवल साम्यवादी ही संघर्षरत दिखाई दिए।

क्योमिंनटांग के विरुद्ध उसके स्वयं नियंत्रित क्षेत्रों में और उनके बाहर समाज के लगभग सभी तबकों में असंतोष फैल रहा था। कभी-कभी इसका नेतृत्व भूमिगत साम्यवादी कर रहे थे। परंतु अक्सर यह अपने आप ही क्योमिंनटांग की नीतियों के कारण उभरता रहा। सितम्बर 1946 से कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का नारा "चीन छोड़ो" लोकप्रिय हो उठा था। शीघ्र ही एक ऐसा जन आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसके समर्थकों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे तब तक आंदोलन जारी रखेंगे जब तक कि अमरीकी सैनिक चीन नहीं छोड़ जाते। अलग-अलग इलाकों में इस आंदोलन ने अलग-अलग रूप लिए। उदाहरण के लिए एक दिसम्बर 1947 के दिन शंघाई में छोटे-छोटे स्टॉल (दुकान) लगाने वालों ने संघर्ष छेड़ा। कारण कुछ यूँ था कि शंघाई में लोग अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ सड़क के किनारे लगे छोटे स्टॉलों से लेते थे और वहाँ अनेक स्टॉल वाले दुकानदार थे। क्योमिंनटांग सरकार ने अपने बड़े व्यापारी समर्थकों का बाजार पर एकाधिकार स्थापित कराने की दृष्टि से सड़क किनारे की छोटी दुकानों को बन्द करने के आदेश दिए। इससे इन छोटे दुकानदारों के लिए रोजी-रोटी की समस्या खड़ी हो गई। जब उन्होंने इस आदेश का विरोध किया तो उन्हें क्रूरतापूर्वक दबाया गया। क्योंकि शंघाई क्योमिंनटांग और अमरीकी गठबंधन का प्रमुख केंद्र था इस घटना के विरूद्ध समस्त चीन में रोष फैला। एक अन्य हादसे में पीकिंग विश्वविद्यालय की एक छात्रा का अमरीकी सैनिक द्वारा बलात्कार किया गया। इसके विरोध में सारे चीन में 5 लाख से अधिक युवाओं ने स्कूलों व विश्वविद्यालयों में हड़ताल की और प्रदर्शन भी किए।

मई 1947 में एक "नवीन चार मई आंदोलन" के प्रारंभ करने की घोषणा की गई। इसका उद्देश्य क्योमिंनटांग की समस्त नीतियों का विरोध करना था। आंदोलन का कठोरता से दमन किया गया। सैकड़ों युवा घायल हुए और दो महीने में 13000 से अधिक गिरफ्तार किए गए। परंतु इस दमन से देशभक्त प्रजातांत्रिक आंदोलन को बढ़ावा ही मिला। शीघ्र ही यह आंदोलन नागरिक अधिकारों की रक्षा के आंदोलन के रूप में आगे बढ़ा।

एक लम्बी अवधि की निष्क्रियता के बाद श्रमिक आंदोलन भी फिर से उभरने लगा। मई 1947 में शंघाई के श्रमिकों ने भूख और महगांई के विरूद्ध हड़तालें की। यांगसी के निचले क्षेत्रों में "चावल दंगे" (Rice riots) भड़क उठे। नतीजन परिवर्तन विरोधी पुरातनपंथियों के विरूद्ध एक बार फिर शहरों में भी संघर्ष छिड़ गया।

गांवों में, क्योमिंनटांग के क्षेत्रों में किसान आंदोलन ने तीव्रता पकड़ी। दंगों और प्रदर्शनों के साथ किसानों ने कर और लगाव देने से इंकार कर दिया। उन्हें इकट्ठा करने वाले अधिकारियों पर हमले किए गए। ताइवान में भी क्योमिंनटांग के शासन का विरोध हुआ।

सरकार ने इस सब का जवाब पाशिवक शक्ति के इस्तेमाल के रूप में दिया। कवि वेन-ई-टयो की, जो कि प्रजातंत्र के संघर्ष से जुड़े थे, हत्या कर दी गई। मई 1947 में हड़तालों और प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगाए गए। यहाँ तक कि दस से अधिक व्यक्तियों को एक साथ अर्जी देने का भी अधिकार नहीं था। इस प्रकार शांतिपूर्वक विरोध करने के रास्ते भी बंद कर दिए गए। जो लोग क्योमिंनटांग और साम्यवादियों के मध्य खड़े थे उनके लिए क्योमिंनटांग की दमनकारी नीति को देखते हुए अब साम्यवादियों के साथ जाने के कोई दूसरा रास्ता नहीं था।

क्योंकि "मुक्त क्षेत्रों" में साम्यवादियों को किसानों का समर्थन प्राप्त था, इसलिए वे क्योमिनटांग के दमन से बचे रहे। इन क्षेत्रों में साम्यवादी दल ने अपनी स्थिति अक्तूबर 1947 के कृषि सुधार कानून के द्वारा और मजबूत की। इसके द्वारा जमींदारों की भूमि जब्त कर ली गई। धनी किसानों को एक निर्धारित सीमा से ज्यादा भूमि दे देनी पड़ी। वास्तव में इस कानून का उद्देश्य जमींदारों के वर्ग को समाप्त करना था न कि व्यक्तिगत रूप से उनकी हत्या करना। जमींदारों और धनी किसानों, बड़े जमींदारों और छोटे जमींदारों, साधारण जमींदारों और उत्पीड़न करने वाले जमींदारों के मध्य स्पष्ट भेद किया जाता था। प्रत्येक श्रेणी के साथ कृषि कानून के ढाँचे के आधार पर व्यवहार किया जाता था। परंतु इस कानून का आधारभूत सिद्धांत "भूमि जोतने वालों की" ही था।

ध्यान देने की बात यह है कि इन सुधारों को प्रशासनिक तौर पर ऊपर से नहीं लादा गया। कृषि परिवर्तन के आंदोलन की वास्तविक ताकत गरीब और मध्यम श्रेणी के किसान थे। भूमि का वितरण निम्न तरीके से किया जाता था:

समस्त सार्वजनिक भूमि और जमींदारों की भूमि पर स्थानीय किसान सभा कब्जा कर लेती थी। उसके बाद समस्त भूमि को प्रति व्यक्ति दर के हिसाब से बांटा जाता था। समस्त इलाके की जोतों के आकार को भी पुनः समायोजित किया जाता था। इसमें यह ध्यान रखा जाता था कि इलाके के प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादकता या आकार के हिसाब से बराबर की जोत मिले।

एक साल के भीतर 100 लाख से अधिक किसानों को "मुक्त क्षेत्रों" में भूमि प्राप्त हो गई थी। साम्यवादी दल ने किसानों को स्वैच्छिक तौर पर सहकारिता आंदोलन में भी भाग लेने को प्रेरित किया। कृषि के तरीकों में सुधार और उत्पादकता में बढ़ोतरी लाने के लिए ऐसा किया गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 1947 में जो विजय साम्यवादियों ने हासिल की, वह केवल सैनिक तरीकों से ही नहीं मिली थी। क्योमिंनटांग और मुक्त क्षेत्रों में जो अलग-अलग रूप वर्ग संघर्ष ने लिए उनसे जहाँ एक ओर क्योमिंनटांग की स्थिति कमजोर हुई तो दूसरी तरफ समस्त चीन में साम्यवादी दल की स्थिति सुदृढ़ हुई। भूमि मिलने के साथ किसान गृह युद्ध में उत्साहपूर्वक साम्यवादियों की ओर कूद पड़े। क्योमिंनटांग के सैनिकों की संख्या निरंतर गिर रही थी। युद्ध प्रारंभ होने के समय यह संख्या 4,300,000 थी जो कि जुलाई 1947 में 3,700,000 रह गई। उधर पीपुल्स लिबरेशन आर्मी जो पहले 1,200,000 थी अब लगभग 2,000,000 हो गई। युद्ध स्थिति में भी एक आधारभूत परिवर्तन आया था। पिछले 20 वर्षों से चीन में क्रांतिकारी सेना सुरक्षात्मक युद्ध ही लड़ती आई थी, परंतु अब पहली बार उसने आक्रामक स्थिति हासिल की थी। लिबरेशन आर्मी क्योमिंनटांग क्षेत्रों में दूर तक जा पहुंची माओ-त्सु-तुंग ने इस अवस्था को "युद्ध में बदलाव लाने वाला मोड़" बताया था।

35.6 साम्यवादी विजय (1948-49)

1948 की बसंत ऋतु तक साम्यवादियों ने पीली नदी के रास्ते में तकरीबन सभी शहरों में प्रवेश पा लिया था। येनान पर भी (जो कि जापान के विरूद्ध युद्ध में उनका प्रमुख अड्डा रहा था और 1946 में उसे उन्हें छोड़ना पड़ा था) पुनः अधिकार स्थापित कर लिया गया। आगे के तीन प्रमुख अभियानों में उन्होंने क्योमिंनटांग की सेनाओं को पूर्णतया पराजित किया:

- पहला मुख्य अभियान पूर्वी चीन में था। 16 सितम्बर, 1948 के दिन शानटुंग प्रांत की राजधानी त्सीनान पर हमला किया गया। आठ दिन के संघर्ष के बाद उसे क्योमिंनटांग से स्वतंत्र करा लिया गया।
- 12 सितम्बर से 2 नवम्बर 1948 तक पीपुल्स आर्मी ने उत्तरपूर्व में जो अभियान चलाया उसके परिणामस्वरूप शैनयांग और समस्त उत्तर-पूर्वी चीन मुक्त करा लिया गया। यह एक महत्वपूर्ण इलाका था क्योंकि चीन के औद्योगिक नगर और सबसे उत्पादक क्षेत्र यहीं थे।
- 7 नवम्बर 1948 और 18 जनवरी 1949 के मध्य पीपुल्स आर्मी ने हुआई नदी के उत्तर का इलाका मुक्त करा लिया और उसके दक्षिण का भी बड़ा भाग अपने नियंत्रण में ले लिया।

5 दिसम्बर 1948 से 1 जनवरी 1949 के मध्य एक अन्य अभियान में पी.एल.ए. ने पीकिंग को भी मुक्त करा लिया। इस समय च्यांग काई शेक ने बातचीत का दिखावा किया परंतु वह अपनी सेनाओं के पुनर्गठित करने को वक्त चाहता था। साम्यवादियों को उसका यह खेल स्पष्ट हो गया। अतः अप्रैल 1949 में उन्होंने संपूर्ण देश को मुक्त कराने के लिए एक नया अभियान शुरू किया। लगभग 20 वर्ष से चले आ रहे क्योमिंनटांग के मुख्यालय नानकिंग को जीतने में सिर्फ तीन दिन लगे। नानकिंग के मुक्त होने का अर्थ था क्योमिंनटांग के शासन की समाप्ति जिसके बाद चीन की समस्त मुख्य भूमि साम्यवादियों के अधिकार में आ गई। अब च्यांग काई शेक अपने कुछ सैनिकों के साथ ताइवान भागने को बाध्य हुआ। चीन के पश्चिमी प्रांतों में शासन कर रहे स्वतंत्र युद्ध मामलों में अपने हथियार डाल दिए और साम्यवादी शासन को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार साम्यवादियों की गृह युद्ध में विजय हुई। इस प्रकार चीन की जनता की पहली बार अपनी सरकार सारे देश में बनी।

जैसा कि पहले भी होता आया था, क्योमिंनटांग द्वारा जन सहयोग खोना और साम्यवादियों को जन सहयोग प्राप्त होना इस निर्णायक विजय का महत्वपूर्ण कारण था। वास्तव में मूल्य वृद्धि को रोकने में क्योमिंनटांग की असमर्थता और उत्पादन का रुकना क्योमिंनटांग को जनता से दूर ले गये थे।

उधर 1948-49 के मध्य साम्यवादियों ने एक लचीली कृषि नीति अपनाकर जनता के एक बड़े हिस्से का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। प्रारंभ में एक उदार नीति अपनाई गई। उदाहरण के लिए धनी किसानों को इस समय नहीं छेड़ा गया और न ही कोई ऐसा कदम उठाया गया जो मध्यम वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के हितों के विरूद्ध था। इस प्रकार ये वर्ग भी उनसे खफा नहीं हुए। इस समय प्रयत्न यह था कि समस्त प्रजातांत्रिक शक्तियों को एक साथ रखा जाए। इसमें कई गैर साम्यवादी और साम्यवादियों विरोधी अन्य गुट भी शामिल थे। इन सबके संयुक्त प्रयासों से राष्ट्र का पुनर्गठन किया जाना था। इस प्रकार की नीति को माओ ने अपने पर्चे "ऑन द पीपुल्स डेमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप" के द्वारा सामने रखा था और "मुक्त क्षेत्रों" मे इसे लागू कर दिया गया था।

इस प्रकार विजय हासिल होने से पहले ही नए राज्य के ढाँचों के निर्माण की परिस्थिति बना दी गई थी। इसका आधार अन्य प्रजातांत्रिक गुटों के साथ गठबंधन कर एक ऐसे "समान कार्यक्रम" का अपनाया जाना था जो चीन की जनता की महत्वकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता था। 1 अक्तूबर 1949 के दिन चीन के जनवादी गणतंत्र की औपचारिक रूप से घोषणा कर दी गई।

35.7 नई सत्ता की कठिनाइयाँ

नई सत्ता के लिए अभी भी कई परेशानियाँ थीं। विश्व की अन्य शक्तियां उसे मान्यता देने को तैयार नहीं थीं। अमरीका ताइवान में च्यांग काई शेक की सरकार को ही चीन की सरकार के रूप में मान्यता दिए हुए था। अन्य शक्तियों का रवैया हिचकिचाहटपूर्ण था—कुछ का मान्यता का दिखावा करना और कुछ का शांत रहना। साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र में चीन की सीट नहीं दी गई। सोवियत रूस को छोड़कर, जो कि एक समाजवादी देश था, अन्य देशों का रवैया शत्रुतापूर्ण ही था। वास्तव में चीन की इस नई सत्ता में उन्हें साम्राज्यवादियों द्वारा समर्पित शक्तियों की हार और समाजवाद की विजय दिखाई पड़ी। और वे सैद्धांतिक तौर पर समाजवाद के विरोधी थे। प्रजातंत्र की बात अब वे भूल गए और इस तथ्य को भी अनदेखा कर दिया कि नई सत्ता को व्यापक जन समर्थन प्राप्त था। अमरीका ने तो वास्तव में अगले 20 वर्षों तक साम्यवादी चीन को मान्यता नहीं दी।

नई सत्ता के सम्मुख अन्य समस्याएँ थीं:

- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पूर्णतया तहस नहस होना,
- तेजी से बढ़ रही मुद्रास्फीति,
- नष्ट-भ्रष्ट और बिगड़ी हुई संचार व्यवस्था,
- विदेशी व्यापार का न होना,
- ऐसे उद्योग जिनमें कोई उत्पादन नहीं हो रहा था, और
- कई क्षेत्रों में अकाल का खतरा।

इसके अतिरिक्त चीन की आधुनिक भाप से चलने वाली नौकाओं और जहाजों में से कुछ भी नहीं बचा था। ये यांगसी नदी पर आवागमन और व्यापार के मुख्य साधन थे और विदेशी मिलकियत के अधीन थे।

इन सबकों देखते हुए कई प्रेक्षकों की यह धारणा थी कि साम्यवादी शासन अधिक समय तक नहीं चल पाएगा। लेकिन वे यह नहीं समझ पाए कि नई सत्ता के पक्ष में एक बहुत महत्वपूर्ण बात थी उसके पीछे चीन की जनता का समर्थन और सहयोग। चीन की जनता नई सत्ता को अपने देश के इतिहास और अपने व्यक्तिगत जीवन में एक नए सवेरे के रूप में देख रही थी। बहुत कम को यह मालूम था कि साम्यवाद क्या है परंतु सब इससे परिचित थे कि वे एक नवीन समाज का निर्माण कर रहे हैं। गरीब से गरीब व्यक्ति समाज को उसकी जरूरत और उसमें अपने नए स्थान को महसूस कर रहा था। अनेक वर्षों के बाद पहली बार सारा देश संगठित और शांतिपूर्ण था।

संचार व्यवस्था को तेजी से ठीक किया जा रहा था। कुछ आलोचकों ने यह आरोप लगाया कि इस कार्य में लगे मजदूरों को मजदूरी नहीं दी गई। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि यह एक जन कार्य था और जनता ने मिल-जुलकर इस कार्य को संभाला था। उसके खान-पान की व्यवस्था पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने की और उनसे वही वर्ताव किया जाता था जैसा सैनिकों से। 1949 के जाड़े में शहरों में भोजन की कोई कमी नहीं हुई। यांगसी नदी के रास्ते से छोटी-छोटी नावों में खाद्य सामग्री 1400 मील ऊपर ले जाई गई। जिस प्रकार 1917 में सोवियत रूस ने विदेशी राज्यों द्वारा लगाई गई आर्थिक रूकावटों के बावजूद अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफलता प्राप्त की थी, ठीक उसी प्रकार चीन की जनता ने भी की।

सेना को अब और कोई लड़ाई नहीं लड़नी थी। अतः सैनिकों को शहरों में टूटी हुई इमारतों के पुनर्निर्माण का कार्य सौंपा गया। एक नई मुद्रा लागू की गई। 1951 के मध्य तक, यानि कि विजय के दो वर्षों में ही, मुद्रास्फीति पर अंकुश लगा दिया गया और अर्थव्यवस्था में कुछ स्थायित्व आया।

इस नए स्थायित्व के आधार पर चीन के साम्यवादी दल ने अब अपने कियांगंसी और येनान के अनुभवों को सारे देश मे लागू करने का प्रयास किया।

बोध प्रश्न 2

1) क्योमिंनटांग की पराजय में सहयोगी कारकों की लगभग 10 पंक्तियों मे चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) साम्यवादियों का सामाजिक आधार क्या था? 5 पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

3) नई सत्ता को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनकी चर्चा 10 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.8 राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचा

1948 में माओ के सुझाव पर साम्यवादी दल द्वारा मई दिवस पर अपनाए गए नारों में यह घोषणा की गई थी कि:

> "समस्त प्रजातांत्रिक दल, जन संगठन और जन नेताओं को तुरंत एक राजनीतिक सलाह सम्मेलन बुलाना चाहिए जिसमें इस बात पर विचार किया जाए कि किस प्रकार एक जन सम्मेलन बुलाकर जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनाई जाए।"

इस प्रकार की सरकार की रूपरेखा का ब्यौरा माओ ने अपने निबंध "**ऑन द पीपुल्स डेमोक्रेटिक डिक्टेटरशिप**" में दिया था। इसमें जिस राजनीतिक ढांचे की बात माओ ने की थी उसमें देश के राजनीतिक आर्थिक जीवन में चीन की जनता के बहुत व्यापक भाग द्वारा हिस्सा लिए जाने की बात कही गई थी। वास्तव में जमींदारों और प्रतिक्रियावादियों की शक्ति को गिराने के लिए जनता की समस्त शक्ति को लगाया जाना था।

साम्यवादी विजय द्वारा चीन में गणतंत्र की घोषणा के साथ ही इस प्रकार की सरकार बनाई गई। इस गठबंधन में 14 दल या गुट शामिल थे। सरकार में और प्रांतों में उपराज्यपालों के रूप में अनेक गैर-साम्यवादी भी इसमें शामिल थे। यह राजनीतिक ढांचा इस बात का प्रतीक था कि नई सत्ता को व्यापक समर्थन प्राप्त है। सामाजिक गठबंधन की दृष्टि से यह एक प्रकार का संयुक्त मोर्चा था जिसमें मजदूर, किसान और बूर्जुवा वर्ग शामिल था। माओ को जनवादी गणतंत्र का चेयरमैन बनाया गया।

35.8.1 भूमि सुधार

सबसे पहले लागू की गई महत्वपूर्ण नीतियों में भूमि सुधार की नीति थी। इसमें दो बातें थीं:

- समस्त भूमि गाँव या जिला स्तर पर जहां तक हो सके बराबर रूप में बांटी जानी थी, और
- भूतपूर्व जमींदारों को एक छोटा हिस्सा ही दिया जाना था और वह भी तब जबकि वे स्वयं उस पर कार्य करने को तैयार हो।

नवीन राजनीतिक ढांचे के विस्तृत आधार को देखते हुए कृषि नीति भी उदार ही रखी गई थी जिससे कि गांवों में अधिकांश वर्गों का समर्थन बना रहे। इस दृष्टि से गृह युद्ध के दौरान अपनाई गई नीति से यह नीति अधिक उदार थी। वास्तव में इसके द्वारा गांवों के आर्थिक विकास में तीव्रता लाने का प्रयास किया

गया था। साथ ही साथ सामाजिक और आर्थिक संबंधों को भी एक नया मोड़ दिया जाना था।

1950 में जो कृषि कानून पारित किया गया उसमें 1947 के कानून की अपेक्षा गांवों में जमींदारों की जमीन और संपत्ति का विभाजन बिना किसी मुआवजे के किया गया। परंतु इस बार उन्हें शहरों में अपनी संपत्ति और व्यापार बनाए रखने की छूट दे दी गई। इसी प्रकार 1947 की अपेक्षा धनी किसानों को उनकी जोत बरकरार रखने की छूट इसलिए दी गई कि उनकी उत्पादन क्षमता अधिक थी और शहरों में चावल पहुंचाया जाना था। लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये लचीले तरीके केवल नए मुक्त क्षेत्रों में ही लागू किए गए जहां पर कि पहली बार भूमि सुधार लागू किए जा रहे थे। पुराने मुक्त क्षेत्रों में 1947 के तरीके (जिनकी चर्चा हम इकाई 4 में कर चुके हैं) लागू रहे।

जमींदारों की संपत्ति गरीब और मध्यम श्रेणी के किसानों के बीच बांटी गई। भाड़े की खेती समाप्त कर दी गई। इसमें जमींदारों को नकदी में या फसल के हिस्से के तौर में लाभ मिलता था। इस सुधार का अर्थ यह था कि देश की कुल कृषि उपज का जो 1/4 भाग जो पहले जमींदारों की जेब में जाता था अब बन्द हो गया। बेगार और जमींदारों द्वारा ऐसे जाने वाले अन्य चढ़ावे भी खत्म कर दिए गए। इस सुधार से लगभग 300 लाख किसानों को लाभ हुआ। परंतु धनी किसान अपनी उत्तम उत्पादकता की जमीनें अपने पास रखने में सफल रहे। इस कानून ने किसान सभाओं (जो कि इन परिवर्तनों को लागू करने के लिए बनाई गई थीं) की शक्तियों की भी व्याख्या की। जहां मतभेद थे उनका फैसला करने के लिए जन अदालतें बनाई गईं।

इस प्रकार जन आंदोलनों और किसान सभाओ की स्थापना ने जमींदारों की राजनीतिक शक्ति भी खत्म कर दी। इससे किसानों में अत्यधिक आत्मविश्वास आया। चीन के सभी क्षेत्रों में अत्याचारी जमींदारों पर जन मुकदमे चलाए गए। कई जमींदारों को उनके अपराध के अनुसार सजाएं सुनाई गईं। इसमें नजरबंध किए जाने से लेकर माफी मंगवाना तक शामिल था। कुछ जमींदारों के साथ क्रूर व्यवहार भी किया गया और यह काल जमींदारों के लिए मानसिक व राजनीतिक तनाव का काल रहा। परंतु यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ-जहाँ किसानों ने कानून अपने हाथ में लिया और जमींदारों को सबक सिखाया उन किसानों का एक लम्बी अवधि तक बर्बरता के साथ जमींदारों द्वारा शोषण किया गया था। परंतु जमींदारों से बदला कुछ ही घटनाओं में लिया गया और यह उस काल का सामान्य कानून नहीं था।

कृषि सुधारों ने गांवों के सामाजिक जीवन में गतिशीलता लाने में भी सहयोग दिया। वहां किसान सभाओं के द्वारा साक्षरता और स्वास्थ्य अभियान चलाए गए। इसके अतिरिक्त लोगों के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए स्त्री और युवा संगठनों ने भी प्रयास किए जिससे सभी इनमें हिस्सा ले सकें।

35.8.2 उद्योग

उद्योग और उनका प्रबंध बूजुर्वा वर्ग के हाथों में था। साम्यवादियों का इसमें कोई दखल न था। अतः 1950 के कानून द्वारा उन्होंने इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियों को श्रमिक संघ बनाने, मूल्य नियंत्रण, आवश्यक वस्तुओं के वितरण और राजकीय आदेशों को लागू करवाने तक सीमित रखा। साम्यवादी दल द्वारा अनेक उद्योगों, शहरों और प्रांतों में श्रमिक संगठन बनाए गए। ये संगठन श्रमिकों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ साक्षरता अभियान में भी कार्यरत थे। राज्य के निर्देशन में निजी अर्थव्यवस्था का विकास जारी रहा और व्यक्ति मुनाफा भी कमा सकते थे। भ्रष्टाचार, घूसखोरी और संसाधनों की बर्बादी, जैसी बुराइयों के विरूद्ध जो कि उत्पादन को प्रभावित करती थी व्यापक आंदोलन छेड़ा गया। यातायात के साधनों, व्यापार और वित्त व्यवस्था को भी ठीक किया गया।

35.8.3 सामाजिक परिवर्तन

1950 के विवाह कानून ने सामाजिक संबंधों को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसका उद्देश्य स्त्रियों को समान अधिकार दिलवाना था। शादी को एक ऐसे बंधन का दर्जा दिया गया जो परस्पर समानता और स्वतंत्र सहमति पर आधारित था। इससे स्त्रियों की स्थिति में व्यापक सुधार आया। स्त्रियां उत्पादन कार्य में सक्रिय भूमिका अदा कर सामाजिक दायित्वों को संभालने लगीं। वास्तव में वे नए चीन की सक्रिय नागरिक बनीं। विवाह कानून में बच्चों की सुरक्षा की भी व्यवस्था थी। छोटी बच्चियों की हत्या (Female infanticide) का सख्ती से निषेध किया गया। 1921, 1931 और 1943 के अकालों के समय

लगातार लोगों ने अपने बच्चे बेचे थे परंतु अब ऐसा करना अवैध घोषित कर दिया गया। कई स्त्रियों ने, जिनके विवाह उनकी मर्जी के खिलाफ हुए थे, तलाक प्राप्त करना चाहा और स्त्री संगठनों ने प्रत्येक रूप से इसमें उनकी मदद की। वैश्यावृत्ति को अपराध घोषित किया गया और वैश्याओं को एक नया जीवन प्रारंभ करने के लिए स्वास्थ्य सुविधायें और भावात्मक सहयोग दिया गया।

अफीम और अन्य नशीले पदार्थों का धंधा करने वालों से कड़ा व्यवहार किया गया। अफीमचियों के उपचार की व्यवस्था की गई और उन्हें नशे के दुष्प्रभावों से परिचित कराया गया। सार्वजनिक स्थानों पर जुआ खेलना वर्जित किया गया। वास्तव में समस्त अवैध गतिविधियों का सामना करते वक्त शासन ने मनुष्यों की मर्यादा के सिद्धांत की रक्षा की।

नई सत्ता के सम्मुख एक अन्य कठिनाई थी देश का सांस्कृतिक पिछड़ापन। माओ ने यह कहा था कि "किसानों को शिक्षित करना एक गहन समस्या है।" इससे निपटने के लिए व्यापक पैमाने पर गांवों में, कारखानों में और शहर की गरीब जनता के मध्य साक्षरता अभियान छेड़े गए। नतीजन 1949-1952 के मध्य तीन वर्षों में ही विद्यार्थियों की संख्या दुगुनी हो गई। उदाहरण के लिए प्राइमरी स्कूलों में यह 24 से 51 लाख और सैकेंडरी स्कूलों मे 1 से $2\frac{1}{2}$ लाख हो गई।

इन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों को लागू करने के लिए जो संगठनात्मक ताना बुना गया वह देश के पिछड़े से पिछड़े इलाकों तक पहुंचाया गया। गृह युद्ध के प्रारंभ के समय साम्यवादी दल की सदस्य संख्या लगभग12 लाख हो गई। इसी प्रकार दल से संबंधित जन संगठनों का भी समाज के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तार हुआ। जैसे, श्रमिक संगठन, स्त्री संगठन, युवा दल, बुद्धिजीवियों के संगठन, सोवियत संघ और अन्य साम्यवादी देशों से मित्रता क्लब आदि। ये सभी संगठन काफी सक्रिय थे और समाज में अपने अपने क्षेत्रों की समस्याओं के प्रति जागरूक थे।

इन संगठनों ने निम्नलिखित कार्यों में सहयोग दिया:

- उस समय की महत्वपूर्ण नीतियों के साथ जनता को जोड़ना,
- जनता को सक्रिय बनाना, और
- नई विचारधारा और मूल्यों को सुदृढ़ करने के लिए जन सभाओं, विचार मंचों, जन यात्राओं, पोस्टर लगाना आदि के रूप में अभियान चलाना।

इस प्रकार एक ऐसे जनवादी शासन की सामाजिक, राजनीतिक व वैचारिक नींव रखी गई जिससे धीरे-धीरे समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सके।

1952 में जन संगठन और सदस्यता	
जन संगठन	सदस्यता (लाख में)
स्त्री संगठन	760
डेमोक्रेटिक यूथ संगठन	70
फेडरेशन ऑफ स्टूडेंट्स	16
श्रमिक संघ	60

35.9 चीन की क्रांति की महत्ता

चीन की सफल क्रांति की महत्ता और विश्वव्यापी प्रभाव को आंकने के लिए हमें उसे एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखना होगा। जनसंख्या और क्षेत्र, दोनों ही दृष्टि से चीन 1949 में विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र था। उसका क्षेत्रफल 9 लाख वर्ग किलोमीटर तक और 1939 के आँकड़ों के अनुसार जनसंख्या 41 करोड़ थी। इस प्रकार चीन की सफल क्रांति और जनवादी गणतंत्र की स्थापना के द्वारा विश्व की एक बड़ी जनसंख्या के जीवन में बदलाव आया। अतः यह घटना केवल चीन ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण थी।

सामान्यतः इतिहासकारों की यह धारणा रही है कि आधुनिक विचारों का उद्‌भव पाश्चात्य जगत में हुआ और इन्होंने पिछड़े समाजों की जनता के चिन्तन को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन विचारों में स्वतंत्रता, समानता, भातृत्व, प्रजातंत्र और लोकप्रिय संप्रभुता आते हैं। यहां यह समझना आवश्यक है कि ये विचार हवा में ही लागू नहीं हो सकते। वास्तव में पिछड़े समाजों में हो रहे बदलाव ही एक ऐसा वातावरण तैयार करते हैं जिनमें नवीन विचार जड़ पकड़ सकें । चीन में भी यही हुआ। इसके अतिरिक्त रूस (1917) और चीन (1949) की सफल क्रांतियों ने यह साबित कर दिया कि प्रजातंत्र और समानता तभी वास्तविक रूप ले सकते हैं जबकिः

- आर्थिक समतां हो,
- भूख से मुक्ति हो, और
- उत्पादन का संगठन इस प्रकार किया जाए कि वह विश्व के उत्पाद और संपत्ति का उत्पादन करने वालों के हित में हो।

इसी प्रकार प्रजातंत्र एक राजनीतिक ढांचे के रूप में तभी वास्तविक हो सकता है, जबकिः

- उसमें मेहनतकश गरीबों (जो कि जनसंख्या का बड़ा भाग है) की सुनवाई हो,
- उसकी नीतियां गरीब जनता के हित में हों, और
- सरकार को चलाने में गरीब जनता की भागीदारी हो।

1949 की क्रांति ने चीन में एक इसी प्रकार के समाज और राजनीति की नींव रखी। ऐसा करके उसने अविकसित देशों की जनता को ही नहीं वरन् पाश्चात्य जगत के उन तबकों को भी प्रेरित किया जो सामाजिक न्याय व समता के लिए संघर्षरत थे। चीन की क्रांति ने यह साबित कर दिया कि प्रगतिशील विचार और तौर-तरीके केवल पाश्चात्य जगत में ही जन्म नहीं लेते।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि चीन की क्रांति उपनिवेशवाद को समाप्त करने के रास्ते में एक महान कदम था। क्रांति से पूर्व चीन का प्रायः विश्व की सभी साम्राज्यवादी ताकतों ने शोषण किया था। वहां की समस्त संपत्ति और उत्पादन का गठन इन ताकतों के लाभ के लिए ही किया जाता था। पाश्चात्य शक्तियों और जापान द्वारा लादी गई असमान संधियों के अधीन चीन की जनता एक अभावपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थी। इसके साथ-साथ जनता सामंतवाद और युद्ध सामन्तवाद की भी भयंकर रूप से शिकार थी। गरीब किसान भूख और गरीबी के कारण मरते रहते थे। परंतु चीन की क्रांति ने न केवल सामंतवाद का ही अंत किया वरन् चीन की धरती पर साम्राज्यवादियों के सामाजिक आधार को भी नष्ट कर दिया। चीन की जनता ने साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक गैर-समझौतावादी संघर्ष छेड़कर पाश्चात्य शक्तियों के मुंह पर तमाचा मारा। परिणामस्वरूप राजनीतिक संतुलन का झुकाव समाजवाद और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर हुआ। इससे राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे अन्य एशियाई देशों की जनता को भी प्रेरणा मिली।

चीन की क्रांति ने किसानों के राजनीतिक सामर्थ्य को दर्शाकर पिछड़े समाजों में क्रांतिकारी बदलाव में किसानों की भूमिका की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत की। पिछड़े देशों में साम्यवादी आंदोलन ने चीन के इस अनुभव से लाभ उठाया। प्रायः सभी एशियाई देशों के साम्यवादी दलों ने चीन की जनवादी प्रजातांत्रिक क्रांति के सिद्धांत को अपने कार्यक्रम में शामिल किया। वास्तव में चीन की क्रांति ने वहाँ की जनता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन में बदलाव लाकर विश्व स्तर पर उन्हें एक प्रमुख भूमिका अदा करने का अवसर दिया।

बोध प्रश्न 3

1) नए शासन द्वारा जो भूमि सुधार लागू किए गए उनके मुख्य पहलुओं की चर्चा लगभग 15 पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) लगभग 10 पंक्तियों में चीन की क्रांति की महत्ता बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

35.10 सारांश

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर चीन में गृह युद्ध छिड़ गया। अमरीका की सहायता से च्यांग काई शेक के नेतृत्व में क्योमिंनटांग ने साम्यवादियों पर आक्रमण किये परंतु साम्यवादियों को चीन की जनता से व्यापक सहयोग मिला। इसका कारण यह था कि उन्होंने जनहित की नीतियां अपनाई थीं और सामंतवाद और पूंजीवाद द्वारा किए जा रहे शोषण का विरोध किया। गृह युद्ध में साम्यवादियों की विजय हुई। यद्यपि क्योमिंनटांग के पास व्यापक साधन थे परंतु प्रतिक्रियावादी नीतियों के कारण वह जनता में अपना समर्थन न बना पाया।

साम्यवादियों ने एक नवीन शासन की स्थापना की जिसे प्रारंभ में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परंतु व्यापक भूमि सुधार और अपने सदस्यों के संगठित प्रयासों के द्वारा साम्यवादी धीरे-धीरे इन कठिनाइयों को दूर करने में सफल रहे। चीन की क्रांति का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा। उसकी महत्ता को अनेक देशों में संघर्ष कर रही जनता ने एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया।

35.11 शब्दावली

राष्ट्रीय सरकारः यहाँ इसका प्रयोग क्योमिंनटांग और साम्यवादी दल में अंतर दर्शाने के लिए किया गया है। क्योमिंनटांग राष्ट्रवाद का दावा करता था जबकि साम्यवादी दल की आस्था साम्यवादी क्रांति में थी।

मुक्त क्षेत्रः वे क्षेत्र जिन पर साम्यवादियों ने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था, उनके द्वारा मुक्त क्षेत्र कहे जाते थे।

35.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 35.3 देखें।
2) i) × ii) × iii) ✓ iv) ✓

बोध प्रश्न 2

1) भाग 35.5 देखकर अपना उत्तर लिखें।
2) किसान, मजदूर, कारीगर आदि। देखें भाग 35.4
3) भाग 35.7 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) अपना उत्तर उपभाग 38.8.1 पर आधारित करें।
2) अपना उत्तर भाग 38.9 पर आधारित करें।

चित्र

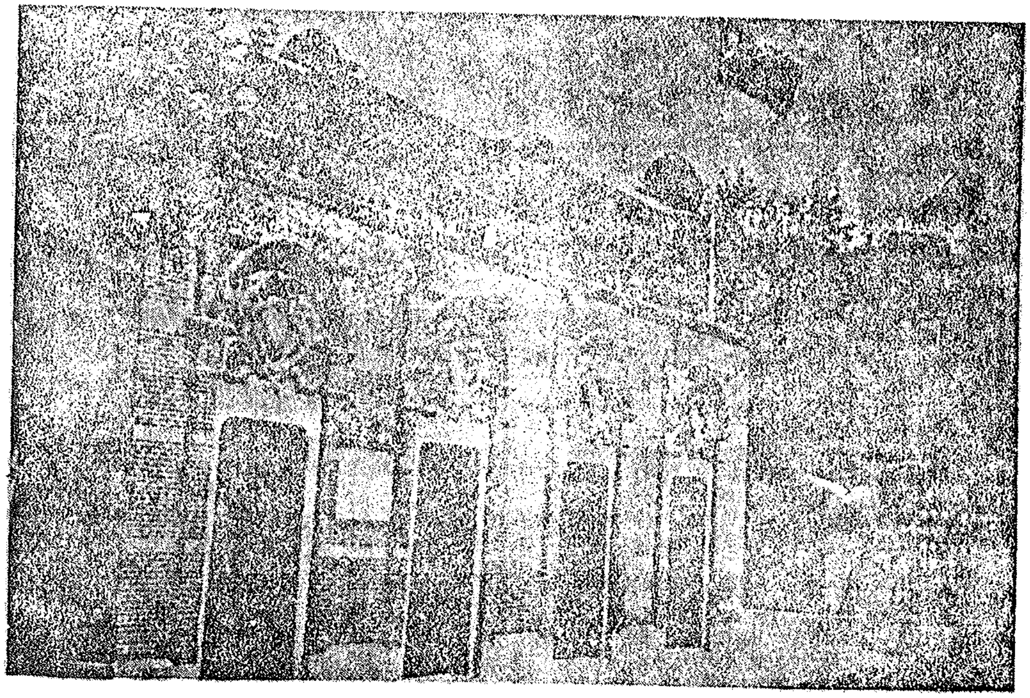

1 वह इमारत जहाँ शंघाई में साम्यवादी दल की पहली बैठक हुई। (जुलाई 1921)

2 ली-ता-चाओ

3 चेन-तू-शू

4 युवा अवस्था में माओ

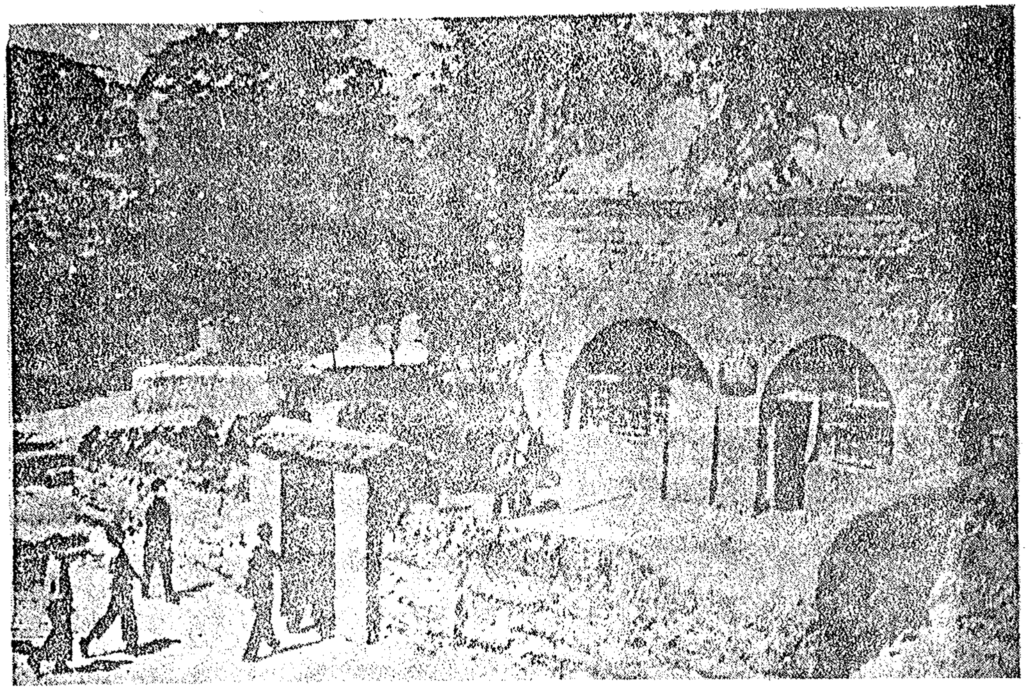

5 येनान में माओ के निवास की गुफा

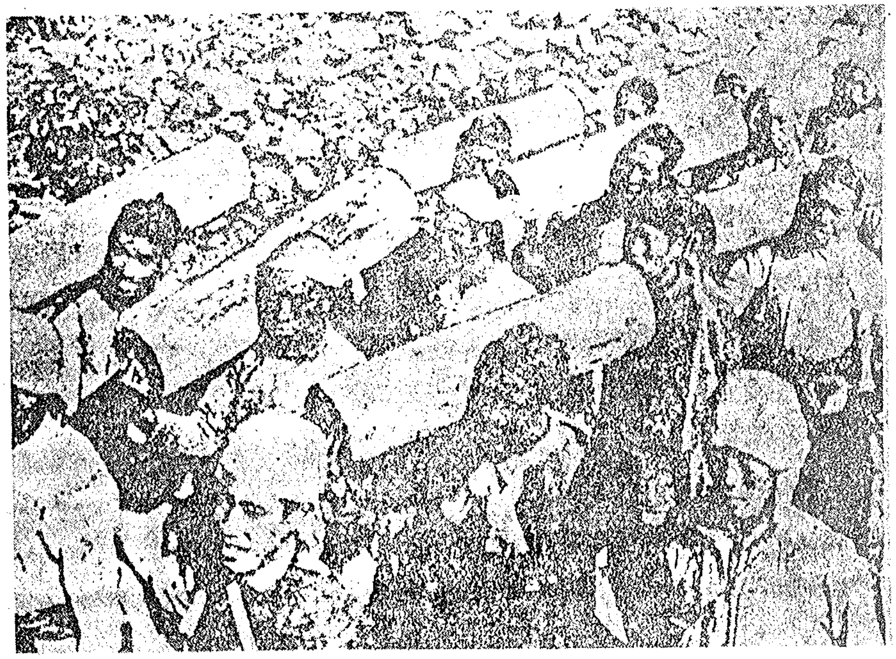

6 जापानी सेना के विरूद्ध लाल सेना के समर्थक लट्ठों में बारुद भरकर ले जाते हुए (1938)

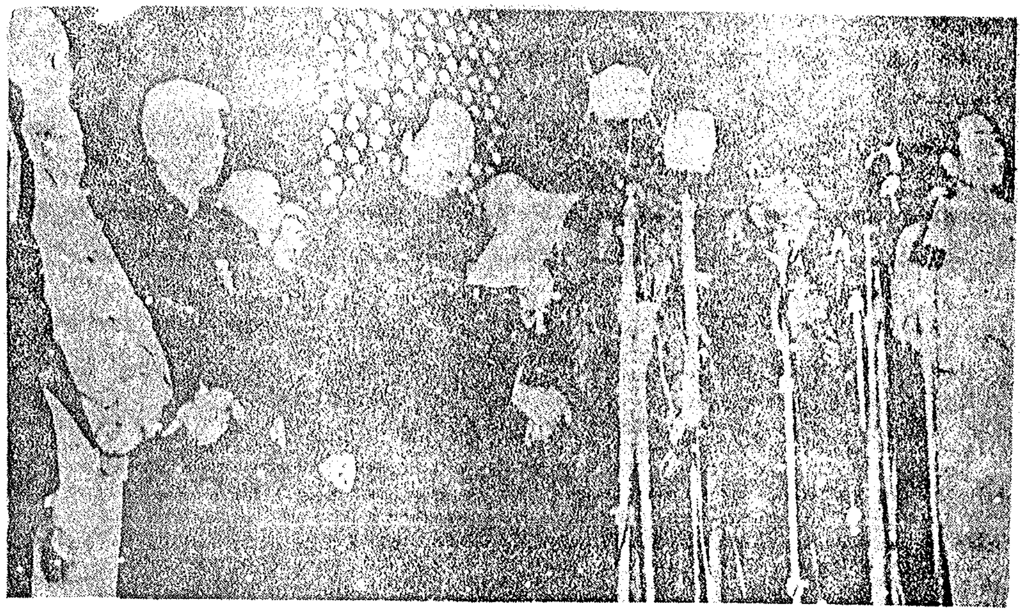

7 माओ द्वारा चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना की घोषणा (1 अक्तूबर 1949)

8 लिन-पियो

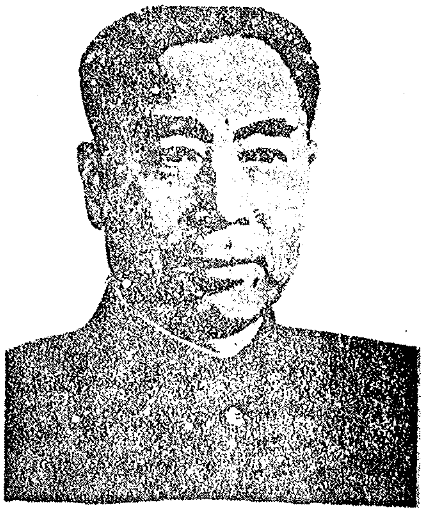

9 चाओ-एन-लाई

10 चाओ-एन-लाई, लियु शाओ-ची, चू-तेह और माओ

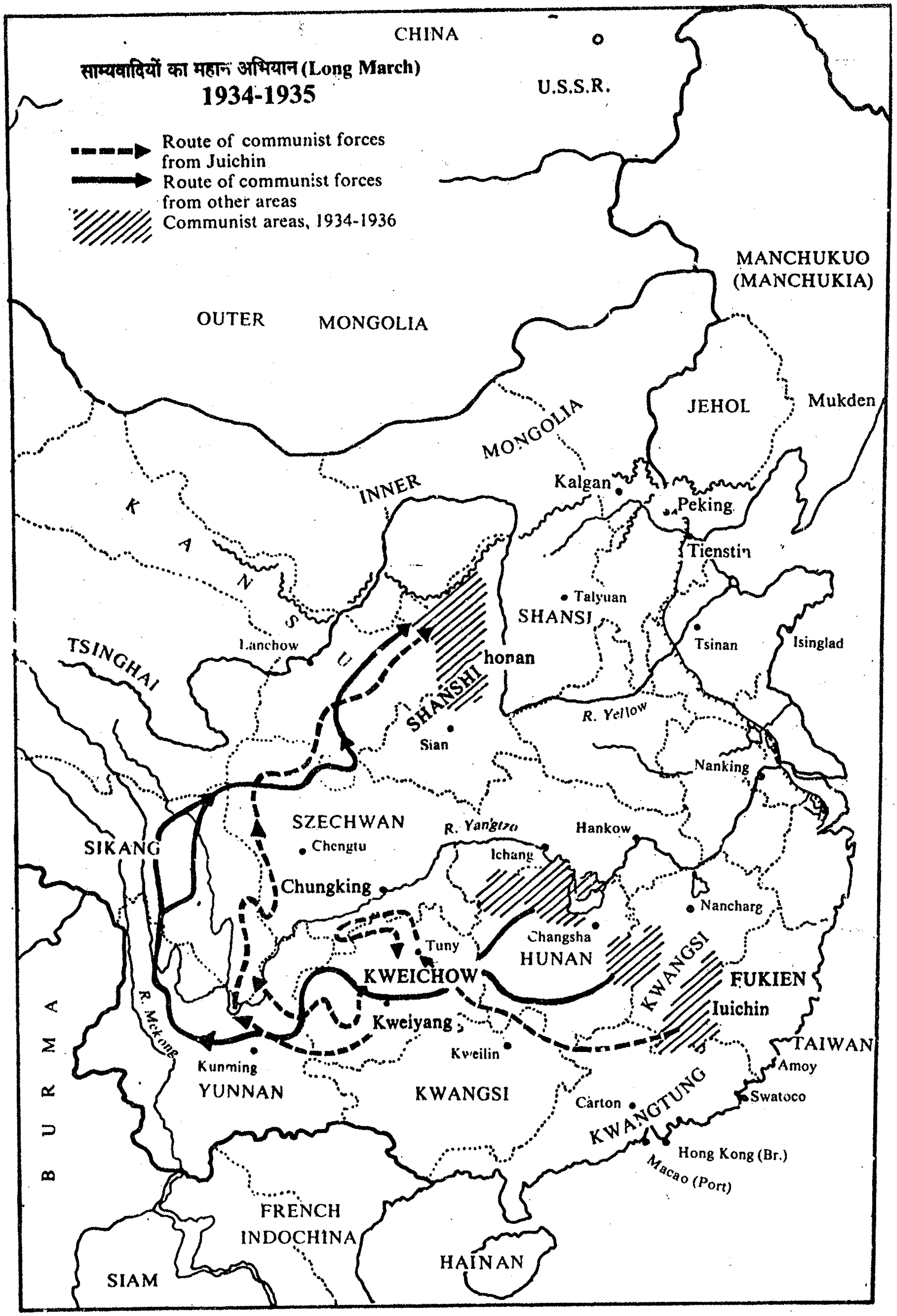
CHINA
साम्यवादियों का महान अभियान (Long March)
1934-1935
U.S.S.R.
Route of communist forces from Juichin
Route of communist forces from other areas
Communist areas, 1934-1936
MANCHUKUO (MANCHUKIA)
OUTER MONGOLIA
JEHOL
Mukden
INNER MONGOLIA
Kalgan
Peking
Tienstin
K A N S U
Talyuan
SHANSI
Tsinan
Isinglad
Lanchow
TSINGHAI
honan
SHANSHI
Sian
R. Yellow
Nanking
SZECHWAN
R. Yangtzo
Hankow
SIKANG
Chengtu
Ichang
Chungking
Nancharg
Changsha
Tuny
HUNAN
KWEICHOW
KWANGSI
FUKIEN
Iuichin
Kweiyang
R. Mekong
B U R M A
TAIWAN
Amoy
Kunming
Kweilin
YUNNAN
KWANGSI
Carton
Swatoco
KWANGTUNG
Hong Kong (Br.)
Macao (Port)
FRENCH INDOCHINA
HAINAN
SIAM

मानचित्र-1

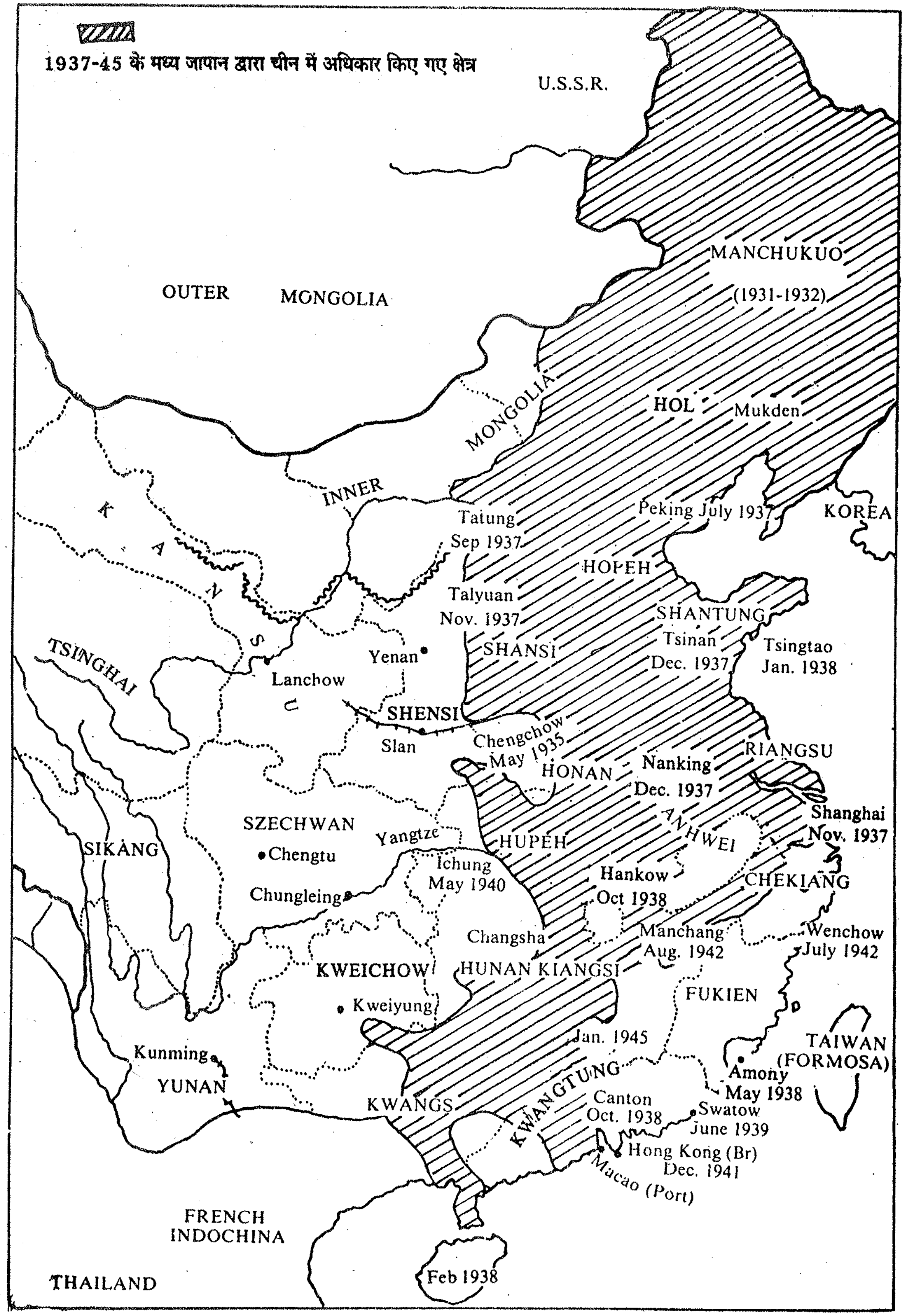
1937-45 के मध्य जापान द्वारा चीन में अधिकार किए गए क्षेत्र
U.S.S.R.
MANCHUKUO
(1931-1932)
OUTER
MONGOLIA
MONGOLIA
INNER
HOL
Mukden
Peking July 1937
KOREA
Tatung
Sep 1937
HOPEH
K
A
N
S
U
Talyuan
Nov. 1937
SHANTUNG
TSINGHAI
Yenan
SHANSI
Tsinan
Dec. 1937
Tsingtao
Jan. 1938
Lanchow
SHENSI
Slan
Chengchow
May 1935
HONAN
Nanking
Dec. 1937
RIANGSU
Shanghai
Nov. 1937
SZECHWAN
Yangtze
HUPEH
ANHWEI
SIKANG
Chengtu
Ichung
May 1940
Hankow
Oct 1938
CHEKIANG
Chungleing
Changsha
Manchang
Aug. 1942
Wenchow
July 1942
KWEICHOW
HUNAN KIANGSI
FUKIEN
Kweiyung
Jan. 1945
TAIWAN
(FORMOSA)
Kunming
Amony
May 1938
YUNAN
KWANGTUNG
Canton
Oct. 1938
Swatow
June 1939
KWANGS
Hong Kong (Br)
Dec. 1941
Macao (Port)
FRENCH
INDOCHINA
THAILAND
Feb 1938

मानचित्र-2